हिन्दी कहानियों में आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना की विवेचना (साठोत्तरी कहानियों के सन्दर्भ में)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी

की

हिन्दी साहित्य विषय में

पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

१९९९

निर्देशक :

डा० उदय त्रिपाठी

प्रवक्ता, हिन्दी विभाग,

श्री अग्रसेन महाविद्यालय,

मऊरानीपुर, झांसी।

शोधकर्त्री :
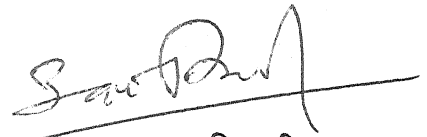
निशा देवी

डा० उदय त्रिपाठी,
प्रवक्ता,
श्री अग्रसेन महाविद्यालय,
मऊ रानीपुर,
झांसी।

मै प्रमाणित करता हूँ कि श्रीमती निशा देवी ने अपनी पी - एच० डी (हिन्दी) उपाधि के लिए 'हिन्दी कहानियों में आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना की विवेचना (साठोत्तरी कहानियों के विशेष सन्दर्भ में) विषय पर नियमानुसार मेरे निर्देशन में रहकर अपना शोध कार्य पूर्ण किया है। आपका यह कार्य मौलिक है। मूल्यांकन के लिए मैं इसे विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान करता हूँ।

डा० उदय त्रिपाठी
प्रवक्ता,
श्री अग्रसेन महाविद्यालय,
मऊ रानीपुर, झांसी।

दिनाँक : 16-04-2000

प्राक्कथन

आधुनिक युग में प्रबलतम बनी मानव मात्र की समानता और स्वतन्त्रता की भावना ने समाज को नारी की समानता और स्वतन्त्रता के लिए उद्वेलित किया और उसके लिए आवश्यकता समझी गयी नारी को शिक्षित करने एवं स्वावलम्बी बनाने की। इस भावना ने समाज की प्राचीन अवधारणा को बदला और पुरुष प्रधान समाज में जो साहित्य कल्पना और आदर्श को लेकर चल रहा था उसका स्थान यथार्थ और वास्तविकता ने ले लिया , आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकता की प्रधानता हो गयी। साहित्य भी केवल पुरुष को प्रधनता एवं प्रमुखता देने वाला नहीं रह गया। उसके लिए आवश्यक एवं अपरिहार्य हो गया कि वह नारी भावनाओं को भी समुचित महत्व दे।

ऐसी परिस्थितियों ने साहित्य की अनेक विधाओं के महत्व पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया और साहित्य की काव्य - परक और कल्पनापरक रचनाओं का महत्व घट गया। उसके स्थान पर गद्य का और यथार्थपरक रचनाओं का महत्व बढ़ गया। परिणाम स्वरूप महाकाव्यों एवं काव्यों का स्थान निबन्धों, उपन्यासों तथा कहानियों ने ले लिया।

इस प्रकार साहित्य की विधाओं में भी नूतनता आयी और वर्ण्य - वस्तु में भी। इनमें सबसे सशक्त साहित्य विधा कहानी सिद्ध हुई और उसमें नारी - पुरुष सम्बन्ध प्रधान वर्ण्य-वस्तु बन गये। हिन्दी साहित्य के साठोत्तर काल में न केवल कहानियाँ प्रभूत मात्रा में लिखी गयीं वल्कि उनके लिखने वाले कहानीकार अधिकाधिक संख्या में बढ़ें । पुरुष कहानीकारों और महिला कहानीकारों - दोनों ने नारी को अपनी कहानियों का वर्ण्य - विषय बनाया और नारी अन्तर्मन के सभी द्वारों को खोलने का प्रयास किया। इस कार्य में भी नारी कहानीकार अधिक सफल सिद्ध हुईं। इस प्रकार हिन्दी कहानियों में आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना का अधिकाधिक चित्रण होना प्रारम्भ हुआ।

इसीलिए मैनें हिन्दी कहानियों में आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना अपने शोध कार्य का विषय चुना और अग्रसेन डिग्री कालेज, मऊ रानीपुर, झांसी में अध्यापनरत मा० डा० उदय त्रिपाठी के योग्य निर्देशन में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय ने मुझे इस विषय में शोध करने की अनुमति प्रदान की।

आदरणीय डा० उदय त्रिपाठी जी ने अपनी शैक्षिक व्यस्तताओं में से मेरे लिए पर्याप्त समय निकाल कर न केवल उचित दिशा निर्देश और उचित मार्ग-दर्शन ही किया बल्कि अत्यन्त उपयोगी सुझाव देकर और मेरा उत्साहवर्द्धन कर इस शोध कार्य को पूरा करने में अपना अपरिमित सहयोग दिया है।

शोध ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा देने तथा मेरा मनोवल बढ़ाने में मेरे पूजनीय नानाजी डा० ब्रजलाल वर्मा, भू० पू० सदस्य, उ० प्र० लोक सेवा आयोग का भी अतुलनीय योगदान रहा। इसी प्रकार साहित्य मर्मज्ञ श्री गिरीश तिवारी जी का भी प्रशंसनीय सहयोग अनेक विन्दुओं पर स्पष्ट अवधारणा बनाने में मिला। इन विद्वानों के प्रति शब्दों में आभार व्यक्त करना असम्भव है। इनका वरद हस्त मेरे लिए सदा काम्य रहेगा।

शोध ग्रन्थ के लेखन में जिन कुछ पुस्तकालयों और पुस्तक प्रतिष्ठानों से सहयोग मिला है उनमें श्री मारवाड़ी पुस्तकालय, कानपुर, राजकीय पव्लिक लाइब्रेरी, झांसी, श्री अग्रसेन महाविद्यालय, मऊ रानीपुर, के पुस्तकालय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

मैंने अपने शोध कार्य में आदिम काल से नारी के महत्वपूर्ण स्थान को रेखांकित करते हुए आधुनिक युग तक उसकी

स्थिति पर विचार किया है। इस अध्ययन को मैंने आठ अध्यायों में विभाजित किया है और प्रत्येक खण्ड में नारी की स्थिति और साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति का दिग्दर्शन कराया है।

स्वभावतः प्रथम अध्याय भारतीय शास्त्रों, दार्शनिक चिन्तन, संस्कारों व परम्पराओं में भारतीय नारी के सामाजिक अस्तित्व के स्वरूप से प्रारम्भ किया गया है। इसमें भारतीय शास्त्रों में नारी विषयक सैद्धांतिक पक्ष का निरूपण करते हुए नर - नारी के अभिनत्व और नारी के कन्या रूप, पत्नी रूप तथा माता रूप में उसकी महत्ता तथा श्रेष्ठता प्रतिपादित की गयी है। साथ ही भारतीय दार्शनिक चिन्तन के प्रभाव के कारण नारी की स्थिति पर पड़े दुष्प्रभाव की भी विवेचना की गई है जिसके कारण समाज एवं परिवार में नारी के प्रति व्यवहार में विषम स्थितियां उत्पन्न होती रहीं और नारी को संरक्षण देने के नाम पर उसका उत्पीड़न भी निर्बाध गति से होता रहा। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि नारी की सच्ची स्वतन्त्रता उसको समाज में सम्मानपूर्ण स्थान दिलाए बिना नहीं सम्भव हो सकती।

इसी अध्याय के दूसरे खण्ड में हिन्दी कहानियों में नारी के अस्तित्व का क्षिप्र विवेचन किया गया है और यह प्रतिपादित किया गया है कि वेदों, उपनिषदों और पुराणेतिहास ग्रन्थों में भी नारी को सम्मानपूर्ण स्थान मिला है। यही स्थिति बौद्धकाल में भी पायी जाती है। हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों में भी नारी को वही प्रतिष्ठा प्राप्त है। इतना ही नहीं, इनमें से अधिकांश के तो नामकरण भी नारी परक है जैसे कि 'रानी केतकी की कहानी', प्रणयिनी परिणय, इन्दुमती, लड़की की कहानी, दुलाईवाली आदि।

दूसरे अध्याय में सामाजिक चेतना की अवधारणा शीर्षक के अन्तर्गत यह प्रतिपादित किया गया है कि धर्म के बन्धनों के कठोर से कठोरतम होते जाने के कारण उनके प्रति प्रतिक्रिया के रूप में सामाजिक चेतना का विकास हुआ और विशेष कर नारी की स्थिति को लेकर। किन्तु इसका व्यापक प्रसार तब हुआ जब पाश्चात्य देशों के प्रभाव से १६वीं शताब्दी में जन-आन्दोलन चल पड़े। हिन्दी में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के समय से हिन्दी कहानियों द्वारा भी नारी की सामाजिक चेतना का उद्घोष होने लगा। इन कहानियों में नारी की स्थिति अक्षुण्ण मिलती है। तथापि, सामाजिक चेतना की सर्वतोमुखी अभिव्यक्ति प्रेमचन्द युग से ही सम्भव हो सकी।

तीसरे अध्याय में सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा समस्या, देव कन्या एवं वेश्यावृत्ति, यौन शोषण आदि शीर्षकों के अन्तर्गत कुप्रथाओं से पीड़ित नारी की सामाजिक स्थिति और नारी चेतना की भूमिका पर विचार किया गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कहानियों में नारी की विविध रूपों की अभिव्यक्ति और सामाजिक चेतना की समीचीन परख प्रस्तुत की गई है और यह प्रतिपादित किया गया है कि हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों में भी नारी जीवन के सामाजिक यथार्थ का हल्का सा स्पर्श विद्यमान है। यद्यपि इसका स्पष्ट रूप प्रेमचन्द की कहानियों में मिलता है। इस काल में प्रेमचन्द के साथ ही साथ प्रसाद जी और कौशिक जी की कहानियाँ भी नारी की सामाजिक चेतना को प्रतिष्ठित करती मिलती हैं।

चतुर्थ अध्याय में नारी मुक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि संस्थाओं और शरत् चन्द्र जैसे साहित्यकारों और दादा भाई नौरोजी जैसे राजनीतिज्ञों और ज्योति बा फुले, महर्षि कर्वे एवं गोपाल कृष्ण गोखले जैसे समाज सुधारकों के नारी मुक्ति आन्दोलन में योगदान की चर्चा की गई है। साथ ही भारतीय नारी की सामाजिक चेतना पर नारी मुक्ति आन्दोलन के प्रभाव का आकलन किया गया है। हिन्दी कहानियों में प्रेमचन्द , प्रसाद और कौशिक जी आदि की कहानियों में नारी की सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का दिग्दर्शन कराया गया है।

पंचम अध्याय में नारी की सामाजिक चेतना के जागरण में सुधारवादी और राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमिका पर विचार करते हुए उस पर पाश्चात्य प्रभाव, विशेष कर विदेशी पुरुषों और महिलाओं के प्रभाव को रेखांकित किया गया है। साथ ही भारतीय समाज सुधारकों के योगदान की भी विवेचना की गई है।

हिन्दी कहानियों में भी सुधारवादी आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रेरित नारी की सामाजिक चेतना की विवेचना की गई है और उससे अनुप्राणित आधुनिक हिन्दी कहानीकारों की परिगणना की गई है।

छठे अध्याय में आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्रिया कलापों में आधुनिक नारी की सक्रियता पर विचार किया गया है जो स्पष्टतः सामाजिक सुधार के आन्दोलनों, राष्ट्रीय आन्दोलनों तथा उनसे प्रेरित साहित्य, विशेषकर कहानी साहित्य से प्राप्त प्रेरणा के कारण ही सम्भव हो सकी है। आर्थिक क्षेत्र में न केवल महिलाएं स्वावलम्बी बनीं बल्कि उन्होंने अब तक न छुए गए व्यवसाय क्षेत्रों में भी प्रवेश किया। राजनीति के क्षेत्र में भी नारी उच्चतम शिखर तक पहुँच गयी और कांग्रेस के अध्यक्ष पद को भी सुशोभित किया। यही स्थिति सांस्कृतिक क्रिया कलापों के क्षेत्र में भी बनी।

हिन्दी कहानियों में भी नारी के आर्थिक स्वावलम्बन का चित्रण किया गया मिलता है। उनमें उन्हें राजनीति में सक्रिय भाग लेते चित्रित किया गया है तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में उनकी भूमिका को उभारा गया है। ऐसी कहानियाँ इतनी अधिक संख्या में मिलती हैं कि उनका समग्र आकलन यदि असम्भव नहीं तो दुस्साध्य अवश्य है। फिर भी कुछ प्रतिनिधि कहानियों का विवेचन किया गया है जो अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण प्रसिद्धि पा सकी हैं।

सातवें अध्याय में उन परिस्थितियों की विवेचना की गयी है जिनके कारण अर्जनशीला नारियों को आर्थिक स्वावलम्बन की प्राप्ति कर लेने पर भी अपने निजी अस्तित्व का तिरोभाव करना मजबूरी बन गया है। उसे जिन विषम स्थितियों का सामना करना पड़ रहा है उनका संकेत किया गया है। वहीं स्त्री – पुरुष के सम्बन्धों की आधुनिक अवधारणा के प्रति भारतीय नारी की नव मानसिकता पर विचार करते हुए दाम्पत्य सम्बन्धों आदि में आए बदलाव की विवेचना की गई है। साथ ही पुरुष – नारी सम्बन्धों में दूरी बढ़ने या दरार पड़ने के कारणों पर भी विचार किया गया है।

हिन्दी कहानियों में पुरुष – स्त्री सम्बन्धों, पति – पत्नी सम्बन्धों में आई दूरी एवं उनमें पड़ी दरार का चित्रण जिस रूप में हुआ है उसे कुछ प्रतिनिधि कहानियाँ चयन कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। साथ ही सामाजिक मूल्यों, पारिवारिक मूल्यों एवं दाम्पत्य मूल्यों में आए बदलाव तथा काम सम्बन्धों के प्रति बदलते दृष्टिकोण का चित्रण भी आरेखित किया गया है। इसमें यौन सम्बन्धों का खुला चित्रण भी प्रथम बार हिन्दी कहानियों में मिलता दिखाया गया है।

आठवें अध्याय में आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना के वास्तविक स्वरूप की विवेचना की गयी है और साहित्य क्षेत्र में उनके बढ़ते योगदान को निरूपित किया गया है।

हिन्दी कहानियों के क्षेत्र में महिला कहानीकारों की अप्रत्याशित वृद्धि और उनके द्वारा नारी अन्तर्मन के उद्घाटन का स्तुत्य प्रयास हिन्दी कहानी को नई ऊँचाइयों तक ले जाने में पहली बार समर्थ हुआ है और उसमें इन महिला कहानीकारों को आशातीत सफलता भी मिली है।

इस दृष्टि से कुछ प्रतिनिधि महिलाकारों की प्रतिनिधि कहानियों पर भी विचार किया गया है और उनमें नारी की सामाजिक चेतना – नारी स्वतन्त्रता और नारी स्वावलम्बन – की दिशा में नारी के सोच का दिग्दर्शन कराया गया है। महिला कहानीकारों के वर्ण्य विषय और उनके विषय में अभिव्यक्त बेबाक विचारों से नारी की सामाजिक चेतना का परिचय प्राप्त होता है। यह परिचय इसलिए और भी प्रामाणिक अतएव प्रभावपूर्ण बन पड़ा है क्योंकि अधिकांश महिला कहानीकार ने उसे पूर्णतः यथार्थ पर या घटित घटनाओं के आधार पर लिखा है। इसलिए महिला कहानीकारों की ये कहानियाँ नारी की सामाजिक चेतना की पुष्टि करती मिलती हैं। नारी की सामाजिक चेतना के सामाजिक इतिहास की दिशा खोजने में यदि मेरे इस प्रयास से कुछ भी प्रेरणा मिल सकी या सहायता मिल सकी तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूंगी।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय 'आधुनिक हिन्दी कहानियों में नारी की सामाजिक चेतना' यद्यपि मैंने अपनी रूचि के अनुसार चयन क्रिया तथापि शोध कार्य की प्रेरणा के मूल में मेरे पारिवारिक स्वजनों का आर्शीवाद भी मेरे साथ रहा।

अब जब मै अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर रही हूँ तो मेरा हृदय द्रवित हो रहा है कि अपने शोध कार्य की व्यस्तता

के कारण मैं अपने चार वर्षीय पुत्र पर स्नेह का उतना आँचल नही पसार पायी जितनी उसकी शिशुता की अपेक्षा थी।

मैं उन सभी लोगों के सहयोग के लिए उनके प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझती हूँ जिनका उल्लेख करना यहाँ सम्भव नहीं है पर जिनकी कृपापूर्ण छवि मेरे मानस - पटल पर अंकित है।

शोध - कर्त्री

निशा देवी

(निशा देवी)

10-4-2000

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

प्रथम अध्याय

(अ) भारतीय शास्त्रों , दार्शनिक चिन्तन, संस्कारों व परम्पराओं में भारतीय नारी के सामाजिक अस्तित्व का स्वरूप

भारतीय शास्त्रों में नारी विषयक सैद्धान्तिक पक्ष का निरूपण
नर - नारी का अभिन्नत्व
विवाह - बन्धन में नारी की महत्ता
पिता से दश गुणा अधिक माता का महत्व
भारतीय दार्शनिक चिन्तन का दुष्प्रभाव
पाप के लिए शास्त्रानुसार नर - नारी समान रूप से दोषी
नारी सम्बन्धी व्यावहारिक पक्ष का निरूपण
संरक्षण के नाम पर उत्पीड़न
नारी की वास्तविक स्वतन्त्रता
नारी की सच्ची स्वतन्त्रता का आधार नारी सम्मान

(ब) हिन्दी कहानियों में भारतीय नारी के अस्तित्व का क्षिप्र विवेचन -

वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में नारी
हिन्दी कहानियों में नारी का अस्तित्व
हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियाँ (१) इन्दुमती (२) ग्यारह वर्ष का समय (३) दुलाईवाली

(अ) भारतीय शास्त्रों, दार्शनिक चिन्तन, संस्कारों व परम्पराओं में भारतीय नारी के सामाजिक अस्तित्व का स्वरूप।

भारतीय शास्त्रों में नारी विषयक सैद्धान्तिक पक्ष का निरूपण :-

भारतीय शास्त्रों में नारी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह स्थान इतना महत्वपूर्ण है कि शास्त्रों में नारी को सृष्टिकर्ता तक माना गया है। शास्त्रों में सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है कि प्रारम्भ में केवल ब्रह्म ही था। उसे एकाकी रहना अच्छा न लगा। उसने कामना की, 'मै एक हूँ, बहुत हो जाउँ'-

स एकाकी न रेमे। सो ऽकामयत। एकोऽहं बहुस्याम्। तदैक्षत बहुस्याम् प्रजायेय।'[1]

ऐसा ही विवरण अन्यत्र भी मिलता है। वहाँ भी कहा गया है कि प्रारम्भ में केवल ब्रह्म था। उसने कामना की कि मेरे जाया (नारी) हो जिससे कि मैं सृष्टि का निर्माण कर सकूं :

'आत्मै वेदमग्रमासीत् एक एव। सोऽअकामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेयाथ वित्तं मे स्यादथ कर्म कुर्वीय'

नर-नारी का अभिन्नत्व :-

इतना ही नहीं, भारतीय शास्त्रों में नारी और नर का अभिन्नत्व या एकत्व भी स्थान - स्थान पर प्रतिपादित किया गया है। नारी की नर से और नर की नारी से उत्पत्ति की बात भी भारतीय शास्त्रों में कही गई है। शिव के अर्द्ध नारी-नटेश्वर रूप का जहां वर्णन मिलता है वहां एक ही विग्रह में दाहिना अंग शिव का तथा वामांग शिवा अर्थात पार्वती का वर्णित किया गया है। संस्कृत के महाकवि कालिदास ने , जिन्हें कवि कुलगुरू के नाम से भी स्मरण किया जाता है, अपने महाकाव्य कुमार सम्भव में शिव और शिवा का इसी अभिन्न रूप में वर्णन किया है-

वागार्थाविव सम्पृक्तो वागार्थ प्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।।[2]

इस पर टीका करते हुए संस्कृत के सुप्रसिद्ध टीकाकार कोलाचल मल्लिनाथ ने अपनी संजीवनी टीका में इस भाव को जिस प्रकार छन्द बद्ध किया है उसकी रूप छटा अतुलनीय है-

माता पितृभ्यां जगतो नमो वामार्द्धजानवे।
सद्यो दक्षिण कृपात संकुचद् वाम दृष्टये।।[3]

१- छान्दोग्य उपनिषद - ६/२/३

२- कुमार सम्भव - महाकवि कालिदास -

३- कुमार सम्भव की मल्लिनाथ टीका से।

नर-नारी के अभिन्नत्व का, अद्वैत का क्या ही सुन्दर उदाहरण है।

गोस्वामी तुलसी दास जी ने भी अपने परम आराध्य भगवान् राम और सीता का अभिन्नत्व इस प्रकार वर्णित किया है-

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौ सीता राम पद जिन्हहि परमप्रिय खिन्न ।। '१'

यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि यह तो ईश्वर के रूप का वर्णन है जिसमें जगत के पिता एवं जगज्जननी की स्तुति की गई है। परन्तु गम्भीरता से विचार करने पर यह तर्क पूर्णतः भ्रान्त तर्क ही आभासित होता है क्योंकि शास्त्रों में अनेक स्थानों पर इस सिद्धांत का प्रतिपादन मिलता है। मार्कण्डेय पुराण में दुर्गा सप्तशती में कहा गया है कि संसार की सभी स्त्रियाँ देवी का रूप है -

विद्याः समस्ता तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्य परा परोक्तिः।। '२'

इतना ही नहीं, दुर्गा सप्तशती के ही 'प्राधानिकं रहस्यम्' में कहा है कि देवी स्वयं अपने अनुरूप मिथुन रूप की सृष्टि कर लें और इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का कार्य सम्पादित करें -

अथोवाच महालक्ष्मी र्महाकालीं सरस्वतीम्।
युवां जनयतां देव्यौ मिथुने स्वानुरूपतः ।।
इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम्।
हिरण्यगर्भो रूचिरौ स्त्रीपुंसो कमलासनौ।।
ब्रह्मन् विधे वि"र चेति धातरित्याह तं नरम्
श्रीः पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता च तां स्त्रियम्।
महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह।
---- ---- ---- ----
---- ---- ---- ----
एवं युवतयः सद्यः पुरूषत्वं प्रपेदिरे। '३'

नारी शक्ति को ही मूलशक्ति या प्रधान शक्ति मानते हुए भारतीय शास्त्रों ने पहले नारी का नाम रखा है और इसीलिये लक्ष्मी-नारायण, गिरिजाशंकर कहने का सुविचारित क्रम रखा गया है।

शतपथ ब्राह्मण में भी स्त्री को आत्मा का अर्द्धांश माना गया है-

---

१- रामचरित मानस - बालकाण्ड -दोहा- १८
२- दुर्गा सप्तशती - अध्याय ११ श्लोक -६
३- दुर्गा सप्तशती - प्राधानिकं रहस्यम् - श्लोक -१७-२४

अर्द्धो ह वा एव आत्मनो यज्जाया तस्माद्
यावद् जायां न विन्दते नैव तावत् प्रजायते
असर्वो हि तावद् भवति। अथ यदैव जायां
विन्दतेऽथ प्रजायते तर्हि हि सर्वो भवति। [1]

इसी प्रकार आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि स्त्री पुरूष का विभाग नहीं हो सकता -

'जायापत्योर्न विभागो विद्यते।' [2]

विवाह बन्धन में नारी की महत्ता :-

ऋग्वेद में नारी की साम्राज्ञी के रूप में कल्पना की गई है - 'साम्राज्ञी श्वसुरे भव'। अथर्ववेद उसकी महिमा का वर्णन करता हुआ कहता है -

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य च ।। [3]

अर्थात जैसे नदियों में सिन्धु, वैसे ही नारी के कथन का सम्मान होता था और उसकी आज्ञा का सभी पालन करते थे।

वस्तुतः दाम्पत्य जीवन का आरम्भ ही जीवन व्यापी सहकर्म की प्रतिज्ञा के साथ होता है। पारस्कर गृह्य सूत्र के अनुसार विवाह संस्कार के समय पुरूष पाणिग्रहण करते हुए कहता है-

सामाहमाह्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं त्वावेहि
विवहावहै, सह रेता दधावहै, प्रजां प्रजनयावहै
पुत्रान्विदावहै बहून् ते सन्तु जरदष्टयः संप्रियौ,
रोचिष्ण, सुमनस्यमानौ श्येष शरदः शतं जीवेम
शरदः शतंग्वं श्रृणुयाम शरदः शतम् प्रब्रवाम् शरदः
शतमदीनाः स्याम् शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।। [4]

वर कन्या के दक्षिण हस्त के अंगूठे को ग्रहण करते हुए कहता है-

ॐ गृह्यणामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टि र्यथासः भगोऽयर्मा सविता पुरन्धिर्महयूयं त्वा दुर्गार्हपत्याय देवाः।। [5]

भारतीय शास्त्रों के अनुसार विवाह पद्धति में पति की सह धर्मिणी बनने के लिए कन्या उसे वचन बद्ध करती है। यही सात वचन (शर्ते) सर्वप्रथम कन्या प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार वर भी कन्या से सात वचन (शर्ते) मनवाता है । यह

१- शतपथ ब्राह्मण (५/२/१/१०)
२- आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२/६/१३/१६-१७)
३- अथर्ववेद (१४/१/४३)
४- पारस्कर गृह्य सूत्र (१/६/३)
५- पारस्कर गृह्य सूत्र (१/६/३)

भारतीय संस्कारों, परम्पराओं में भारतीय नारी के सामाजिक अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रबलतम प्रमाण है।

ऐसी गृहिणी ही गृह को गृह संज्ञा प्रदान कराती है-

न गृहं गृहमित्याहु गृहिणी गृहमुच्यते।

ऐसी गृहिणियों की ही पूजा करने, सम्मानित करने का निर्देश शास्त्रों में मिलता है। महाभारत के अनुशासन पर्व में तो कहा गया है कि जहाँ स्त्रियों का आदर सत्कार होता है, वहां देवता प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं तथा जहाँ उनका अनादर होता है वहां की सारी क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं। जब कुल की बहू बेटियां दुख मिलने के कारण या अपमानित किए जाने के कारण शोकमग्न होती हैं, तब उस कुल का नाश हो जाता है। वे खिन्न होकर जिन घरों को शाप देती हैं, वे कृत्या के द्वारा नष्ट हुए के समान उजाड़ हो जाते हैं। वे श्रीहीन गृह न तो शोभा पाते हैं और न उनकी वृद्धि ही होती है-

स्त्रियो यत्र च पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
अपूजिताश्च यत्रैताः सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।
तदा चैतत् कुलं नास्ति यदा शोचन्ति जामयः।
जामी शप्तानि गोहानि निकृन्ताएनीव कृत्यया।
नैव भान्ति न वर्धन्ते श्रिया ही नानि पार्थिव।। '1'

पिता से दश गुणा अधिक माता का महत्व :-

यही नही भारतीय शास्त्रों ने पिता और माता और आचार्य को देवताओं की श्रेणी में रखा है -

'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव' के द्वारा इसी का उद्घोष किया गया है। इसमें भी माता को पिता से दश गुना गौरव प्रदान करने वाला उच्च स्थान दिया गया है-

'पितृ र्दश गुणा माता गौरवेणातिरिच्यते।।
मातुर्दश गुणा मान्या विमाता धर्म भीरूणा।।'

रामचरित मानस में राम के वन-प्रस्थान करने के समय माता कौशल्या इसी धर्म शास्त्रीय वचन के आधार पर उन्हें वन जाने से रोकने का प्रयास करती हैं -

जौ केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ।।
जौ पितु-मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना ।। '2'

भारतीय दार्शनिक चिन्तन का दुष्प्रभाव :-

नारी के प्रति उपेक्षा एवं हीनता का भाव जागृत करने में भारतीय दार्शनिक चिन्तन का भी योगदान देखा जा

१- महाभारत - अनुशासनपर्व - ४६/५-७
२- रामचरित मानस- अयोध्याकाण्ड - ५५/१

सकता है। भारतीय दर्शन समस्त संसार को ही मिथ्या मानते हैं और माया का प्रपंच सिद्ध करते हैं। वे जीवन का लक्ष्य भौतिक सुख-साधनों के प्रति राग उत्पन्न करना नहीं बल्कि उनका परित्याग करना ही श्रेयस्कर एवं इष्ट मानते हैं। उनमें कामनाओं- वासनाओं के नाश तथा उनके क्षय की ही आकांक्षा की प्रशंसा की गई है :-

यत्पृथिव्यां ब्रीहि यवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
सर्वं तन्नालमेकस्य तस्माद् विद्वञ्छमं चरेत् ।। '१'

साथ ही यह भी कहा गया कि उन सभी प्रकार के योग्य पदार्थो का संग्रह करने के उपक्रम करने में प्रवृत्त होने की अपेक्षा प्रयत्नपूर्वक उनके परित्याग में प्रवृत्त होना ही श्रेयस्कर है :

यः एनां प्राप्नुयात् सर्वान् यः एनां केवलां स्त्यजेत् ।
प्रापणान् सर्व कामानां परित्यागो विशिष्यते ।। '२'

इन सब कामनाओं में कामिनी की कामना सर्वथा दुस्त्यज्य है। इसलिए गीता में कहा गया -

'जहि शत्रुं महाबाहो काम रूपं दुरासदम् ।। '३'

वहीं पर यह भी कहा गया है कि सभी भोग इन्द्रियों और विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले हैं और यद्यपि वे विषयी पुरूषों को सुखरूप प्रतिभासित होते हैं किन्तु वस्तुतः वे दुख के ही हेतु हैं और आदि-अन्त वाले हैं अर्थात् अनित्य हैं- न सदा थे और न सदा रहेंगे। इसलिए संयोग एवं वियोग के वे स्वयं जनक हैं अतएव त्याज्य हैं और विवेकी तथा ज्ञानवान पुरुष उनमें मन नहीं रमने देता :

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःख योनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ।। '४'

अर्जुन ने जब भगवान् कृष्ण से यह प्रश्न किया कि प्राणी स्वयं न चाहता हुआ भी किस के द्वारा बलात् लगाए हुए की भांति प्रेरित होकर पाप का आचरण करता है तब श्री कृष्ण ने उसके लिए काम को ही क्रोध रूप में सबसे बड़ा वैरी माना है -

अर्जुन उवाच।
अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरित पुरूषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ।।
श्री भगवानुवाच
काम एष क्रोध एष रजोगुण समुदभवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्येनमिह वैरिणम् ।। '५'

१- महाभारत अनुशासन पर्व ६३/४०
२- महाभारत - शान्ति पर्व - १७७/१६
३- गीता - अध्याय ३/४३
४- गीता - अध्याय ५/२२
५- गीता - अध्याय ३/३६-३७

इसलिए शास्त्रों ने काम, क्रोध और लोभ को परम शत्रु और नरक का द्वार बताकर उनसे बचने का उपदेश दिया है:-

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसी बात को दोहे में इस प्रकार व्यक्त किया है :-

तात तीनि अति प्रबल खल, काम, क्रोध अरू लोभ ।
मुनि विज्ञान धाम मन, करहिं निमिष महुं क्षोभ ।।[१]

इनकी प्रबलता का आधार बताते हुए वे वहीं कहते हैं :-

लोभ के इच्छा, दम्भबल, काम के केवल नारि ।
क्रोध के परूष बचन बल, मुनिवर कहहिं विचारि ।।[२]

अतएव काम को दूर करने के लिए नारी को भी दूर करना इष्ट बताया गया। इसलिए नारी में अनेक दुर्गुणों को खोज लिया गया। नारी में यह दोष दर्शन की प्रवृत्ति कामनाओं- वासनाओं से बचने के लिए की गई। यह स्थिति ब्रह्मचारियों और विरक्त, सन्यासियों के लिए तो की ही गई गृहस्थों के लिए भी धर्म से अविरूद्ध काम के ही सेवन का विधान किया गया। धर्म द्वारा नियन्त्रित काम नरक का नहीं स्वर्ग का द्वार माना गया : 'धर्माविरूद्धो भूतेषु कामो स्मिऽभरतर्षभ ।[३]

इसलिए भारतीय संस्कारों और परम्पराओं में नारी की महत्ता एक स्वर से स्वीकार करते हुए भी विरक्तों को, महात्माओं को, सन्यासियों आदि को नारी के मोह में न पड़ने का उपदेश देना भी इष्ट समझा गया क्योंकि उन्हें तो संसार मात्र से विरक्ति का उपदेश दिया जाता है। उन्हें गीता के अनुसार नारी से ही नहीं जन संसद् से भी दूर रहने का उपदेश दिया जाता है :-

'असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदार गृहादिषु।
नित्यं च समचित्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।।
मयि चानन्य योगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्त देश सेवित्यमरतिर्जनसंसदि ।।[४]

इसलिए नारद जैसे विरक्त ज्ञानी मुनि को विवाह करने से रोकने का कारण बताते हुए श्री राम कहते हैं :-

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह मँह अति दारून दुखद माया रूपी नारि ।।
सुनु मुनि कह पुराण श्रुति संता । मोह विपिन कहुं नारि वसन्ता।
जप तप नेम जलासय भारी । होई ग्रीषम सोष सब नारी ।।

१- श्री रामचरित मानस - अरण्यकाण्ड दोहा - ३८
२- वही - दोहा - ३८ (क)
३- गीता- अध्याय- ७/११
४- गीता- १३/९-१०

----- ------ ----- ------

----- ------ ----- ------

धर्म सकल सरसीरूह वृन्दा । होइहिय तिन्हहि दहै सुख मन्दा।
पुनि ममता जवास बहुताई । पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ।।
पाप उलूक निकर सुखकारी । नारि निबिड़ रजनी अंधियारी ।
बुधि बल सील सत्य सब मीना । बनसी सम तिय कहहिं प्रवीना।।
अवगुन मूल सूलप्रद, प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन, मुनि मैं यह जिय जानि।।[१]

पाप के लिये शास्त्रानुसार नर-नारी समान रूप से दोषी :-

शास्त्रों ने पुरूष और नारी को पाप के लिए समान रूप से ही दोषी नहीं माना बल्कि पुरूष को ही अधिक दोषी माना है क्योंकि पुरूष ही अभियोक्ता होता है। अतएव पाप में पहले वही प्रवृत्त होता है। अपने आदर्श राज्य की स्थिति का वर्णन किसी राजा ने इस प्रकार किया है :-

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

इस उद्घोषणा में कहा गया है कि मेरे राज्य में कोई स्वैर आचरण करने वाला स्वैरी पुरूष ही नहीं है तो फिर स्वैरिणी स्त्री हो ही कैसे सकती है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि स्त्री को स्वैरिणी बनाने वाला स्वैरी पुरूष ही होता है।

स्कन्द पुराण के अनुसार पत्नी को त्याग कर अन्य स्त्री में रमण करने वाले व्यक्ति को अगले जन्म में स्त्री होकर वैधव्य कष्ट भोगना पड़ता है और जो स्त्री पति को त्याग कर जार में या अन्य पुरुष में रमण करती है वह भी कर्म - विपाक से विधवा होती है -

यः स्वनारीं परित्यज्य निर्दोषां कुलसम्भवाम्।
परदाररतो वा स्यादन्यां वा कुरूते स्त्रियम्।
सोऽन्य जन्मनि देवेशि ! स्त्री भूत्वा विधवा भवेत्।
या नारी तु पतिं त्यक्त्वा मनोवाक् काय कर्मभिः
रहः करोति वै जारं गत्वा वा पुरूषान्तरम्।
तेन कर्म विपाकेन सा नारी विधवा भवेत्।[२]

आचार्य वराह मिहिर ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ वृहसंहिता में 'स्त्री प्रशंसा' नामक एक अलग अध्याय ही लिखा है। उसमें उन्होंने एक श्लोक में यह कहा है कि यद्यपि पुरूष और स्त्री को समान रूप से ही पाप लगता है किन्तु पुरूष वर्ग के वर्चस्व वाले समाज में केवल स्त्री को ही दोषी बताया जाता है :-

---

१- रामचरित मानस- अरण्यकाण्ड - दोहा - ४३-४४
२- स्कन्द पुराण - अरूंधती आख्यान।

दम्पत्योर्व्युत्क्रमे दोषः समः शास्त्रे प्रतिष्ठितः।
नरा न ह्मवेक्षंते तेनात्रवरमंगनाः ।।[१]

अर्थात् स्त्री पुरूषों के परस्पर व्युत्क्रम में अर्थात् पुरूषों को पर स्त्री संग में और स्त्री को पर-पुरूष संग में तुल्य ही दोष धर्मशास्त्र में कहा है। परन्तु पुरूष पर-स्त्री संग में कुछ दोष नहीं देखते और स्त्री पर पुरूष संग में दोष देखती है- इसलिए पुरूषों से स्त्री उत्तम है।

ऐसी ही स्थिति स्त्रीकी स्वतन्त्रता को लेकर भी है। शास्त्रों ने स्त्री की पूर्ण स्वतन्त्रता का विरोध किया है। उनके अनुसार स्त्री को किसी न किसी के संरक्षण में रहना चाहिए। स्वयं मनु ने यह व्यवस्था दी है :-

पिता रक्षति कौमारे भ्राता रक्षति यौवने।
पुत्रं च स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।।

अर्थात् उसकी रक्षा का भार उसकी कुमारी अवस्था में पिता सम्हाले, विवाह के उपरान्त उसका पति सम्हाले तथा पति के दिवंगत होने या सन्यस्त होने पर पुत्र सम्हाले तथा किसी भी स्थिति में स्त्री स्वतन्त्रता की पात्र नहीं है।

यह स्त्री की पूर्ण स्वतन्त्रता की ही स्थिति के लिए विधान है जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी स्त्रियों की अनियन्त्रित स्वतन्त्रता को ही दोषपूर्ण माना है-

महावृष्टि चलि फूटि कियारी।
जिमि स्वतन्त्र होई बिगरैं नारी ।।[२]

आशय यह है कि स्त्रियों को महावृष्टि की तरह पूर्णतया अनियन्त्रित नहीं हो जाना चाहिए। यदि गोस्वामी तुलसीदास जी को स्त्री की स्वतन्त्रता अभीष्ट न होती तो वे रामचरित मानस में ही शिव-पार्वती परिणय प्रसंग में पार्वती की माता मयना के मुख से इस बात पर दुख व्यक्त न कराते कि विधि ने नारी की उत्पत्ति ही क्यों की जिसे पराधीन रहना पड़ता है क्योंकि पराधीन को स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता :-

कत विधि सृजी नारि जग माँही।
पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ।।[३]

परन्तु यह शास्त्रों द्वारा नारी की पूर्ण परतन्त्रता की स्थिति की बात नहीं थी बल्कि सीमित स्वतन्त्रता की ही बात थी क्योंकि भारतीय शास्त्र पूर्ण स्वतन्त्रता तो पुरुष की या किसी की भी नहीं मानते। भारतीय शास्त्रों के अनुसार स्त्री ही नहीं, मनुष्य मात्र को भी सीमित स्वतन्त्रता का ही उपयोग करना इष्ट है। पूर्ण स्वतन्त्रता या अनियन्त्रित स्वतन्त्रता सदैव सबके लिए - चाहे वह पुरूष हो या स्त्री विघातक होती है। भारतीय शास्त्रों का यह सुविचारित मत है और वे सर्वतन्त्र तो केवल परमेश्वर को ही मानते हैं। यद्यपि वह परम स्वतन्त्र परमेश्वर भी अपने आपको भक्तों के पराधीन करने में सुख मानता है :-

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।

१- वृहत्संहिता - आचार्य वाराह मिहिर - स्त्री प्रशंसा अध्याय- श्लोक -११
२- रामचरित मानस- किष्किन्धा काण्ड - दोहा १/४
३- रामचरित मानस - बालकाण्ड - दोहा १०३/३

साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैभक्त जन प्रियः।।

----- ----- ----- ---

----- ----- ----- ---

मयि निर्बद्ध हृदयाः साधवः समदर्शनाः ।
वशी कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा।"[1]

इस प्रकार की सीमित स्वतन्त्रता की वकालत पाश्चात्य दार्शनिक एवं चिन्तक भी करते रहें हैं किन्तु उसके विस्तार में जाना यहाँ इष्ट नहीं है। जहाँ तक भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री स्वतन्त्रता की बात है उसका विवेचन आगे नारी सम्बन्धी व्यावहारिक पक्ष का निरूपण शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।

नारी सम्बन्धी व्यावहारिक पक्ष का निरूपण :-

उपर्युक्त विवेचन में शास्त्रों में नारी की स्थिति पर विचार किया गया है किन्तु जब हम नारी सम्बन्धी व्यावहारिक पक्ष पर दृष्टि डालते हैं तो पातें हैं कि व्यवहार में यह आदर्श स्थिति उतर नहीं पाती थी क्योंकि पितृ सत्तात्मक समाज में स्त्री को द्वितीय स्तर का स्थान प्राप्त था विशेषकर पत्नी को और इस आधार पर पिता अपने पुत्र पर अपनी पत्नी से अधिक अधिकार रखता था। वह पुत्र को अपने अनुकूल ढालता था और पत्नी को अर्थात् पुत्र की मां को पति के अनुसार ढलना पड़ता था।

नारी को संरक्षण की आवश्यकता :-

मनुस्मृति में जब स्त्री को सदैव किसी न किसी के संरक्षण में रखने की व्यवस्था की गई तब उसके अनेकानेक कारण थे। स्त्री से कुल या वंश की परम्परा चलती है। उसी के द्वारा वर्ण व्यवस्था का पालन हो पाता है। उसकी शुचिता से ही कुल या वंश और वर्ण की शुचिता सुनिश्चित होती है। इसलिए उसकी शुचिता की संरक्षा आवश्यक समझी गई। पुरूष की बल शालिता और स्त्री की शारीरिक असमर्थता के कारण भी उसे संरक्षण दिया जाना आवश्यक था। उसकी मातृत्व शक्ति की रक्षा, प्रजनन की क्षमता का संरक्षण करना भी आवश्यक था। इसलिए उन सहायता की अपेक्षा वाली अवस्थाओं में स्त्री ने स्वयं भी संरक्षण की आकांक्षा की। ऐसी निश्चिन्तता जिसमें भोजन, वस्त्र तथा आश्रय स्थान की समुचित व्यवस्था न केवल उसके लिए हो बल्कि उसके गर्भ के लिए और नवजात शिशु के लिए भी हो ऐसी आकांक्षा हर स्त्री में प्रकृतिगत होती है और उसके प्रति पूर्ण आश्वस्त होने पर ही नारी गर्भ धारण के उत्तर दायित्व को वहन करने में प्रवृत्त होती है। इस प्रकार स्त्री को प्राकृतिक दृष्टि से भी अधिक संरक्षण की आवश्यकता होती है।

संरक्षण के नाम पर उत्पीड़न :-

परन्तु इतने से ही पुरूष को उस पर कठोर नियन्त्रण करने या अत्याचार करने का अधिकार नहीं मिल जाता। फिर क्या कारण है कि समाज में स्त्री पर कठोर नियन्त्रण एवं अत्याचार होने लगा। इसका एक मात्र उत्तर यह है कि पुरूष वर्ग ने अपने अधिकारों का दुरूपयोग किया और अपनी ईर्ष्यालु प्रकृति के कारण स्त्री के प्रति शंका एवं सन्देह का भाव पाला। उसे योग्य वस्तु मानकर उसका स्वेच्छा से और शीघ्रता से परित्याग करना उचित, उपयुक्त एवं अनुकूल माना।

वस्तुतः स्त्री की शारीरिक अक्षमताओं के कारण तथा प्रकृति प्रदत्त उत्तरदायित्वों के कारण समाज में उसकी भूमिका पुरूष

१- श्रीमद्भागवत - ६/४/६३-६६

ार्ग से भिन्न रही। यह अनन्त काल से चला आ रहा क्रम है।

यौन आधार पर समाज में भूमिका विभाजन में अनेक श्रेणियों और स्तरों की विद्यमानता श्री एम० एन० श्रीनिवास जैसे भारतीय समाजशास्त्रियों ने भी स्वीकार की है।'[1] दूसरी ओर पाश्चात्य समाजशास्त्री मेरियन जे० लेवी जूनियर का भी मत है कि शरीर रचना या यौनाधार पर सामाजिक भूमिका का विभाजन स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए शरीर रचना के आधार पर केवल स्त्रियां ही मातृत्व पद ग्रहण कर सकती हैं। इसलिए उनके अनुसार 'इस आधार पर भूमिका विभाजन तथा शक्ति विभाजन अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। सच तो यह है कि न तो वर्तमान में कोई ऐसा समाज है और न कभी अतीत में था, जिसमें यौन- आधार पर भूमिका विभाजन अप्रासंगिक समझा गया हो अथवा असंगत रहा हो।'[2]

डॉ० सुरेश धींगड़ा के अनुसार 'भारतीय समाज व्यवस्था इसी प्रकार की है। सामाजिक दायित्वों का निर्धारण स्त्री-पुरूष भेद पर होता है। दूसरी ओर कुछ पद ऐसे भी हैं जिनके लिए स्त्री - पुरूष का कोई भेंद नहीं। परन्तु, उन पर स्त्री सदस्यों का प्रतिशत अपेक्षाकृत नगण्य है। अन्यथा भारतीय समाज में प्रत्येक क्षेत्र में पुरूष का प्रभुत्व है। यहां तक कि शिशु के जन्म के समय भी इस अन्तर को बनाए रखने का प्रयत्न किया जाता है।३

वे आगे लिखते हैं - 'समाज में परिवर्तन अवश्यम्भावी होता है। आधुनिक संसार में समाजगत सामान्य परिवर्तन वैयक्तिक अनुभव और समाज के क्रियाशील पक्षों के व्यापक क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। इसलिए नहीं कि समाज में एक्य के सूत्र अधिक दृढ़ होते हैं, वरन् इसलिए कि परिवर्तन की सामान्य स्थिति अथवा सम्भावनाओं से जीवन का कोई पक्ष अछूता नहीं है। पिछली कई दशाब्दियों में भारतीय समाज में कतिपय सम्भावनाओं की पूर्ति हुई है, यद्यपि उसमें पर्याप्त रिक्त- स्थान शेष है---------परिवर्तन का एक और महत्वपूर्ण पक्ष है- स्त्री की स्थिति में परिवर्तन।'[4]

वे यह मानते हैं कि नगरीकरण, औद्योगीकरण एवं पाश्चात्यीकरण के माध्यम से भारतीय स्त्री को अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है।[5] यद्यपि वहीं वे श्री एम० एन० श्रीनिवास के इस सुविचारित मत का भी उल्लेख करते हैं कि 'यह जितना नगर और विशेषतः उच्च जाति की स्त्रियों के विषय में सत्य है, उतना ग्रामीण क्षेत्रों के स्त्री समाज और निम्न जातियों के लिए नहीं।[6]

कहना न होगा कि हिन्दी कहानी की विधिवत् प्राण प्रतिष्ठा भी उसी संक्रमण काल में हुई जब भारत नगरीकरण, औद्योगीकरण एवं पाश्चात्यीकरण की ओर बढ़ रहा था। इसलिए उसमें संक्रमण काल की प्रवृत्तियों के साथ- साथ प्राचीन परिपाटी का पालन पाया जाता है। इसका यथा योग्य विवेचन आगे यथा स्थान किया जायेगा।

यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि अतीत काल में भारतीय नारी को सभी प्रकार के उत्पीड़नों, शोषणों का बुरी तरह शिकार होना पड़ा है। शास्त्रों में दी गई व्यवस्थाओं के सर्वथा विरूद्ध जाकर लौकिक व्यवहार में ऐसी धारणायें एवं मान्यताएं पाली एवं पुष्ट की गईं और दृढ़ मूल की गई जिनकी कलुषित छाया से अत्याधुनिक समाज भी मुक्त नहीं हो पाया है। इसके कारण अतीत में भी और अब भी समाज में स्त्री की स्थिति अत्यन्त दयनीय बनी हुई है।

१- इण्डियन सोशल स्ट्रक्चर - एम० एन० श्रीनिवास - पृ० ६८-७०

२- माडर्नाइजेशन एण्ड स्ट्रक्चर आव् सोसायटी- मैरियन जे० लेवी- खण्ड - प्रथम - पृ० -२०७

३- हिन्दी कहानी- दो दशक- डॉ० सुरेश धींगड़ा - पृ०- १७

४- वही- पृ०- ३२

५- वही- पृ०- ३२

६- वही- पृ०- ३२

आधुनिक चिन्तन धारा ने मनुष्य मात्र के लिए बिना स्त्री पुरूष का भेद किए या गरीब - अमीर का भेद किए समान अधिकार का प्रतिपादन किया। औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण, नगरीकरण, एवं पाश्चात्यीकरण ने अनेकानेक अपरिहार्य वैचारिक परिवर्तन उपस्थित किए हैं। विज्ञान ने चाहे अनचाहे अनेक रूपों में जीवन में प्रवेश पा लिया है। इन सबका समग्र प्रभाव पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में प्रभूत मात्रा में पड़ रहा है। नारी स्वतन्त्रता के लिए भी उसने मार्ग प्रशस्त किया है। आगे संक्षेप में उसी पर दृष्टिपात किया जा रहा है।

नारी की वास्तविक स्वतन्त्रता :-

आधुनिक युग में पाश्चात्य जगत ने जिस नारी स्वतन्त्रता का आह्वान किया है वह वास्तव में सच्ची नारी स्वतन्त्रता नहीं कही जा सकती। वह न केवल एकांगी है बल्कि अनेक नये दोषों को जन्म देने वाली है जो नारी जाति के लिए पुनः कलंक सिद्ध होंगे।

पाश्चात्य जगत और उसके प्रभाव से भारत में भी जो नारी स्वतन्त्रता का रूप उग्र रूप में उभरा उसका उद्देश्य अर्थ एवं काम के क्षेत्र में नारी को स्वतन्त्रता दिलाने तक सीमित है और इस कारण एकांगी है। अर्थ की स्वतन्त्रता जहां नारी को स्वावलम्बी बनाती है वहीं उसके लिए आर्थिक स्वतन्त्रता के दुरूपयोग का मार्ग भी खोल देती है। उस पर काम की स्वतन्त्रता उसको किसी भी स्तर तक नीचे गिरा सकती है। इससे उत्पन्न होने वाले धार्मिक एवं नैतिक अधः पतन की ओर न भी ध्यान दें तो भी सामाजिक विश्रृंखलता एवं विघटन को कथमपि रोका नहीं जा सकता और उसके दूरगामी दुष्परिणामों से बच पाना असम्भव सा बनता जा रहा है।

आधुनिक युग की चेतना ने न केवल पुरूषों की शिक्षा का मार्ग प्रशस्त किया बल्कि नारियों को भी समान रूप से शिक्षा पाने का अधिकार दिलाया। विज्ञान ने सभी प्रकार के साधन एवं उपकरण उपलब्ध करा कर शिक्षा को तो सुलभ बनाया ही, जीवन शैली में भी सुलभता एवं सुगमता ला दी। पुरूषों के साथ ही साथ स्त्रियों की जीवन शैली में आमूल-चूल परिवर्तन लाने में विज्ञान ने अभूतपूर्व भूमिका निभायी है। इससे नारियों की चेतना का विकास हुआ और उन्हें सभी प्रकार की समस्याओं को समझने तथा उनका समाधान प्रस्तुत करने में पुरूषों के साथ सहभागिता का समान अवसर सुलभ हुआ। वह जीवन के हर क्षेत्र में पुरूष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर संघर्ष करने के लिए सन्नद्ध एवं तत्पर हो सकी। इस क्षेत्र में पुरूषों से सहयोग मिलने पर भी नारी को शोषण से मुक्ति नहीं मिल सकी। पुरूष वर्ग की वैड़ाल वृत्ति के कारण नारी निरीह चूहे से अधिक स्वतन्त्रता नहीं पा सकी क्योंकि उस पर पुरूष वर्ग की कुदृष्टि बराबर बनी रही। इसलिए पुरूषों की दुतरफी चाल से नारी आज भी मुक्त नहीं हो सकी। एक ओर पुरूष वर्ग उसे समानता, सम्पूर्ण स्वतन्त्रता का सब्जबाग दिखलाता है और दूसरी ओर नारी की अर्थ एवं काम के क्षेत्र की स्वतन्त्रता का दोनों हाथों से दुरूपयोग करने में कटिबद्ध दृष्टिगत होता हैं। इस प्रकार की स्वतन्त्रता देकर भी वह नारी का शोषण करने या अपनी काम वासना का साधन बनाने से किसी भी क्षेत्र में चूकता नही नजर आ रहा है। तो क्या नारी स्वतन्त्रता का उसका समर्थन केवल ऊपरी दिखावा तो नहीं है?

नारी की सच्ची स्वतन्त्रता का आधार नारी सम्मान :-

वस्तुतः नारी के प्रति जब तक सम्मान का भाव जागृत नहीं किया जायेगा तब तक उसके शोषण- उत्पीड़न को समाप्त करना तो दूर रोकना भी कठिन हो जायेगा। इसके लिए मानसिकता बदलने, दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता है जो केवल धार्मिक या नैतिक मूल्यों को महत्व देने पर ही सम्भव है, बिना इस बात पर ध्यान दिए कि अतीत में धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों की आड़ में ही नारी पर अनेक प्रकार के अत्याचार, अनाचार किए जाते रहे हैं। वस्तुतः यह मूल्यों के दोष के कारण नहीं होता रहा बल्कि उनके दुरूपयोग के कारण ही सम्भव होता रहा है। आज भी यह देखा जाता है कि नियम- कानून ठीक एवं सदाशयतापूर्ण होने पर भी उनका क्रियान्वयन विकृत हो जाता है या जान बूझकर बना लिया जाता है। तो क्या इससे कानून या नियम को ही गलत मान लिया जाय। यह तो कोई बुद्धिमानी न होगी। उचित तो यह होगा कि उसके क्रियान्वयन में आ गयी विकृतियों को दूर किया जाय तथा उसमें नियुक्त अभिकरणों को सुधारा जाय और नियम या कानून की सदाशयता के प्रति सहानुभूति एवं सहमति का सृजन किया जाय।

निस्सन्देह अतीत काल में भारतीय नारी को भी अकल्पित उत्पीड़नों, शोषणों का शिकार होना पड़ा है। उसके अनेक कारण हैं। उन पर गम्भीरता से , सदाशयता से और बिना किसी पूर्वाग्रह के विचार करने की आवश्यकता है। उतावली में या आक्रोशवश या प्रतिशोध की भावना से प्रचलित व्यवस्था पर प्रहार करना अव्यवस्था ही फैला पायेगा, दूसरी सुन्दरतर वैकल्पिक व्यवस्था नहीं प्रस्तुत कर सकेगा। यहां न उन कारणों पर विचार करने का अवकाश है न उनके निराकरण पर। यहां हमारा उद्‌देश्य मात्र परिस्थितियों के पूर्वापर रूप पर दृष्टिपात करना ही है।

विश्व में नारी चेतना का भाव जागृत किए जाने के अथक प्रयासों के बाद भी नारी को आज भी वह स्थान नहीं प्राप्त हो सका है जों भारत में दाम्पत्य जीवन में , पारिवारिक जीवन में, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में प्राप्त है। आज भी भारत में नारी को माता, बहिन एवं पुत्री के रूप में वह गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त है जिसका विश्व की शेष सभी संस्कृतियों में सर्वथा अभाव परिलक्षित होता है। भारत की माताएँ, बहिनें एवं पुत्रियां अपने पिता, भाइयों एवं पुत्रों से पूर्ण सुरक्षा पाने के विषय में आश्वस्त रहती हैं किन्तु आधुनिकता में पले पाश्चात्य जीवन में, नारी स्वतन्त्रता का गौरव गान तो बहुत किया जाता है पर नारी में सुरक्षा का कोई आश्वासन भाव जागृत नहीं हो पाता। और तो और, नारी को मताधिकार या सन सत्ता सम्हालने का अधिकार देने में भी हिचक अनुभव की जाती है। यहां इस या इस प्रकार के अन्य भेदभावों या पक्षपातों का भी उल्लेख करना अभीष्ट नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यद्यपि शास्त्रों में नारी की महत्ता प्रतिपादित की गई है तथा उसे पुरूष से अधिक महत्व भी दिया गया है किन्तु अनेकानेक कारणों से व्यवहार में स्त्री के साथ न्याय नहीं किया गया है। अतः आज पुरूष द्वारा स्त्रियों के लिए या स्वयं नारियों द्वारा अपने लिए समान अधिकार की मांग करने और पूर्ण स्वतन्त्रता की आड़ में उनके चारित्रिक आदि अनेकविध पतन की स्थिति के लिए केवल उन्हें ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता। वास्तविक दोष तो उस समाज व्यवस्था का है जिसने उन्हें ऐसा रास्ता अपनाने के लिए बाध्य किया है।

आगे के प्रकरण में हम इस पक्ष पर दृष्टिपात करेंगे कि हिन्दी कहानी में भारतीय नारी का अस्तित्व किस रूप में विद्यमान है और क्रमशः सामाजिक चेतना के साथ उसको किस प्रकार का स्थान प्राप्त हो सका।

(ब) हिन्दी कहानियों में भारतीय नारी के अस्तित्व का क्षिप्र विवेचन :-

मानव की स्त्री- पुरूष रूप में स्थिति सृष्टि के आदि काल से ही है और तब से नारी- पुरूष का उल्लेख हर कहानी में होता आया है। जैसे केवल पुरूषों का अपना कोई इतिहास नहीं हो सकता, उसी प्रकार केवल स्त्रियों का भी कोई इतिहास नहीं हो सकता। हॉं, यह अवश्य है कि पुरूष प्रधान समाज के कारण स्त्री का उतना विशद चित्रण नहीं हो पाया या उनकी भूमिका उतनी विशद नहीं हो पायी। जहॉं या जिस क्षेत्र में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण हुई भी उसका श्रेय भी पुरूष प्रधान समाज में पुरूष वर्ग ने ही ले लिया।

वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में नारी :-

विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में यम-यमी, पुरूरवा- उर्वशी, जैसे सम्वादात्मक आख्यान नर-नारी कथा की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। बाद में ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, महाकाव्यों, पुराणों और विशेषतया रामायण, महाभारत में भी चरित्र का विशद वर्णन मिलता है। रामायण में जहां सीता के चरित्र की महत्ता है वहीं महाभारत में द्रोपदी भी कोई कम महत्वपूर्ण पात्र नहीं है। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में यह प्रसंग आता है कि वाल्मीकि मुनि ने सीता के दोनों पुत्रों को सीता के महान् चरित्र से युक्त सम्पूर्ण रामायण नामक महाकाव्य का अध्ययन कराया :

काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत् ।
पौलत्स्यवधनित्येवं चकार चरितव्रतः ।[1]

अमल सरकार नामक बंगाली लेखक ने अपने अंग्रेजी में लिखे ग्रन्थ 'ए स्टडी आन द रामायनाज' में रामायण में नारियों की भूमिका पर एक स्वतन्त्र परिशिष्ट ही जोड़ा है। वे वहां प्रारम्भ में ही लिखते हैं कि महाकाव्य में महिलाओं की भूमिका इतनी महत्वपूर्ण है कि विद्वान् कभी-कभी महाकाव्य को पुरूष की अपेक्षा नारी की कथा कहते हैं। उन्होंने राजा दशरथ की अपेक्षा कौशल्या, केकयी और सुमित्रा की अनपत्यता को कथा का महत्वपूर्ण अंश माना है। इसी प्रकार मन्थरा और सूर्पणखा के आचरण के समक्ष सीता के चरित्र का उद्घाटन हुआ है। उधर तारा भी सुग्रीव एवं बालि के बीच वैमनस्य का कारण बनी है।[2]

वैदिक एवं पौराणिक काल के उपरान्त बौद्ध साहित्य में भी कहानियों का अक्षय भण्डार है जिनमें स्त्री चरित्र का समान रूप से वर्णन मिलता है।

हिन्दी कहानियों में नारी का अस्तित्व :-

हिन्दी में कहानियां तो बहुत बाद में समाविष्ट हुईं। सन् १८०३ की 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की प्रथम कहानी माना जाता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह रानी केतकी को लेकर लिखी गई कहानी है किन्तु इसमें अप्रासंगिक संयोगों और अस्वाभाविक मानवीयता की अतिशयता के कारण इसे मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से सम्पन्न कृति ही माना जा सकता है। इस कहानी के अतिरिक्त किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'प्रणयिनी परिणय' और 'इन्दुमती', रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय', माधव प्रसाद मिश्र कृत 'लड़की की कहानी', माधव राव सप्रे कृत 'एक टोकरी भर मिट्टी', बंग महिला कृत 'दुलाई वाली' आदि को समीक्षकों ने हिन्दी की पहली कहानी के स्थान पर रखा है। जो भी हो, इन में से किसी में भी नारी का स्थान गौण नहीं है। कुछ समीक्षक चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' को हिन्दी की पहली और मौलिक तथा साथ ही मानवीय संवेदना के स्वाभाविक धरातल का स्पर्श करने वाली कहानी मानते हैं। इस कहानी में भी नारी की ही प्रधानता है। इसके अतिरिक्त मास्टर भगवान् दास कृत 'प्लेग की चुड़ैल', गिरिजादत्त बाजपेयी की 'पण्डित और पण्डितानी' आदि कहानियों को भी हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों में परिगणित किया जाता है जिनमें नारी का प्रभूत मात्रा में चित्रण उपलब्ध होता है। यही बात लोक कथाओं को लेकर भी कही जा सकती है।

इस प्रकार हिन्दी कहानियों में नारी का अस्तित्व प्रारम्भ से ही पाया जाता है। इतना ही नहीं वह पुरूष पात्रों से किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण भी नहीं है। इसे इन कहानियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियॉं :-

(१) इन्दुमती :-

हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों में परिगणित किशोरी लाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' कहानी का तो शीर्षक ही नारी पात्र (कथा की नायिका - इन्दुमती) के नाम पर हुआ है। कहानी का कथानक कुछ इस प्रकार है :-

'इन्दुमती' नामक नवयुवती अपने वृद्ध पिता के साथ विन्ध्याचल के वन में निवास करती है। वन के निर्जन स्थान में रहने के कारण वह तब तक किसी अन्य पुरूष को नहीं देख सकी थी। अजगढ़ का राजकुमार चन्द्रशेखर पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी की हत्या करके भागता है। इब्राहीम का एक सेनापति उसका पीछा करता है। चन्द्रशेखर भागता हुआ विन्ध्याचल के वनों में छिप जाता है जहाँ वह अपने घोड़े के मर जाने के कारण एक पेड़ के नीचे भूखा- प्यासा बैठ जाता है। वहीं इन्दुमती उसे देखती है और उस पर मुग्ध हो जाती है। दोनों में परस्पर प्रेम हो जाता है। इन्दुमती का पिता देवगढ़ का राजा था, उसका राज्य

१- वाल्मीकीय रामायण- बालकाण्ड - ४/७
२- ए स्टडी आन द रामायणाज- अमल सरकार - पृ० १२२- २३

इब्राहीम लोदी ने छीन लिया था, इसलिए वह वन में अपनी पुत्री के साथ रहता था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि जो इब्राहीम लोदी को मारेगा उसी के साथ वह इन्दुमती का विवाह करेगा। चन्द्रशेखर ने अनजाने ही इस प्रतिज्ञा को पूरा किया था और अनजाने ही दैवयोग से वह विन्ध्याचल के वन में आ गया था और उसकी भेंट इन्दुमती से हो गयी थी। चन्द्रशेखर और इन्दुमती के प्रेम को देखकर इन्दुमती के पिता ने दोनों का विवाह कर दिया।

इस आदर्श कथानक में पिता द्वारा कन्या का विवाह करना, पिता द्वारा कन्या के उचित वर से विवाह के लिए प्रतिज्ञा करना, उस प्रतिज्ञा का दैवयोग से निर्वाह होना और विधि के विधान द्वारा पूर्वजन्म से भाग्य में लिखे पति का पत्नी को प्राप्त करना और पत्नी का पति प्राप्त करना वर्णित है। इससे यह भी प्रतिपादित किया गया है कि विवाह पूर्वजन्म से निर्धारित सम्बन्ध रहता है।

(२) ग्यारह वर्ष का समय :-

इसी प्रकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' भी भावुकता और मार्मिकता से परिपूर्ण पति-पत्नी के मिलन की आदर्श कथा है। इसकी एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें आश्चर्य और कौतूहल का तत्व भी मिलता है। कथानक कुछ इस प्रकार है :-

दो मित्र रात को टहलते- टहलते एक उजड़े गॉव के खण्डहर में जा पहुचते हैं जहॉं एक युवती दिखायी पड़ती है। इससे पता चलता है कि वह बाल्यावस्था में इसी गॉव में ब्याही थी। गॉव बाढ़ से नष्ट हो जाने के कारण पूरी तरह लुप्त हो गया और वह ग्यारह वर्ष से इसी खण्डहर में रह रही है। संयोग से जिस पुरूष को वह अपनी व्यथा- कथा सुनाती है वही उसका पति है। पुरूष के हाथ में परिचय का तिल का निशान देखकर वह अपने पति को पहचान जाती है। इस प्रकार इस कहानी में बिछुड़े हुए दम्पत्ति को मिलाकर दाम्पत्य के आदर्श की प्रतिष्ठा की गई है।

(३) दुलाईवाली :-

इसीप्रकार श्रीमती राजेन्द्र बाला घोष की कहानी 'दुलाईवाली' में भी पति से बिछुड़ी पत्नी की कथा है किन्तु यह बिछुड़ाव रेल यात्रा में होता है जो आधुनिक युग के परिवर्तनों में प्राचीन रूढ़िवादी मान्यताओं के कारण उत्पन्न समस्याओं से जुड़ा है। नवलकिशोर नामक हंसोड़ युवक अपनी पत्नी के साथ इलाहाबाद तक की रेलयात्रा के लिए चल पड़ता है। उसका मित्र वंशीधर भी बनारस से जल्दी- जल्दी चलकर मुगलसराय पहुँचता है कि अपने मित्र के साथ वह भी इलाहाबाद जाये पर मुगलसराय स्टेशन पर वह अपने मित्र को नही पाता। रेल के जिस डिब्बे में वह यात्रा करता है उसमें एक स्त्री इसलिए रो रही थी कि उसका पति मिरजापुर स्टेशन पर गाड़ी से छूट गया है। उसके रूदंन से व्यथित होकर वंशीधर उसे आश्वासन देता है कि वह उसके पति को खोजने में सहायता करेगा। उधर नवल किशोर उसी डिब्बे में दुलाई ओढ़े दूसरी स्त्री की तरह बैठा यह सब देख रहा है और अपने नाटकीय व्यवहार पर स्वयं आनन्दित हो रहा है। जब वंशीधर रेल के डिब्बे से उतर कर उस स्त्री के पति को खोजने लगता है तब दुलाई ओढ़े नवल किशोर अपने मित्र से जा मिलता है।

इस प्रकार इस कहानी में भी महिला की महत्वपूर्ण स्थिति है। आधुनिक युग की विषमताओं में प्राचीन परम्पराओं से जुड़ी नारी को पुरूष वर्ग से उसी प्रकार सहयोग की अपेक्षा है जिस प्रकार दुलाई वाली में उसे मिलती है। वह अपने पति के मित्र को नही पहँचानती। साथ ही वह दुलाई ओढ़े पास ही बैठे अपने पति को भी नहीं पहचान पाती। पति अपने मित्र के आचरण की परीक्षा लेता है और कठिनाई में मित्रोचित सहायता पाता है।

कहानी के अन्त में वंशीधर का नवलकिशोर के प्रति यह कथन दृष्टव्य है - 'मेरे ऊपर जो कुछ बीती सो वीती, पर वह बेचारी जो तुम्हारे से गुनवान के संग पहली ही बार रेल से आ रही थी, बहुत ही तंग हुई। उसे तो तुमने नाहक रूलाया।'

किशोरी लाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' कहानी में इन्दुमती के पिता अपनी पुत्री के लिए अपनी प्रतिज्ञानुसार पति प्राप्त कर उसे ईश्वरीय विधान मानते मिलते हैं :-

'सुनो भाइयों! इतने दिनों पीछे परमेश्वर ने हमारा मनोरथ पूरा किया। जो बात एक प्रकार से अनहोनी थी, सो आप हो गयी। यह परमेश्वर ने ही किया, नहीं तो विचारी इन्दुमती का बेड़ा पार कैसे लगता ? देखो------ तो, इस बात के अतिरिक्त और क्या कहा जाय कि परमेश्वर ही ने इन्दुमती का जोड़ा भेज दिया है और साथ ही इस दयामय ने मेरी प्रतिज्ञा पूरी की।'

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' की नायिका भी एक उदात्त नारी चरित्र का चित्रण है। नायिका किस प्रकार त्यागमय जीवन के प्रति समर्पित है यह उसके इस कथन से ही स्पष्ट है:-

'इस स्थान को देख मेरा चित्त बहुत दग्ध हुआ। हां, यदि ईश्वर चाहता तो किसी दिन मैं इसी गृह की स्वामिनी होती। आज ईश्वर ने मुझको उसे इस अवस्था में दिखलाया। उसके आगे किस का वश है ? ----- यही स्थान, मुझे प्रिय है। यहीं मैं अपने दुखमय जीवन का शेष भाग उसी करूणामय जगदीश्वर की , जिसने मुझे इस अवस्था में डाला, आराधना में बिताऊंगी।'

नायिका का यह कथन उसकी करूण कथा का चित्रण तो करता ही है साथ ही प्राचीन परम्पराओं के अनुसार सुख- दुख को दैवाधीन मानता है। इस सन्दर्भ में डॉ० महेश चन्द्र 'दिवाकर' का यह कथन उचित प्रतीत होता है :-

'हिन्दी कहानियों में भी कहानीकारों द्वारा नारी के विभिन्न रूपों, उसकी सेवा भावना, उसकी उदारता, उसका पावन प्रेम, उसके भूत-सवर्द्धन के प्रयत्न एवं सर्वत्र शान्ति स्थापना सम्बन्धी कार्यो का चित्रण उसके महत्व को ही प्रतिपादित करता है। इस प्रकार के चित्रण भारतीय संस्कृति में अंकित नारी के उज्जवल एवं उत्कृष्ट रूप के परिचायक हैं। कहानीकारों द्वारा नारी के विविध रूपों और उसके कार्य कलापों का संगुम्फन इस प्रकार किया गया है जिससे नारी के महत्व के साथ-साथ भारतीय संस्कृति का उत्कृष्ट रूप भी पाठकों के समक्ष स्पष्ट हो सके।'[1]

ऐसा नहीं है कि यह स्थिति हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों में ही उपलब्ध हो। आधुनिक कहानियों में भी नारी के उत्कृष्ट रूप का चित्रण स्थान-स्थान पर मिलता है यद्यपि युगानुरूप परिस्थितियां तथा परिवेश बदलता रहा है। इसका विवेचन आगे यथा स्थान किया जायेगा।

आधुनिक युग में जब समानता एवं स्वतन्त्रता का उद्घोष जोर जोर से किया जाने लगा तब पुरूषों की समानता एवं स्वतन्त्रता की मांग के साथ ही साथ नारी स्वतन्त्रता एवं नारी की समानता का प्रबल आग्रह चल पड़ा। वस्तुतः कहानी साहित्य का उद्भव और स्वतन्त्रता तथा समानता की मांग समकालीन घटना हैं और इस युगान्तकारी एवं नवयुगप्रवर्तक मांग की पूर्ति में कहानी साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है। सामाजिक चेतना के समर्थ समर्थन ने नारी की सामाजिक चेतना का मार्ग प्रशस्त किया और इसमें कहानी साहित्य ने अभूतपूर्व योगदान किया। भारतीय सामाजिक चेतना की पृष्ठभूमि में भारतीय नारी की सामाजिक चेतना के स्वरूप और हिन्दी कहानियों में उस सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति की विवेचना अगले अध्याय में की जावेगी।

द्वितीय अध्याय

(अ) सामाजिक चेतना की अवधारणा

मानवीय स्वतन्त्रता और नारी स्वतन्त्रता

(ब) भारतीय नारी की सामाजिक चेतना का स्वरूप

१९वीं शताब्दी में भारतीय नारी की सामाजिक चेतना का उपक्रम

(स) हिन्दी कहानियों में सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति

हिन्दी कहानी का उद्भव
हिन्दी में पत्रिकाओं का प्रकाशन
हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों का प्रकाशन

<u>अध्याय - द्वितीय</u>

(अ) सामाजिक चेतना की अवधारणा :-

सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही साथ उसके अस्तित्व की रक्षा का प्रतून भी जुड़ना स्वाभाविक था। स्त्री-पुरूष के विभेद से दोनो में स्वाभाविक रूप से आकर्षण बढ़ना भी उचित था क्योंकि मानवीय सृष्टि का क्रम भी उन्हीं के द्वारा बढ़ना प्रारम्भ हो सकता था। इस प्रकार स्त्री-पुरूष के सम्मिलन, सहचर्य और समागम से तत्परिणामी सन्तति क्रम चल पड़ा और उनके पालन पोषण, रक्षण-भरण आदि की आवश्यकता ने परिवार की नींव डाली। जीवन रक्षा और जीवन धारणा की मूलभूत आवश्यकताओं- क्षुधा-पिपासा का निवारण, तथा जीवनक्रम के सातत्य के लिए काम क्षुधा के निवारण की आवश्यकता ने ही मानव को पहले परिवार में बांधने और फिर परिवार की रक्षा के लिए समाज में बंधने के लिए बाध्य किया। कालान्तर में दाम्पत्य सम्बन्धों की रक्षा, सन्तति के लिए दाम्पत्य सम्बन्धों की व्यवस्था आदि की आवश्यकता ने सामाजिक वन्धनों, नियमो, व्यवस्थाओं, परम्पराओं को स्वीकार करना आवश्यक बना दिया। जीवन की अस्थिरता, धन- सम्पत्ति की अस्थिरता और रोग आदि विभिन्न प्रकार की शारीरिक व्याधियों और प्रकृतिगत आकस्मिक एवं अनिश्चित रूप से उपस्थित विभिन्न आपदाओं ने मानव को ईश्वर के अस्तित्व की ओर उन्मुख किया। इस प्रकार धर्म की अवधारणा और उसके बन्धनों से मानव जकड़ता चला गया। धर्म का यह बन्धन जब उसके लिये अत्यन्त उलझनपूर्ण तथा जटिल हो गया और उसका वहन करना असहय हो गया तब उससे मुक्त होने की प्रबल इच्छा आकांक्षा जागृत हुई। इसके परिणाम स्वरूप ही मानव ने धर्म के बन्धनों के प्रति विद्रोह करने या उनकी सार्थकता पर प्रश्न करने का दुस्साहस करना प्रारम्भ किया।

भारतीय समाज में यह स्थिति किसी न किसी रूप में प्रारम्भ से ही बनी रही। प्रारम्भ में धर्म में बंधे रहकर ही धर्म का विरोध किया गया जिसके कारण धर्म के अनेक मत- मतान्तर उठ खड़े हुए। परन्तु उनमें मूलभूत एकता बनी रही।

किन्तु प्रचलित धर्म के प्रति विद्रोह जब अधिक मुखर हुआ तो उसकी विभिन्न शाखाए स्वतन्त्र रूप में पल्लवित एवं विकसित होने लगीं और उन्हें एक स्वतन्त्र अभियान भी प्राप्त हो गया। बौद्ध धर्म और जैन धर्म का प्रादुर्भाव इसी प्रकार की धार्मिक चेतना के कारण सम्भव हो सका। धर्म से पूर्णतः परिचालित होने वाले भारतीय जन जीवन में इस प्रकार के बदले हुए चिन्तन के कारण सामाजिक परिवर्तन भी प्रारम्भ हुए। चूंकि धार्मिक चेतना का क्रम एक सतत प्रवहयान प्रक्रिया थी अतः बौद्ध और जैन विचारधारा के बाद नाथ सम्प्रदाय आदि से होता हुआ यह क्रम कबीर आदि सुधारकों को को मध्ययुग तक प्रतिष्ठित कर सका। आधुनिक युग के विभिन्न समाज सुधारको को भी उसी श्रेणी में देखा जा सकता है। राजा राम मोहन राय का ब्रहमसमाज, केशवचन्द्र सेन का प्रार्थना समाज और स्वामी दयानन्द सरस्वती का आर्यसमाज इसी प्रकार की सामाजिक चेतना का ही परिणाम है।

यद्यपि बौद्ध धर्म व्यक्ति के उद्धार को ही अधिक महत्व देता था जैसा कि उसके पूर्ववर्ती वैदिक धर्म में भी था किन्तु बौद्ध धर्म के विषय में एक आंग्ल लेखक गैलोवे का मत है कि 'जिस लक्ष्य को बौद्ध प्राप्त करना चाहता है वह व्यक्तिगत है, समाज उसके लिए केवल लक्ष्य सिद्धि में साधन है। बौद्ध दुखियों पर करूणा करता है और उनके दुख निवारण के लिए कार्य भी करता है, किन्तु यह केवल वह आत्म संयमन और आत्मपूर्णता के लिए करना चाहता है जिससे वह अपनी कामनाओं का शमन कर सके न कि संसार का कल्मष दूर कर उसे सुघड़ बनाने के लिए वह करता है। परिणामतः उसका धर्म सम्प्रदाय, आशा और प्रेरणा रहित है और उसमें मानवता के आध्यात्मिक निवास के लिए कोई प्रोत्साहन नही है।''[1]

१- जार्ज गैलोवे - दि फिलासफी आव् रिलीज्म - पृ० १४३

श्री यशदेव शल्य के अनुसार 'यदि बुद्ध का 'दुःख- से भाव सामान्य सांसारिक दुख होता तो वे अवश्य ही इस दुख के निवारण के लिए रेडक्रास का संगठन करते और औषधालय खोलने पर बल देते। किन्तु उनका दुख से अभिप्राय इस दैहिक दुख से नहीं था, वे उससे त्रासित नहीं थे और इसलिए उससे प्रभावित भी नहीं थे। उनका दुख 'आध्यात्मिक' था और इसीलिए उसका निवारण व्यक्तित्व की सीमा के उच्छेद के द्वारा ही हो सकता था। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे दैहिक दुख के निवारण से अत्यन्त उदासीन थे, अशोक ने इस दिशा में जो किया उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी करूणा मनुष्य और प्राणियों के दैहिक दुख के प्रति भी जागरूक थी, किन्तु यह दुख और इसका निवारण उनके लिए गौण थे।'[1]

किन्तु बुद्ध ने मानव सुधार के माध्यम से समाज सुधार कर सामाजिक विषमता दूर करने तथा करूणा और दया का सन्देश प्रसारित करने का अद्भुत कार्य किया। उन्होंने मानवतावाद के लिए धार्मिक बन्धनों को भी व्यर्थ एवं निष्प्रयोजन सिद्ध करने का प्रयास किया। उसके लिए उन्हें विद्रोह भी करना पड़ा और विरोध का सामना भी करना पड़ा।

पाश्चात्य समाज में भी इसी प्रकार की सामाजिक चेतना सतत रूप से उद्वेलित होती रही है। वहाँ एक उदाहरण के रूप में हम प्रोमीथियस के उस प्रयास को पाते हैं जिसमें उसने देवताओं के पास उपलब्ध अग्नि को मानव मात्र को भी उपलब्ध कराने के प्रयास में देवताओं का कोप सहा। पाश्चात्य पौराणिक आख्यानों के प्रोमीथियस ने स्वर्ग में घुसकर सूर्य के रथ से मानव के कल्याण के लिए अग्नि को चुरा लिया। इससे कुपित होकर जियस (ज्यूपिटर) ने तमाम विपत्तियों एवं बुराइयों का पिटारा मिट्टी की बनी पण्डोरा नामक प्रथम स्त्री को प्राणवान् बनाकर सौंपा कि वह उस पिटारा को उस व्यक्ति को भेंट करें जो उससे विवाह करे। यद्यपि प्रोमीथियस उस स्त्री के जाल में नही फंसा किन्तु उसके भाई ने उस स्त्री से विवाह कर लिया और भेंट में मिले पिटारा को खोलने पर वे तमाम दुर्गुण निकल पड़े जिनसे मानवता अब तक पीड़ित रहती है। उधर जीयस (ज्यूपिटर) ने प्रोमीथियस को पकड़ कर जंजीरों से जकड़ दिया और काकेसस पर्वत की चट्टान से बांध दिया जहां दिन के समय एक गिद्ध उसके लीवर को खाता था और रात में उसी लीवर का जख्म फिर से ठीक हो जाता था और दूसरे दिन वही गिद्ध फिर उसी लीवर को खाता था। इस प्रकार प्रतिदिन प्रोमीथियस यह घोर यन्त्रणा भोगता रहा जब तक कि हरक्यूलिस नामक योद्धा ने बारह प्रमुख मानव उपकारक कार्य करते हुए उसे इस घनघोर यन्त्रणा से मुक्त नहीं करा दिया। प्रोमीथियस जिसको मानव को बहुत उपयोगी कलाओं के प्रदान करने का श्रेय दिया जाता है सम्भवतः पहला ज्ञात समाज कल्याणकर्ता कहा जा सकता है।

वस्तुतः मानव द्वारा मानव के प्रति किए गए कल्याणकारी एवं करूणापूर्ण कार्यो का इतिहास ही मानव प्रगति एवं मानव समाज की चेतना के विकास का इतिहास हैं। यदि मानव ही मानव की रक्षा न करता तो मानव समाज का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता। मानव की यह सहृदयता, सज्जनता एवं सत्कर्म की प्रवृत्ति ही सृष्टि के संरक्षण का सबसे सशक्त साधन है। जब-जब दुर्जनता, दुष्कर्म एवं दुष्टता अपना सिर उठाती है तब-तब उसके विनाश के लिए और समाज की पुनर्संस्थापना के लिए विशिष्ट या देवी शक्ति सम्पन्न साधन उपस्थित हो जाते हैं और समाज की अविच्छिन्न धारा अप्रतिहत रूप से प्रवाहित होती रहती है।

यह संघर्ष की स्थिति केवल मनुष्य -मनुष्य के बीच ही नहीं चलती रही बल्कि मनुष्य के ही दो रूपों- स्त्री-पुरूष के बीच भी बराबर चलती रही है। सृष्टि क्रम के निबधि रूप से चलते रहने के लिए प्रकृति द्वारा नैसर्गिक रूप से उत्पन्न नर--नारी के परस्पर एक दूसरे के प्रति आकर्षण को नर ने अपने लिए बन्धन कारी एवं विनाशकारी माना और इस प्रकार नर ने नारी को नियन्त्रण में रखने का प्रयास किया। यह नियन्त्रण जब उग्र हो उठता है तब उसका प्रतिरोध किया जाता है। यह प्रवृत्ति भी अनादि काल से चलती आयी है। नारी को इस प्रकार के बन्धनों एवं नियन्त्रणों से मुक्त करने कराने का संघर्ष भी अनादि काल से चलता आ रहा है।

१- संस्कृति - मानव कर्तव्य की व्याख्या- यशदेव शल्य - पृ० १२६

आधुनिक युग में भी यूरोप में पुनर्जागरण के पुरोधाओं में परिगणित विलियम गोडविन ने मानवीय स्वतन्त्रता विषयक क रचना - 'इन्क्वारी कन्सर्निंग पालिटिकल जस्टिस' प्रस्तुत की और उनकी पत्नी मेरी वुलस्टोन क्राफ्ट ने महिलाओं के ाधिकारों की रक्षा विषयक एक रचना - विण्डिकेशन आव् द राइट्स आव् वूमेन सन् १७६२ में प्रस्तुत की। गाडविन से भावित होकर ही अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध स्वतन्त्रताप्रेमी कवि रोली ने 'प्रमीथियस- अनबाउण्ड' नामक अपने गीति- नाट्य में क्त प्रथम मानवतावादी प्रोमीथियस का उदात्त चरित्र चित्रित किया।

भारत में भी जब सामाजिक चेतना की लहर दौड़ी तब सर्वप्रथम नारी को समानाधिकार देने, उस पर हो रहे अत्याचारों, अन्यायों को रोकने का प्रयास किया गया।

वैदिक या सनातन धर्म में भी जब नारी के प्रति कठोर अनुशासन की कल्पना की गई तब उसका प्रतिवाद हुआ। उसे कर्मकाण्ड स्वतन्त्र रूप से सम्पन्न करने का अधिकार नहीं मिला था- वह पति की सह धर्मिणी थी। पर ज्ञान काण्ड में उसे चिन्तन के क्षेत्र में स्वतन्त्र ज्ञान चिन्तन से कोई रोक न सका। आगे चलकर बौद्ध धर्म में स्त्री के अधिकरों का संघर्ष खुलकर चल पड़ा। यह अलग बात है कि उसे प्राप्त करायी गयी स्वतन्त्रता का बौद्ध विहारों में खुलकर दुरूपयोग भी किया गया।

आधुनिक युग में भारतीय पुनर्जागरण का तो श्री गणेश ही नारी के प्रति सामाजिक चेतना से हुआ जिसके पुरोधाओं के प्रयासों का विवेचन अन्य अध्यायों में प्रसंगानुसार किया गया है।

(ब) भारतीय नारी की सामाजिक चेतना का स्वरूप :-

वैदिक काल से ही भारतीय नारी अपने सामाजिक अधिकारों के प्रति जागरूक रही है। कम से कम अपने लिए अधिकारों को अपनी सन्ततियों के अधिकारों के रूप में प्राप्त करने करने के उसके प्रयास सृष्टि के प्रारम्भिक काल से ही मिलते हैं। वेदों में जहाँ पुरोहित द्वारा यज्ञ कराने का उल्लेख मिलता हैं वहीं पति-पत्नी (दम्पत्ति) का भी यज्ञ में साथ- साथ भाग लेने का उल्लेख मिलता है। इतना ही नहीं, कुछ यज्ञों में तो पति-पत्नी का साथ-साथ यज्ञ करना अत्यन्त आवश्यक एवं अपरिहार्य माना गया है। ऋग्वेद के मण्डल-आठ के इकतीसवें सूक्त में पति-पत्नी (दम्पत्ति) को एक सी मन स्थिति में या सौमनस्य भाव से सोम वनस्पति से सोमरस प्राप्त करने तथा उसे दूध में मिला कर देवताओं को आहुति देने का उल्लेख मिलता है। कालान्तर में मनु की व्यवस्था में यह घोषणा की गई कि जब स्त्रियाँ यज्ञ करती हैं तो देवता अप्रसन्न हो जाते हैं (मनुस्मृति-अध्याय-४-श्लोक २०६) तथा जो स्त्रियाँ अग्निहोम करती हैं वे नरक में जाती हैं (मनुस्मृति अध्याय -एकादश -श्लोक-३७)। किन्तु सम्भवतः यह स्त्री के स्वतन्त्र अकेले या पति रहित (विधवा) हो जाने पर यज्ञादि करने का ही निषेध करने की व्यवस्था ही प्रतीत होती है क्योंकि पति के साथ तो स्त्री आज भी यज्ञ एवं अग्निहोम आदि सम्पन्न करती हैं। यह व्यवस्था कर्मकाण्ड के क्षेत्र में ही थी। ज्ञान काण्ड के क्षेत्र में हम पुनः नारी को पुरूषों की तरह आध्यात्म चिन्तन में प्रवृत्त पाते हैं और दार्शनिक वाद-विवादों में भाग लेते पाते हैं। इसी प्रकार ऋग्वेद की ऋचाओं के अनुसार स्त्रियाँ भोजोत्सवों, नृत्यों आदि में सार्वजनिक रूप से उपस्थित होती थीं और भाग लेती थीं। ये आवश्यक रूप से नर्तकियाँ या वेश्याएं ही हों ऐसा नहीं था। यद्यपि ऋग्वेद में ऐसी स्त्रियों का उल्लेख भी मिलता है जो एकाकी, आरक्षित या बंधुरहित युवतियां थीं जो वेश्यावृत्ति से जुड़ गयी थीं किन्तु किसी भी स्थिति में उनकी संख्या तथा प्रतिष्ठा इतनी नहीं बढ़ी थी जितने वृहद रूप में वे बुद्ध काल में वेशाली में उपलब्ध थीं।

इसी प्रकार ऋग्वेद की ऋचाओं में निकट सम्वन्धियों से मैथुन, बलात्कार, मैथुन सम्बन्धी सत्यनिष्ठा के अभाव आदि का भी उल्लेख मिल जाता है परन्तु वे अपवाद के उदाहरण स्वरूप ही हैं और उनसे नैतिक शिक्षा का पाठ पढ़ाना या काम की प्रबलता का प्रख्यापन करना ही इष्ट प्रतीत होता है। लेकिन वैदिक काल में किसी भी स्थिति में नारी रही हो वह इतनी दीन-हीन, दुखी,

पीड़ित नहीं रही जितनी बाद के काल में उसकी स्थिति हो गयी।

ऋग्वेद के पुरूरवा - उर्वशी सम्वाद[1] में उर्वशी किन्हीं शर्तो पर ही पुरूरवा की पत्नी बनना स्वीकार करती हैं क्योंकि पुरूरवा मरणशील मानव है और उर्वशी अप्सरा है। वह चार वर्ष तक पृथ्वी पर पुरूरवा के साथ रहती है जब तक कि गर्भिणी नहीं हो जाती और तब वह उसे छोड़कर चली जाती है। पुरूरवा उसे खोजते हुए वहां तक पहुंच जाते हैं जहां उर्वशी अपनी सखियों के साथ एक सरोवर में जलक्रीड़ा कर रही थी। यह एक मरणशील मानव की दिव्य अप्सरा के प्रेम की अमर कथा है जिसमें नारी को उच्च स्थान प्राप्त है, वह अपनी शर्तो पर पत्नी के रूप में रहती है। यद्यपि यह कथानक वहाँ सूत्र रूप में ही उपलब्ध है किन्तु शतपथ ब्राह्मण[2] में इस कथा के सूत्र मिल जाते हैं जहाँ यह उल्लेख मिलता है कि जब उर्वशी ने पुरूरवा से विवाह करने पर सहमति जताई तब उसने तीन शर्ते रखीं कि उनका उल्लंघन करने पर वह पुरूरवा को छोड़ देगी और शर्त का उल्लंघन होने पर उर्वशी पुरूरवा को छोड़ देती है और उसे वापस लाने के पुरूरवा के सभी प्रयास निष्फल सिद्ध होते है। वहां उर्वशी के मुख से ही कहलाया गया है कि स्त्री का साथ स्थायी नहीं होता तथा स्त्री का हृदय भेड़िया का हृदय होता है। उर्वशी पुरूरवा का यह उपाख्यान कृष्ण यजुर्वेद, हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण तथा कथा सरितसागर से होता हुआ कालिदास की अमर कृति 'विक्रमोर्वशीयम्' में भी दुहराया गया है। इसकी व्यापकता से यहाँ केवल विवाह के समय की शर्तो की ही ओर ध्यान आकृष्ट करना अभिप्रेत है क्योंकि आज भी विवाह के समय पत्नी सबसे पहले अपनी शर्ते पति के समक्ष रखती है। कहना न होगा कि किसी भी समझौते या सहमति में, चाहे वह पाणिग्रहण से सम्बन्धित क्यों न हो, प्रथम प्रतिज्ञा वही पक्ष करा सकता है जिसका वर्चस्व हो।

इसी प्रकार ऋग्वेद के यम-यमी सम्वाद में यमल (जुड़वाँ) भाई-बहिनों के बीच काम सम्बन्ध स्थापित करने (या न करने) के उद्देश्य से उसमें बाधक तत्वों का उल्लेख मिलता हैं। किन्तु यहाँ केवल यह बताना इष्ट है कि स्त्री का पुरूष के प्रति इस प्रकार का स्वैर आचरण का प्रयास अपने आप में विचित्रता भरा है- उचित काम सम्बन्ध के लिए उसका व्यग्र या व्यथित होना तो ठीक किन्तु अनुचित काम सम्बन्ध के लिए इस प्रकार की उत्कट आकांक्षा का जहाँ कहीं शास्त्रों में वर्णन है वहां वह विशेष दैवी विधान के कारण ही है। सामान्यतया पुरूष ही अभियोक्ता होता है - स्त्री नहीं- 'न स्वैरी स्वैरिणी कुतः' की स्थिति ही सर्वत्र मान्य है। प्रकारान्तर से यदि देखा जाय तो यम-यमी सम्वाद में भी यम स्वैरी नहीं है अतः यमी स्वैरिणी नहीं बन पाती।

जैसा कि पहले अध्याय में उल्लेख किया जा चुका है पत्नी की परिवार में प्रतिष्ठा इसलिए थी कि वह पति सौख्य वृद्धि तथा पुत्र प्राप्ति में साधनभूत थी और परिवार का पालन- पोषण करती थी। ऋग्वेद में एक जुआड़ी के आत्मकथन द्वारा यह भलीभाँति अभिव्यक्ति किया गया है कि किस प्रकार उसके इस व्यसन के कारण वह अपनी पति परायण परम प्रिय पत्नी के सानिध्य एवं संगम से वंचित हो गया है तथा उसका पारिवारिक सुख नष्ट हो गया है।[3]

भारतीय नारी की सामाजिक चेतना का एक अन्य उत्कृष्ट उदाहरण बैदिक साहित्य में मिलता है जिसमें जाबाला का अपने पुत्र सत्यकाम के यह कहने पर कि वह ब्रह्मचारी (वेदाध्ययन के लिए विद्यार्थी) बनना चाहता है अतः माता उसे बताये कि वह किस परिवार (वंश) का है। इस पर जाबाला सत्यकाम से जो सत्य कथन करती है वह एक क्रान्तिकारी घोषणा है। जाबाला सत्यकाम से कहती है कि मेरे बेटे मैं नही जानती कि तुम किस परिवार (वंश) के हो। युवावस्था में मैं जब एक सेविका के रूप में, अपने पिता के घर में अतिथियों की सेवा में थीं, तब मैंने तुम्हें गर्भ में धारण किया। इसलिए मैं नहीं जानती कि तुम किसी परिवार (वंश) के हो। मेरा नाम जाबाला है और तुम सत्यकाम हो अतः तुम अपने आपको सत्यकाम जाबाल कहो।

तब सत्यकाम ने तदनुसार ही किया और गौतम हरिद्रुमत के पास जाकर उनका शिष्य बनने के उद्देश्य से उनके पूछने पर यथावत् सत्यकथन कर वह सब बताया जो उसकी माता ने उसके जन्म के विषय में बताया था और उन गुरूजी ने सत्यकाम

१- ऋग्वेद - मण्डल १०/६५

२- शतपथ ब्राहमण - ११/५,१

३- ऋग्वेद - १०/३४

की सत्यनिष्ठा से प्रसन्न होकर (उसका वर्ण-गोत्र जाने बिना ही) उसे शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया।[1]

१९वीं शताब्दी में भारतीय नारी की सामाजिक चेतना का उपक्रम :-

जैसे- जैसे सत्य और धर्म का महत्व घटता गया और उसका स्थान असत्य तथा पाखण्ड ने लेना प्रारम्भ कर दिया वैसे - वैसे नारी को घोर यन्त्रणाएं सहने के लिए बाध्य होना पड़ा और उसक विस्फोट आधुनिक चिन्तन धारा में हुआ जब मानवता की महत्ता बढ़ी और समानता का भाव उदित हुआ जो पारिवारिक क्लेश तथा पारिवारिक अशान्ति के अनेकानेक प्रकार भारतीय परिवारो को ईर्ष्या-द्वेष, कलह एवं अशान्ति की आग में झोक रहे थे वे धीरे- धीरे दूर किए जाने लगे। संयोग से इस कार्य में महिलाओं को पुरूषों से पूरा सहयोग मिला। पुरूषों ने उनका पक्ष लेकर उनके पक्ष को प्रबल रूप में प्रस्तुत किया और सभी प्रकार के प्रतिवादों का डटकर मुकाबला किया। यह स्थिति उस समय और भी आवश्यक हो गयी जब भारत में ईसाई धर्म प्रचारकों ने अंग्रेजी शिक्षा के नाम पर भारतीयों के धर्म परिवर्तन का कुचक्र चलाया। उस समय तक भारतीय पुरूषों में ही शिक्षा का, विशेष कर पाश्चात्य शिक्षा का , पूर्णतः अभाव था तो फिर महिलाओं को वह शिक्षा कहां मिल सकती थी। इसलिए धर्म परिवर्तन के कुचक्र से बचना कठिन था विशेष कर उस स्थिति में जब समाज एवं परिवार प्राचीन मान्यताओं से जकड़ा हो और पाश्चात्य लोगों की बराबरी न कर पा रहा हो। इसमें स्त्री शिक्षा का अभाव तथा स्त्री के समानाधिकार का अभाव बहुत बड़ी बाधा थी। राजा राम मोहन राय, शशिपाद बनर्जी एवं ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि के क्रान्तिकारी कदम इसी दिशा में बढ़े। इसी के साथ महिलाओं में पर्दा प्रथा घटी और वे पुरूषों के साथ उसी प्रकार बाहर निकलने लगीं जिस प्रकार विलायती लोग निकला करते थे। महिलाओं द्वारा महिलाओं को महिला पाठशालाओं में शिक्षित करने का क्रम चल पड़ा।

इसमें भी सबसे पहले वे ही महिलाएं आगे आ सकीं जो विधवा थीं और उपेक्षित तथा निराश्रित थीं और जिन पर परिवार में पति का प्रतिबन्ध नहीं था। इससे उनके स्वावलम्बी बनने का भी मार्ग प्रशस्त हुआ जिसके अभाव में उन्हें जीवित ही चिता पर जला कर सती सिद्ध कर दिया जाता था।

वस्तुतः १९वीं शताब्दी के सभी प्रमुख सामाजिक आन्दोलन धार्मिक भावना से प्रेरित थे। उस समय तक धर्म से बाहर समाज की विशुद्ध रूप में कोई कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इसलिए पाश्चात्य धर्मों के प्रभाव से अपने धर्म को बचाने तथा अपने धर्म की विकृतियों को दूर करने का प्रयास ही सामाजिक सुधारों के माध्यम से किया जाने लगा। किन्तु यह कार्य भी कोई सरल कार्य नहीं था जैसा कि प्रायः समझ लिया जाता है बल्कि बहुत ही कठिन था क्योंकि समाज सुधारकों की रूढ़िवादी समाज का तीव्र विरोध पग - पग पर सहन करना पड़ता था। इसलिये <u>'ओ मेले'</u> जैसे विद्वानों का तो स्पष्ट मत है कि 'विधवा विवाह का समाज इतना विरोध करता था कि सुधारकों ने विधवा को स्वावलम्बी बनाने के लिए शिक्षा का सहारा लिया।'[2]

वस्तुतः यदि समाज विधवा विवाह को स्वीकृति दे देता तो सम्भवतः नारी शिक्षा का इतनी शीघ्रता से सूत्रपात न होता। आगे चल कर यही शिक्षित विधवाएं नारी की सामाजिक चेतना की सूत्रधार बनीं।

नारी की सामाजिक चेतना का प्रारम्भ सर्वप्रथम बंगाल और महाराष्ट्र में ही प्रारम्भ हुआ क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा, सभ्यता-संस्कृति तथा स्वतन्त्रता एवं समानता के विचारों का ज्ञान वहीं सबसे पहले फैला।

डॉ० चण्डी प्रसाद जोशी के अनुसार '१९वीं शताब्दी के सभी आन्दोलनों की मुख्य समस्या नारी को समाज में सम्मानित स्थान दिलाने की थी। इन सुधारकों के अथक परिश्रम का ही परिणाम है कि जो नारी ६० वर्ष पूर्व सामाजिक समारोह के रूप में सती होकर आत्महत्या करने के लिए बाध्य थी, वही शताब्दी के अन्तिम वर्षो में सामाजिक रंगमंच पर आकर अपनी समस्याओं पर स्वतन्त्रतापूर्वक विचार व्यक्त करने लगी थी।'[3]

१- छान्दोग्य उपनिषद् ४/४
२- माडर्न इण्डिया एण्ड द वेस्ट -- ओ० मेले - पृ० ४५६
३- हिन्दी उपन्यासः समाजशास्त्रीय विवेचन- डॉ० चण्डी प्रसाद जोशी - पृ० १२

इस प्रकार की गतिविधियों ने स्त्रियों में सामाजिक चेतना की ज्योति जगायी।

(स) हिन्दी कहानियों में सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति :-

हिन्दी कहानी का उद्‌भव :-

एक साहित्यिक विधा के रूप में हिन्दी कहानी बीसवीं सदी के प्रारम्भ में प्रतिष्ठित हुई जब भारत में विशेष कर हिन्दी में परिनिष्ठत गद्य रचनाओं की मांग वढ़ गई तथा पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी बढ़ गया और उनमें भी ऐसी गद्य रचनाओं का नियमित प्रकाशन अनिवार्य आवश्यकता बन गया। इससे पूर्व जब उपन्यास विधा का हिन्दी में प्रवेश हुआ था तब एक औपन्यासिक कृति के रूप में श्री निवासदास का 'परीक्षा गुरू' प्रकाशित हुआ। भारतेन्दु युग के इस रचनाकार के समय ही अन्य अनेक रचनाकार भी उपन्यास लेखन में प्रवृत्त हुए। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भिक काल ठहरता है और बींसवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध हिन्दी कहानी का। दोनों विधाओं के प्रचलन में आधी शताब्दी से अधिक समय नहीं लगा किन्तु अंग्रेजी साहित्य के नियम में यह बात लागू नहीं है। वहाँ उपन्यास विधा अंग्रेजी कहानी से अपेक्षाकृत वहुत अधिक पुरानी है। अंग्रेजी का विधिवत प्रतिष्ठित प्रथम उपन्यासकार सेम्युअल रिचर्डसन (१६८०-१७६१) को माना जाता है जिनकी प्रथम औपन्यासिक रचना 'पामेला-आर-वर्च्यू रिवार्डेड' अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचना है क्योंकि उसका रचना काल १७४० है। अगले एकतीस वर्षो में अर्थात् अठारहवी शताब्दी में ही वहाँ तीन और प्रसिद्ध उपन्यासकार हो गए और उनमें से एक हेनरी फील्डिंग (१७०७-५४) ने तो जोसेफ एण्ड्रूज (१७४२), टाम जोन्स (१७४६) और एमेलिया (१७५१) लिखकर अत्यन्त ख्याति अर्जित की और लगभग एक शताब्दी तक उसका उपन्यास लेखकों पर प्रभाव बना रहा। किन्तु अंग्रेजी उपन्यासों और कहानियों के अठारहवीं शताब्दी में प्रचलित हो जाने का कारण वहां अठारहवीं शताब्दी के गद्य का युग बन जाना, मुद्रण व्यवस्था का शीघ्र प्रसार होना तथा शिक्षा का प्रसार होना और पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हो जाना था। हेनरी फील्डिंग ने स्वयं १७३६-४१ की अवधि में 'चैम्पियन' नामक पत्रिका का संचालन किया तथा सन् १७५२ में 'कावेण्ट गार्डेन जर्नल' का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

हिन्दी में पत्रिकाओं का प्रकाशन :-

हिन्दी में ऐसा कार्य भारतेन्दु युग से ही प्रारम्भ हो सका। भारतेन्दु जी ने 'कवि बचन सुधा' और 'हरिश्चन्द्र पत्रिका' का प्रकाशन स्वयं किया। हिन्दी कहानी का प्रारम्भ तो सन् १६०० में 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के समय से ही माना जाता है।

वैसे तो हिन्दी में पत्र- पत्रिकाओं का प्रकाशन भारतेन्दु जी से पर्याप्त पूर्व सन् १८२६ से ही प्रारम्भ हो गया था। उस वर्ष हिन्दी का सर्वप्रथम पत्र 'उदन्त मार्त्तण्ड' प्रकाशित हुआ। हिन्दी के अन्य पत्र 'प्रजामित्र', 'समाचार सुधावर्षण' आदि प्रकाशित हुए। किन्तु भारतेन्दु युग में मुद्रण व्यवस्था का व्यापक प्रसार हुआ। इस युग में उपर्युक्त 'कवि वचन सुधा' और 'हरिश्चन्द्र पत्रिका' के अतिरिक्त 'सुधाकर', 'बुद्धि प्रकाश', तत्बोधिनी पत्रिका, 'ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका' व 'वृतान्त विलास' आदि उल्लेखनीय पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं। भारतेन्दु युग के द्वितीय चरण में तो दर्जनों पत्र- पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं। इन पत्रिकाओं के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन को तो बल मिला ही सामाजिक चेतना को भी नयी दिशा मिली। इनमें सभी प्रकार के राजर्नातिक, सामाजिक, धार्मिक लेखों के साथ- साथ कहानियां भी प्रकाशित होने लगीं जिनसें नारी की सामाजिक चेतना को वल मिला।

द्विवेदी युग तक आते - आते इन पत्र- पत्रिकाओं के दो रूप स्पष्टतः अलग - अलग मिलने लगे- राजनीतिक पत्र- पत्रिकाएं और साहित्यिक पत्र- पत्रिकाएं। साहित्यिक पत्र- पत्रिकाओं में 'सरस्वती', 'समालोचक', 'इन्दु' , 'सुदर्शन', 'देव नागर', मनोरंजन', 'पाटलिपुत्र' आदि प्रमुख थीं। छायावादी युग तक आते - आते नारी जगत के लिए स्वतन्त्र पत्र- पत्रिकाओं

का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया। प्रयाग से प्रकाशित होने वाली 'स्त्री दर्पण' इसी प्रकार की पत्रिका थी जिसका सम्पादन श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने किया। इसमें नारी विषयक लेख व नारियों की रचनाएं ही प्रायः प्रकाशित होती थीं। प्रयाग से ही प्रकाशित होने वाली दूसरी पत्रिका 'चाँद' थी जिसका सम्पादन श्री राम रख सहगल एवं चण्डी प्रसाद हृदयेश ने किया। इस पत्रिका में नारी समस्या विषयक लेखों को सर्वाधिक स्थान मिलता था। काशी से प्रकाशित हंस पत्रिका जिसका सम्पादन मुंशी प्रेमचन्द ने किया, समकालीन हिन्दी कथा साहित्य का प्रतिनिधि पत्र बन गया।

हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों का प्रकाशन :-

यों तो हिन्दी की प्रथम कहानी होने का दावा अनेक कहानियों का है किन्तु संयोग से उन सभी कहानियों में नारी को ही प्रमुख विषय बनाया गया है और उसकी सामाजिक चेतना को महत्व दिया गया है। इसका विवेचन पूर्ववर्ती प्रसंगों में किया जा चुका है। वस्तुतः नारी की सामाजिक चेतना के सशक्त माध्यम के रूप में आधुनिक साहित्यिक विधा कहानी की स्थिति अन्यतम है। डॉ० सूर्य नरायण रणसुभे के अनुसार ' साहित्य की विभिन्न विधाओं में कहानी ही एक ऐसी विधा है, जहां उसकी (नारी की) छटपटाहट पूरे तीखेपन के साथ व्यक्त हुई है।'[१]

कहानी के गद्य रूप के कारण, उसके लघुरूप के कारण तथा उसकी विषय वस्तु के कारण उसे वह स्थिति प्राप्त है जो साहित्य की अन्य विधाओं को प्राप्त नहीं है।

व्यक्ति की आवश्यकताओं, उसकी आशाओं, आकांक्षाओं, कल्पनाओं की प्रतिपूर्ति हेतु सहयोग और संघर्ष का जो अनवरत क्रम चल पड़ता है उससे सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक अन्तर्क्रिया की उत्पत्ति होती है। कहानी के माध्यम से इन्हें सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है।

हिन्दी की पहली कहानी के पद पर प्रतिष्ठित होने की दावेदार अनेक कहानियाँ मानी जाती हैं जिनकी संख्या ६ तक पहुँच गई है जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है किन्तु हमारे लिए यह सबसे सुखद बात है कि लगभग इन सभी में नारी की सामाजिक चेतना के बीज विद्यमान मिलते हैं। इन कहानियों पर विचार करते हुए डा० सन्तबख्श सिंह ने लिखा है-'इन्दुमती' मनुष्य के रागात्मक सम्बन्धों की अत्यन्त भावात्मक प्रस्तुति है जो निस्सन्देह, उस युग को देखते हुए अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति है। 'इन्दुमती' के बाद चर्चित कहानी 'उसने कहा था' में भी इसी सामान्यकता को नए और प्रभावशाली शिल्प के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।'[२]

डाक्टर सन्त बख्श सिंह ने निष्कर्ष निकाला है कि 'इन्दुमती' की पृष्ठभूमि हिन्दी गद्य साहित्य में बहुत लम्बे समय तक विद्यमान रहीं। हिन्दी प्रदीप (पत्रिका) (सम्पादक- बाल कृष्ण भट्ट) में प्रकाशित छोटे - छोटे 'गद्याष्टक' तथा 'रानी केतकी की कहानी', (मुंशी इंशा अल्ला खां) देवरानी जेठानी की कहानी (पं० गौरीदत्त) राजा भोज का सपना (राजा शिव प्रसाद 'सितारेहिन्द') इत्यादि अनेक ऐसे आख्यानक गद्य के उदाहरण हैं जिनमें इन्दुमती की परम्परा एवं पृष्ठभूमि को खोजा जा सकता है। इस रूप में हिन्दी की प्रारम्भिक कहानी भारतीयता की ही उपज थी उसकी विषय वस्तु निस्सन्देह भारतीय थी। यह अलग बात है कि भाषागत और शिल्पगत प्रभाव उसने पश्चिम से ही ग्रहण किया। कहानी के आधुनिक स्वरूप का प्रारम्भिक निर्माण तथा विकास चूँकि पश्चिम में हुआ था, इसलिए इस प्रभाव को ग्रहण करना स्वाभाविक था।'[३]

'इन्दुमती' एक भाव प्रधान कहानी है जिसमें मानव के कैशौर्य रागात्मक सम्बन्धों को कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस कथानक में प्राचीन भारतीय कथा साहित्य की परम्परा में राजकुमार चन्द्र शेखर तथा इन्दुमती का भावावेग

१- साठोत्तरी हिन्दी कहानी और महिला लेखिकाएं - डॉ० विजया शारद (रागा) शोध प्रवन्ध के आवरण पृष्ठ की टिप्पणी से।

२- नई कहानी : कथ्य और शिल्प - डॉ० सन्त बख्श सिंह- भूमिका से।

३- नई कहानी : कथ्य और शिल्प - डॉ० सन्त बख्श सिंह- पृ० - २- ३

तथा इन्दुमती के बूढ़े पिता द्वारा चन्द्र शेखर की परीक्षा लिया जाना उस युग की भावात्मक स्थितियों को चित्रित करता है जो अत्यन्त स्वाभाविक है। इसी परम्परों में पं० राम चन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' (प्रकाशन वर्ष १६०३ ई०) और बंग महिला की 'दुलाईवाली' (प्रकाशन वर्ष १६०७ ई०) आती है।

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी ने कुल तीन कहानियाँ लिखी : एक तों 'सुखमय जीवन' जो सन् १६११ में 'भारत चित्र' पत्रिका में प्रकाशित हुई, दूसरी 'बुद्धू का कांटा' भी सन् १६११ में ही प्रकाशित हुई तथा तीसरी कहानी 'उसने कहा था' अक्टूबर १६१५ में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई। 'सुखमय जीवन' के नायक की बाइसिकिल चलते- चलते अचानक पंचर हो जाती है और इसी एक छोटी सी घटना से उसका हाथ कमला जैसी रूपवती लड़की के हाथ में आ जाता है, पाणिग्रहण हो जाता है और उसका जीवन सुखमय हो जाता है।

'बुद्धू का कांटा' में रघुनन्दन प्रसाद त्रिवेदी छुट्टियों में घर जाते हुए पनिहारिन के रूप में जिस शोख लड़की की छेड़छाड़ का शिकार होकर उससे बिंध जाता है, संयोग से उसी से उसका विवाह हो जाता है।

'उसने कहा था' का कथानक अत्यन्त लोकप्रिय एवं सर्वजन विदित है। उसके सम्बन्ध में राजेन्द्र यादव का अभिमत है कि हिन्दी की पहली और मौलिक, साथ ही मानवीय संवेदना के स्वाभाविक धरातल का स्पर्श करने वाली कहानी 'चन्द्रधर शर्मा गुलेरी' की 'उसने कहा था' है। वे यहीं से आधुनिक हिन्दी कहानी का वास्तविक आरम्भ मानते हैं। शिल्प और कथ्य का सोद्देश्य समावेश तथा भाषा का सौष्ठव यहीं से कहानियों में देखने को मिलता है।

मास्टर भगवान दास कृत 'प्लेग की चुड़ैल' तथा गिरिजा दत्त बाजपेयी कृत 'पण्डित और पण्डितानी' कहानियाँ भी प्रारम्भिक कहानियों में परिगणित की जाती हैं। इनमें भी नारी का स्थान अक्षुण्ण है।

किन्तु यहॉ यह उल्लेखनीय है कि यह स्थिति सहसा कहानियों में नहीं उद्भुत हो गयी। इससे लगभग सात दशक पूर्व लिखे गए हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरू' के पात्र भी सर्व सामान्य जन हैं और सामाजिक चेतना से परिपूर्ण हैं। इसमें वेश्यावृत्ति के दुष्परिणामों को उजागर कर उससे बचने का उपदेश दिया गया है।

इसका कथा नायक सेठ मदन मोहन कुछ कुत्सित मित्रों के साथ भोग विलास एवं वेश्यावृत्ति में धन गवां रहा है। इस चरित्र भ्रष्ट चरित नायक के प्रति उपन्यासकार श्री निवास दास जी को पूरी सहानुभूति है और वे उसे सत्मार्ग पर लाना चाहते हैं। वे नायक के भ्रष्ट चरित्र के लिए सारा दोष उसके मित्रों चुन्नीलाल, शम्भुनाथ तथा बैजनाथ जैसे चरित्र भ्रष्ट लोगों पर डालते हैं जिनके कारण मदन मोहन पथ भ्रष्ट हो रहा है।

इसी प्रकार लज्जा राम मेहता के 'आदर्श हिन्दू' उपन्यास में एक ओर वेश्या जीवन और वेश्यावृत्ति के प्रति घृणा प्रदर्शित की है तो दूसरी ओर उन्हें एक सामाजिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया गया है। इसमें उनकी विचारधारा की उपयुक्तता एवं अनुपयुक्तता पर मतभेद हो सकता है किन्तु मुख्य बात तो यह है कि लेखक के समक्ष सामाजिक चेतना अपने प्रबल रूप में उपस्थित है क्योंकि वे अपने विचारों के समर्थन में तर्क प्रस्तुत करते हैं। वे लिखते हैं :-

'नहीं, आप मेरा मतलब समझे नहीं। बेशक रंडियां समाज में एक बला हैं- परन्तु इससे आप यह न समझ लीजिए कि ये समाज से निकाल देने के लायक हैं, फिजूल हैं और इन्हें बंद कर देना चाहिए। नहीं, इनकी भी समाज के लिए दो कारणों से आवश्यकता है। एक यह कि जब गाने- बजाने और नाचने का पेशा करने वाली हमारी सोसायटी में न रहेंगी तब कुलबधुएं इस काम को ग्रहण करेंगी और दूसरे जैसे बड़े नगरों में सड़क के निकट जगह- जगह पनाले बने हुए हैं, यदि वे न बनाए जाएं तो चित्तवृत्ति को, शरीर के विकार को न रोक सकने पर लोग बाजार और गलियों को खराब कर

डाले, उसी तरह यदि वेश्याएं हमारे समाज से उठा दी जायं तो घर की बहू- बेटियां बिगड़ेगीं।"[1]

वस्तुतः इस युग में भारतीय पुनर्जागरण का प्रभाव समाज और साहित्य के सभी क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगा था अतः कहानी का क्षेत्र ही उससे कैसे अछूता रह सकता था।

तथापि, सामाजिक चेतना की सर्वतोमुखी अभिव्यक्ति प्रेमचन्द्र युग से ही सम्भव हो सकी। प्रेमचन्द्र की पहली कहानी 'पंच परमेश्वर' सन् १६१६ में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई।

१- आदर्श हिन्दू - भाग -३- (लज्जाराम मेहता) पृ० २१७-२१८

तृतीय अध्याय

(अ) सती प्रथा, बाल विवाह आदि रूपों में नारी की सामाजिक स्थिति और नारी चेतना की भूमिका

सती प्रथा
सती प्रथा और राम मोहन राय
बाल विवाह
विधवा समस्या
देवकन्या एवं वेश्या वृत्ति
यौन शोषण
कुप्रथाओं आदि से पीड़ित नारी की सामाजिक स्थिति एवं नारी चेतना की भूमिका
वेश्यावृत्ति उन्मूलन में साहित्य का योगदान

(ब) हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूपों की अभिव्यक्ति और सामाजिक चेतना की समीचीन परख

प्रेमचन्द, प्रसाद एवं कौशिक : हिन्दी के तीन प्रारम्भिक प्रमुख कहानीकार

अध्याय - तृतीय

(अ) सती प्रथा, बाल विवाह आदि रूपों में नारी की स्वाभाविक स्थिति और नारी चेतना की भूमिका :-

सती प्रथा :-

भारतीय शास्त्रों में नारी के सती धर्म की भूरि- भूरि प्रशंसा की गई है तथापि सती प्रथा का जो रूप (सती स्त्री के विधवा हो जाने की स्थिति में सशरीर जीवित पति की चिता के साथ जबरन जल जाना) प्रचलित हो गया था उसका उल्लेख वहां नहीं मिलता। हां, स्वेच्छा से पतिव्रत का आचरण करते हुए सहगमन की भावना अवश्य शास्त्रानुमोदित थी। किन्तु शास्त्रों में उसके भी बहुत कम उदाहरण ही मिलते हैं अन्यथा विधवा स्त्री की जीवन शैली पर इतनी अधिक विवेचना की शास्त्रों में आवश्यकता ही न होती।

अनेक विद्वानों की यह मान्यता है कि सती प्रथा का उग्र रूप तब से है जब से विदेशी आक्रमणकारी भारत में आकर लूट-पाट करने लगे और स्त्रियों को भी उनकी बर्बरता का बराबर शिकार होते रहना पड़ा। जो भी हो, यह सती प्रथा अपने अग्र रूप में आधुनिकत युग तक बनी रही और इसके कारण मानवतावादी चिन्तनधारा से प्रभावित आधुनिक चिन्ताकों ने इसका विरोध करना नहीं प्रारम्भ कर दिया। यह भी सम्भव है कि उससे पूर्व भी भारतीय चिन्तक सती प्रथा की कठोरता से विचलित होते रहे हों किन्तु भ्रमवश उसे आवश्यक एवं अपरिहार्य समझते- मानते रहें हों या धार्मिक प्रतिबन्धों के नाम पर सहन करते रहे हों।

यहाँ आधुनिक युग में भारतीय पुनर्जागरण की परिस्थितियों तथा सती प्रथा पर रोक लगाने की मांग की पृष्ठभूमि पर विचार करे के पूर्व एक महत्वपूर्ण घटक पर ध्यान देना भी आवश्यक है। हिन्दू समाज में दोहरे मानदण्ड का प्रयोग बरावर चला आ रहा था- वह स्त्री से तो पति निष्ठा की अपेक्षा करता था किन्तु पुरूष से एक पत्नी की निष्ठा की अपेक्षा नहीं की जाती थी। पुरूष बड़ी सरलता एवं सहजता से जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में एक पत्नी की जीवित रहते भी जब चाहे दूसरी पत्नी प्राप्त कर लेता था - पत्नी के मर जाने के बाद तो दूसरा विवाह कर लेना आज तक उसी रूप में चला आ रहा है। किन्तु इसके विपरीत पत्नी से आज तक यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने जीवन में एक ही पति पाये, पति के मर जाने पर विवाह के तत्काल बाद भी मर जाने पर दूसरे विवाह की कल्पना तक न करें। उधर पति एक के बाद एक अनेक विवाह करता चला जाय यहॉ तक कि बुढ़ापे तक विवाह करता चला जाय और हर बार बेमेल विवाह भी हो क्योंकि लड़की उसे कभी भी बड़ी उम्र की चाहने पर भी मिल ही न सके। ऐसी स्थिति में मरणासन्न व्यक्तियों या कब्र में पैर लटकाये व्यक्तियों से विवाह करके केवल युवा विधवाओं की अत्यधिक भीड़ बढ़ाने के अतिरिक्त कोंई परिणाम नही निकल सकता था। उस पर स्त्री को पति की सम्पत्ति में हिस्सा न मिलने या हिस्सा देने से बचने के लिए भी सती प्रथा की विकरालता एवं क्रूरता समाज को जकड़े रही।

अव हम उन परिस्थितियों पर विचार करें जिनके परिणाम स्वरूप सती प्रथा का विरोध करना प्रारम्भ किया गया या प्रारम्भ करना सम्भव हो सका।

मानवता वादी चिन्तन धारा तथा विज्ञान के दिन प्रति दिन बढ़ते अनुसन्धान एवं आविष्कार तथा उनके सफल एवं उपयोगी प्रयोगों

ने मानव जीवन को परम्परा, रूढ़ियों तथा धार्मिक नियमोपनियमों एवं अन्ध विश्वासों से मुक्त होने की प्रेरणा दी। जीवन के कठोर नियमों से बद्ध समाज के विभिन्न वर्गों में असमानता, ऊंच-नीच के विचार, वर्ण भेद या अमीरी- गरीबी स्वामी-दास के भेदों के कारण उत्पन्न जटिलताओं से त्रस्त मानवता को राहत दिलाने का कार्य दार्शनिकों, चिन्तकों, समाज सेवियों, समाज सुधारकों ने अपने हाथ में लिया। बुद्धिवाद, शिक्षा का प्रसार, मुद्रण की सुविधा, कागज के उत्पादन तथा विज्ञान के नित्य नये आविष्कारों एवं अन्वेषणों ने इस कार्य में बहुत बड़ा सहयोग दिया। बुद्धिवादी चिन्तकों ने सभ्यता एवं संस्कृति, धर्म तथा परम्परा से प्राप्त तथा दृढ़मूल प्रचलित मान्यताओं को तर्क की छेनी से तराशा और समाज को नये रूप में ढालने का प्रयास किया।

यह प्रयास एक के बाद सारे विश्व के देशों में शुरू हुआ। इस प्रयास को रिनेसां (पुनर्जागरण काल) कहते हैं। इसका यह आशय नहीं है कि इससे पूर्व ऐसे प्रयास नहीं हुए। वस्तुतः ऐसे प्रयास एक सतत प्रक्रिया हैं। किन्तु पूर्वकाल के इन प्रयासों में वेग या तीव्रता नहीं थी। इसलिए लम्बे- लम्बे अन्तराल के बाद ही कुछ प्रगति हो पाती थी जो नगण्य थी। किन्तु पुनर्जागरण काल में ऐसे प्रयास एक साथ और बहुत तेजी से बढ़े। इसलिए उस काल का एक नया नाम करण ही किया गया। यद्यपि विश्व के भिन्न- भिन्न देशों में पुनर्जागरण काल प्रारम्भ होते होते शताब्दियाँ बीत गयीं।

भारत में इस पुनर्जागरण काल का प्रारम्भ अंग्रेजों के पदार्पण से हुआ। इसका भारत में प्रारम्भ प्रायः डेढ़ शताब्दी पूर्व सन् १८१८ से माना जाता है। इसी समय अंग्रेजों का भारत की राजनीति में सक्रिय रूप दिखायी पड़ा।

सती प्रथा और राजा राम मोहन राय :-

सन् १८१८ में राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा के विरोध में अपना पहला धार्मिक लेख लिखा। राजा राम मोहन राय का जन्म बंगाल के एक धार्मिक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे अत्यन्त मेधावी, कुशाग्र बुद्धि तथा धर्म जिज्ञासु थे। उन्होंने संस्कृत, फारसी, अरबी एवं अंग्रेजी का भी अध्ययन किया। बंगाल में तब तक अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार होने लगा था। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने तब तक अपने प्रभुत्व का भी विस्तार कर लिया था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक सम्पूर्ण भारत या तो सीधे ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत था या छोटे-छोटे रजवाड़ों के द्वारा प्रशासित होता था। हिन्दुओं पर अंग्रेजों का प्रभाव मुस्लिम आक्रान्ताओं से भी अधिक पड़ रहा था क्योंकि उनके पास शिक्षा, विज्ञान और तकनीकी श्रेष्ठता थी। यद्यपि हिन्दू समाज ने उसी प्रकार अंग्रेजों का भी विरोध किया जिस प्रकार मुस्लिम आक्रान्ताओं का किया था। हिन्दुओं ने अंग्रेजों को भी म्लेच्छ कोटि में माना यद्यपि वे शासक बन गए थे। अंग्रेजों के अपने नियम एवं परम्पराएं, प्रथाएं थीं जो हिन्दू विचार पद्धति से भिन्न थीं अतएव त्याज्य थीं और अनुकरणीय नहीं थीं।

तथापि, अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त अंग्रेजी शिक्षा की ओर अनेक कारणों से हिन्दुओं का आकर्षित होना स्वाभाविक था। अंग्रेज अपनी भाषा एवं ज्ञान के बल पर भारत पर शासन कर रहे थे और भाषा एवं ज्ञान के क्षेत्र में पारंगत हिन्दू उनके समक्ष असहाय, हीन तथा पददलित अनुभव कर रहे थे। अंग्रेज भी चाहते थे कि भारतीय अंग्रेजी सीखें और उनसे मिल जायं या उनके शासन में उनके सेवक बन सकें क्योंकि इतने बड़े भारतीय भूभाग का शासन सूत्र थोड़े से अंग्रेजों के वश का नहीं था। हिन्दू जिस प्रकार मुस्लिम अधीनता में शासन में सेवा करने के लिए फारसी सीख चुके थे उसी प्रकार वे अंग्रेजों के शासन में अंग्रेजी सीखने में प्रवृत्त हुए। मध्य वर्गीय हिन्दुओं ने अपने बच्चों को यूरोपीयनों द्वारा संचालित स्कूलों में भेजना प्रारम्भ किया यद्यपि उनके मन में अंग्रेजों के संसर्ग में आने के कारण उत्पन्न होने वाली अशुद्धता, भ्रष्टता का भय व्याप्त था। उनका यह भय अकारण नहीं था क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा का सूत्रपात ईसाई मिशनरियों ने किया था और उनका परम उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना तथा ईसाई धर्म में भारतीयों का धर्मान्तरण करना था।

भारत में अंग्रेजों और अंग्रेजियत के विरोध का एक कारण ईसाई धर्म का प्रलोभन द्वारा या जबरन लादा जाना भी था। पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों को बढ़ने नहीं दिया था किन्तु सन् १८१३ में ईशाई मिशनरियों को इण्डियन चर्च स्थापित करने का मौका दिया। वे खूब बढ़े- उनकी गतिविधियां बढ़ी। वे पढ़ाते- उपदेश देते और ईसाई बनाते- जबरन भी और गलत तरीके से भी। इससे राजा राम मोहन राय जैसे प्रगतिशील हिन्दू भी उनके विरोधी हो गए। इसी से चिढ़कर राजा राम मोहन राय ने सन् १८१७ में हिन्दू कालेज की स्थापना करायी जो बाद में प्रेसीडेन्सी कालेज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राजा राम राम मोहन राय ने मैकाले की शिक्षा प्रसार् सम्बन्धी अनुशंसाओं के पूर्व ही एक अंग्रेजी स्कूल खोला। यह भारतीय बच्चों को पाश्चात्य तथा वैज्ञानिक ढंग से शिक्षित करने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान था।

राजा राम मोहन राय जो सन् १७७२ में पैदा हुए थे और सन् १८०३ से १८१३ तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में भी रहे थे।अपनी योग्यता के बल पर उच्च पदों पर पहुंचे। ऊपर उस लेख का उल्लेख किया जा चुका है जो राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा के विरोध में सन् १८१८ में लिखा था। सन् १८११ में राजा राम मोहन राय के बड़े भाई की मृत्यु पर उनकी पत्नी को चिता पर जीवित चढ़ा दिया गया था। राजा राम मोहन राय अपनी भाभी को बहुत चाहते थे। यह लेख उसी की प्रतिक्रिया थी।

सती प्रथा के सम्बन्ध में राजा राम मोहन राय का यह लेख बुद्धि की कसौटी पर ही केवल खरी उतारने वाली बातों को मानने तथा अन्ध श्रद्धा, अन्ध विश्वास का परित्याग करने की दिशा में पहला सार्वजनिक रूप से घोषित तथा लिखित प्रयोग था। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा को नारी जाति पर अमानुषिक अत्याचार के रूप में देखा। नारी जाति के उद्धार के लिए, उसके व्यक्तित्व को महत्व देने के लिए राजा राम मोहन राय तथा उनके सहयोगियों ने सती होने की अमानुषिक प्रथा को कानून बनाकर रोकने का सर्वप्रथम आन्दोलन चलाया। इससे पूर्व भी सती प्रथा को दूर करने का प्रयास शासन की ओर से किया गया था किन्तु उसमें हिन्दू समाज की सहमति न होने कारण सफलता नहीं मिल पायी थी। राजा राममोहन राय ने समाज में नयी विचार-धारा का प्रवेश किया और जनमत को मोड़ा जिसके परिणाम स्वरूप सन् १८२८ में सती प्रथा के विरूद्ध कानून बन गया।

वस्तुतः सती प्रथा के विरोध के माध्यम से स्त्री स्वतन्त्रता का सूत्रपात हुआ। बाल विवाह का निषेध, विधवा विवाह का समर्थन, स्त्री शिक्षा का समर्थन तथा स्त्री को आत्म निर्भर एवं स्वावलम्बी बनाना अर्थात स्त्री स्वतन्त्रता का समर्थन मे सब सती प्रथा के विरोध के साथ आनुषंगिक रूप में आ गए।

ऐसा नहीं है कि सती प्रथा का उन्मूलन इतनी सरलता से समाज को ग्राह्य हो गया। सती प्रथा उन्मूलन का विरोध बराबर होता रहा। सन् ७ जनवरी १८३० को कलकत्ता में सती प्रथा पर रोक के विरोध में एक सभा हुई और अत्यन्त सनातनी हिन्दुओं ने 'धर्मसभा' नामक एक संस्था की स्थापना की जिसकी विशेषता यह थी कि उसके पाश्चात्य संस्थाओं की तरह अध्यक्ष, निदेशक, कोषाध्यक्ष और सचिव थे। साथ ही इसकी एक विशेषता और थी। इसमें एक भी ब्राह्मण नहीं था और कुछ लोग तो ऐसे भी थे जो अछूत एवं अस्पृश्य थे। किन्तु 'धर्मसभा' का उद्देश्य असफल रहा। प्रिंवी कौंसिल ने उसकी अपील सन् १८३२ में ठुकरा दी। यद्यपि धर्मसभा बाद में भी कुछ समय तक चलती रही। इतना ही नहीं धर्मसभा ने उच्च वर्ग के उन हिन्दुओं की निन्दा भी की जिन्होंने लार्ड विलियम बैंटिक की कार्यवाही का समर्थन किया था। किन्तु यह धार्मिक उन्माद शीघ्र शान्त हो गया। इतना ही नहीं सन् १८३५ में इसी धर्म सभा के प्रमुख नेताओं ने उसी लार्ड विलियम बैंटिक का अभिनन्दन किया जिसे सती प्रथा रोकने का कानून बनाने का श्रेय प्राप्त है। इसके लिए ३० जनवरी, १८३५ को हिन्दू कालेज में एक सभा हुई जिसमें ५०० से ६०० लोग उपस्थित थे। सम्भवतः हिन्दुओं द्वारा पश्चिमी शैली की यह पहली सभा थी।[1]

श्री ए० एल० बाशम ने राजा राम मोहन राय को सामाजिक सुधारों का श्री गणेश करने वाला बताया है जिसे स्वामी

१- दि इमरजेन्स आव् द इण्डियन नेशनल कांग्रेस - एस० आर० मेहरोत्रा - पृ० ३१

वेवेकानन्द ने राष्ट्रीय भावना से आगे बढ़ाया।[1]

बयालीस वर्ष की आयु तक राजा राममोहन राय ने इतना धन संचित कर लिया था कि वे सेवा-निवृत्त होकर कलकत्ता में रहने लगे तथा उसके बाद जीवन के शेष १६ वर्षों में केवल समाज सेवा के ही कार्य करते रहे। राजा राममोहन राय ने न केवल सती प्रथा का ही विरोध किया बल्कि शिक्षा का प्रसार करने के लिए स्कूल कालेज भी चलवाये जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है जिनमें से हिन्दू कालेज जिसे बाद में प्रेसीडेन्सी कालेज का रूप दिया गया उन्हीं की प्रेरणा के परिणाम थे। वे उन पहले भारतीयों में से थे जिन्होंने समाचार पत्रों की स्थापना, सम्पादन तथा प्रकाशन का कार्य किया। उनके समाचार पत्र अंग्रेजी, बंगाली एवं उर्दू भाषा में निकले।

राजा राममोहन राय पहले भारतीय थे जिनके विचारो पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पड़ा। उन्होंने ईसाई धर्म के मानवता पक्ष को माना किन्तु ईसा को अवतार के रूप में नहीं माना। हिन्दुओं में उन्होंने एकेश्वरवाद का प्रचार किया तथा मूर्तिपूजा, बलिप्रथा, जाति-पांति के भेदभाव, छुआछूत, बहुविवाह आदि का भी विरोध किया। वे विधवा विवाह के भी समर्थक थे। भारत में प्रेस की स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने अंग्रेजी शासन से संघर्ष किया। संस्कृत के विद्वान होते हुए भी उन्होंने संस्कृत, फारसी का विरोध कर अंग्रेजी के प्रचार पर बल दिया क्योंकि उनकी राय में अंग्रेजी पढ़कर ही आधुनिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता था तथा अंग्रेजों और अंग्रेजियत का विरोध एवं मुकाबला किया जा सकता था। उन्होंने संस्कृत कालेज की स्थापना के लिए अंग्रेजों के प्रस्ताव का इस कारण विरोध किया कि संस्कृत को प्रोत्साहन देने का अर्थ है देश को अन्धकार में रखना। उन्होंने प्रशासन में मितव्ययिता के लिए अधिक वेतन पाले वाले अंग्रेज पदाधिकारियों को हटाकर भारतीयों की नियुक्ति का सुझाव दिया। उन्होंने इस बात की भी आग्रह पूर्वक मांग की कि प्रत्येक कार्य में भारतीयों का भी मत लिया जाय। उन्होंने किसानों की दशा सुधारने के लिए भी अनुशंसा की।

वे सभी संस्कृतियों के समन्वय में विश्वास करते थे। वे पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित थे किन्तु हिन्दू धर्म एवं हिन्दू संस्कृति का उन्होंने परित्याग नहीं किया। अपनी संस्कृति पर उन्हें गर्व था। वे धर्म सहिष्णु थे। मोनियर विलियम्स ने उनके विषय में लिखा है कि संसार के वे पहले व्यक्ति है जिन्होंने विभिन्न धर्मो की तुलनात्मक अध्ययन की परिपाटी की खोज की।।

समाज सुधार तथा धर्म सुधार एक दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते तथा एक का सुधार करने के लिए दूसरे में सुधार अपेक्षित है, यह बात सबसे पहले राजा राममोहन राय के मन में आयी। अपनी इस विचारधारा का प्रसार करने के लिए उन्होंने ब्रह्म समाज की सन् १८२८ में स्थापना की।[2]

डॉ० चण्डी प्रसाद जोशी ने राजा राममोहन राय के सती प्रथा उन्मूलन की दिशा में किए गए प्रयासों एवं योगदान का इस प्रकार उल्लेख किया है :-

'उन्होंने बतलाया कि बंगाल में सती प्रथा दस गुनी अधिक है जिसका कारण बहु-विवाह प्रथा है। बहु विवाह के कारण नारी का साम्पत्तिक अधिकार से वंचित रहना है। पिता अपनी पुत्री के लिए आर्थिक स्वालम्बन ढूढता है तथा पति अपनी सम्पत्ति सुरक्षित रखने के लिए पुत्र प्राप्ति के लिए कई शादियों की छूट पा लेता है। वस्तुतः यह क्रान्तिकारी विचार था जिसे पिछले सुधारक भूल गए। यही कारण है कि नारी को अन्य अधिकार मिले लेकिन साम्पत्तिक अधिकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही प्राप्त हुए। राम मोहन राय ने प्राचीन शास्त्रकारों की सम्पत्तियाँ अद्धृत करके बतलाया कि प्राचीन समय में भी लड़की को चौथाई भाग तथा पति की मृत्यु के बाद माता तथा पुत्र का सम्पत्ति पर समानाधिकार था जिसे पुरूषो ने बाद को स्वार्थवश छीन लिया। उन्होंने बहु विवाह का विरोध किया तथा विधवा विवाह की मांग की। कुलीन ब्राह्मण होते हुए भी अन्ध विश्वासों

१- दि वण्डर दैट वाज इण्डिया - ए० एल० बाशम- पृ० ४८५

२- हिस्ट्री आव् द ब्रह्म समाज (१६११-१२)- एस० एन० शास्त्री- पृ० ३६ (खण्ड प्रथम)

को चीरकर 'काला समुद्र' पार करके वह यूरोप गए थे। वस्तुतः राय का महत्व इसलिए है कि उन्होंने सामाजिक समस्याओं के समयानुसार समाधान प्रस्तुत किए थे।"[1]

इस प्रकार सती प्रथा का भारतीय समाज में सदा- सदा के लिए अन्त हो गया। उसके बाद केवल छिट-पुट घटनाएं ही हो पा रही हैं और उन पर भी समाज एवं शासन का उग्र प्रतिरोध मुखर होता मिलता है जो स्वयं इस बात का प्रमाण है कि सती प्रथा अब एक अनहोनी घटना बन कर रह गयी है। परन्तु यह स्थिति एक बहुत ही प्रबल विरोध एवं संघर्ष का डटकर सामना करने के कारण ही सम्भव हो सकी है।

बाल विवाह :-

भारतीय शास्त्रों में स्त्री का फल 'रति-पुत्र फला' कहा गया है। पुत्रादि की प्राप्ति रज प्रवृत्ति के बाद ही सम्भव है अतः रजोदर्शन अवस्था प्राप्त होने तक कन्या का विवाह कर देने की बात कही गयी है। किन्तु शास्त्रों में जन्म या गर्भ से पांच वर्ष की अवस्था से लेकर आठ वर्ष तक की अवस्था तक में कन्या विवाह को उचित काल, छह से आठ वर्ष तक में प्रशस्ततर काल , नवें एवं दशम वर्ष में विवाह को मध्यम तथा ग्यारह वर्ष में किए गए विवाह को अधम विवाह की कोटि में रखा जाने लगा। बारहें वर्ष से प्रायश्चित विवाह की व्यवस्था चल पड़ी।[2] वहीं यह भी व्यवस्था दी गई कि कन्या के विवाह के पूर्व यदि रजोदर्शन प्रारम्भ हो जाय तो कन्या के पिता, माता एवं भाई को नरक की प्राप्ति होती है और उस कन्या दाता को गोदान, ब्राहमण भोजन आदि द्वारा शुद्धि करना चाहिए। वहीं यह भी कहा गया कि रजोदर्शन प्रारम्भ होने के बाद तीन वर्ष तक कन्या पिता आदि द्वारा उसका विवाह कर दिए जाने की प्रतीक्षा करे और तत्पश्चात स्वयं किसी वर का वरण कर लें।[3]

इन व्यवस्थाओं का उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति के योग्य हो जाने पर कन्या को सन्तानोत्पत्ति से वंचित न करना था। इसलिए समाज में कन्या का इतनी अल्प वय में विवाह कर दिया जाता था कि उसके ३ या ५ या ७ वर्ष बाद रजस्वला होने की स्थिति तक वह द्विरागमन के योग्य हो सके। कन्या की आठ वर्ष में 'गौरी' संज्ञा और नव वर्ष में 'कन्या' संज्ञा भी शास्त्रों में कही गई - अष्ट वर्षा भवेद् गौरी नव वर्षा तु कन्यका।' उस का विवाह ८ या ६ वर्ष में करने पर ५ या ७ वर्ष बाद द्विरागमन करने के समय उसकी अवस्था १३ से १५ वर्ष के बीच बनती है। यह व्यवस्था बहुत काल तक भारत में विद्यमान रही जब तक आधुनिक युग में शारदा एक्ट द्वारा इसे प्रतिबन्धित नहीं करा दिया गया। किन्तु स्थिति यहीं तक भयावह नहीं थी कहीं- कहीं विवाह इससे भी कम आयु में किए जाते रहे यहां तक कि गर्भ के समय या जन्म के समय से ही विवाह निश्चित किये जाने की भी परम्परा कुछ समाजों में चल पड़ी। इस पर कोढ़ में खाज यह कि ऐसी अबोध बालिकाओं का विवाह उन अधेड़ व्यक्तियों से किया जाने लगा जो दो- दो, तीन- तीन पत्नियों को जानबूझकर या उपेक्षा भाव के कारण मूर्खता के कारण गवां चुके थे। इस प्रकार बाल विवाह एक विकट समस्या के रूप में समाज में उपस्थित थी।

आधुनिक युग में जब राजा राममोहन राय जैसे समाज सुधारक सती प्रथा, नारी शिक्षा या नारी मुक्ति की दिशा में तेजी से विचार करने लगे तब भी सम्भवतः बाल विवाह पर रोक की कोई मांग उठती नहीं दिखायी दी। सम्भवतः नारी उत्पीड़न के इस मूल कारण की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया यद्यपि नारी शिक्षा के साथ वह प्रकारान्तर से जुड़ा था क्योंकि शिक्षा ग्रहण करने वाली नारी का आज नहीं तो कल अधिक आयु तक शिक्षा लेने का क्रम चलना स्वाभाविक था। जो भी हो राजा राममोहन राय के बाद के समाज सुधार के प्रयत्नों पर विचार करें तो पायेंगे कि उनके द्वारा स्थापित संस्था ब्रह्म समाज का नेतृत्व जब केशवचन्द्र सेन के हाथों में आ गया तब इस दिशा में भी प्रयास प्रारम्भ हो गए। इसका विवेचन आगे 'नारी मुक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।

१- हिन्दी उपन्यास, समाज शास्त्रीय विवेचन - डॉ० चण्डी प्रसाद जोशी- पृ० ७

२- धर्म सिन्धु- तृतीय परिच्छेद- पृ० २०४

३- वही - पृ० - २०३

उन्ही की प्रेरणा से सन् १८६७ में बम्बई में 'प्रार्थना- समाज' की स्थापना हुई थी जिसके प्रमुख चार उद्देश्यों में एक बाल-विवाह निषेध भी था। उनके बाद बम्बई में ही सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज ने भी न केवल नारी शिक्षा का प्रचार किया बल्कि उन्हें पुरूषों के समान अधिकार देने को सप्रमाण वेदों तथा शास्त्रों से सिद्ध करने का प्रयास किया। उन्होंने यहां तक कहा कि वैदिक युग में भी स्त्रियों को शिक्षा का तथा शादी का समानाधिकार प्राप्त था। इसलिए आर्यसमाज ने जबरन अबोध बालिकाओं के बाल विवाह का भी विरोध किया। इतना ही नहीं उन्होंने स्त्री- पुरूष की विवाह की आयु भी निर्धारित कर दी। आर्य समाज के अनुसार विवाह के समय कन्या की कम से कम आयु १६ वर्ष तथा पुरुष की कम से कम आयु २४ वर्ष निर्धारित की। लगभग उसी समय बंगाल में परम प्रतिभावान् ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने प्रथम बार पाराशर संहिता का मत उद्धृत करके (यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि सनातनी हिन्दुओं के लिए कलियुग में पराशर स्मृति का प्रमाण सर्वोपरि है- 'कलौ पराशरौ स्मृतिः') शास्त्रों की सहायता से विधवा विवाह का समर्थन किया और उन्हीं के सक्रिय सहयोग से सन् १८५६ में विधवा विवाह कानून बना था। साथ ही उन्होंने बहु विवाह का भी प्रबल विरोध किया जिससे कि अधेड़ उम्र के व्यक्तियों से अल्प वय की कन्याओं का विवाह करने की प्रवृत्ति घटे।

ऊपर आर्य समाज के इस विषय के विचारों का उल्लेख किया जा चुका है जिसमें विवाह के समय पुरूष की आयु २४ वर्ष मानने की बात कही गयी है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर व्यक्ति न केवल अपना शारीरिक विकास व क्षमता में वृद्धि करता है बल्कि मानसिक विकास एवं क्षमता में भी वृद्धि करता है। यह विचार धारा इस आशय में शास्त्र सम्मत थी कि शास्त्रों में भी विधिवत् शास्त्राध्ययन करने के उपरान्त गृहस्थ धर्म में प्रवेश करने की बात कही गई है और वहां जीवन को शतायु मानकर उसे चार आश्रमों में विभाजित किया गया है जो ब्रहमचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास के रूप में सर्वमान्य हैं। अब यदि अल्पायु में ही एवं अपरिपक्व अवस्था में ही विवाह सम्पादित कर दिया जाता है तो वह शास्त्राध्ययन में बाधक बनेगा। इस दृष्टि से भी कम आयु में विवाह उचित नहीं था। किन्तु गुरूकुल व्यवस्था के छिन्न-भिन्न होने तथा बालकों के उपनयन संस्कार के बाद उन्हें घर में ही रोक लेने की प्रवृत्ति बढ़ने के कारण धीरे-धीरे शास्त्राध्ययन में रूचि घटती गयी तथा व्यावहारिक ज्ञान या जीविकोपार्जन मात्र के लिए न्यूनतम ज्ञान प्राप्त कर उसी से काम चलाया जाने लगा। इस प्रकार न केवल शिक्षा व्यवस्था ही गड़बड़ायी और उसका ह्रास हुआ बल्कि ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों का भी अतिक्रमण हुआ और परिवार एवं समाज व्यवस्था भी गड़बड़ायी।

वस्तुतः आज के आधुनिक परिवेश में केवल एक आश्रम गृहस्थाश्रम रह गया है क्योंकि व्यक्ति का जीवन गृह से प्रारम्भ होकर गृह में ही समाप्त होता है। उसके लिए ब्रह्मचर्य आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम एवं सन्यास आश्रम का कोई महत्व एवं उपयोगिता नहीं रह गयी है।

किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक युग ने जहां एक ओर नई नई खोजों एवं आविष्कारों से मानव जीवन को सुखमय एवं समृद्धि मय बनाने का उपक्रम किया है वहीं उसे अर्थ एवं काम के प्रति अधिक मोहित बना दिया है। वह धर्म तथा मोक्ष रूपी शेष दो किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण पुरूषार्थो का भी परित्याग करता चला जा रहा है। अब उसे अर्थोपार्जन के लिए अपनी सारी शक्तियों को केन्द्रित करने और अर्थोपलब्धि के बाद उसके अधिक से अधिक अपने व्यक्तिगत (परिवार गत भी नहीं तो फिर समाज की बात ही क्या है) स्वार्थ में विनियोग में ही अपने जीवन की सार्थकता समझता है। इस प्रकार उसकी जीवन सम्बन्धी मान्यताएं भी बिलकुल ही बदल गयी हैं किन्तु इस सब के प्रयास में उसे लम्बी आयु तक जीविकोपार्जन के ज्ञान में लगे रहना पड़ता है और उसके परिणाम स्वरूप उसकी विवाह की आयु कानून द्वारा बनायी गई आयु सीमा से भी बहुत आगे बढ़ गयी है। अब किसी भी शिक्षित एवं प्रगतिशील नवयुवक का विवाह २१ वर्ष में हो पाना कल्पना की वस्तु रह गया है। चूकि पुरूषों के साथ नारियां भी अब बराबर की दौड़ में हैं वे भी शिक्षा ग्रहण करते- करते या किसी जीवन- व्यवसाय में जुड़ते जुड़ते इक्कीस से अधिक की आयु की हो जाती है। अतः अब आर्य समाज का कन्या का १६ वर्ष की आयु के पूर्व तथा पुरूषों का २४ वर्ष की आयु के पूर्व विवाह न करने का प्रतिबन्ध स्वतः निरस्त हो गया है और शासन द्वारा कानून बनाकर निर्धारित की गई आयु सीमा भी निरर्थक हो गयी है। यदि यह कहा जाय कि यह व्यवस्था केवल शिक्षित समाज में ही लागू मानी जा सकती है उस ८० प्रतिशत से अधिक ग्रामीण समाज में नहीं जो जीविका के लिए कृषि पर या अपने छोटे- मोटे ग्रामीण रोजगार पर निर्भर रहता है तो यह कहना भी ठीक न होगा क्योंकि अब कृषि या अन्य ग्रामीण रोजगार भी बढ़ती लागतों के कारण व्यवसाय के आधार पर किए

ाने के लिए बाध्य हैं। साथ ही, ग्रामीण परिवेश को भी उन सभी साधनों- सुविधाओं को उपलब्ध कराया जा रहा है या अंगीकार करना पड़ रहा है जो शहरी परिवेश में उपलब्ध होती हैं अतः उनके लिए भी जीवन के सभी आवश्यक साधन जुटा पाना अब सरल नहीं रह गया है। इसलिए ग्रामीण नवयुवक तथा नवयुवतियां भी जागरूक हो जाने के कारण उन सभी शहरी एवं आधुनिकतम सुख-सुविधाओं की अपेक्षा करती हैं जो ग्रामीण परिवेश में पाना और भी कठिन है। अतः अब ग्रामीण क्षेत्र में भी बाल विवाह लुप्त होते जा रहे हैं। अतः हम कह सकते हैं कि समाज सुधारकों तथा शासन से कहीं अधिक आधुनिक वैज्ञानिक व्यवस्था ने ही बाल विवाह को सीमित कर दिया है ठीक उस प्रकार कि जिस प्रकार छुआ छूत की समस्या को समाज सुधारकों या शास्त्र के निर्देशों से अधिक वैज्ञानिक प्रगति, औद्योगिक प्रगति तथा नगरीकरण ने हल कर दिया है।

विधवा समस्या :-

शास्त्रों में नारी के लिए पति ही भर्ता, पति ही गति माना गया है। उसे अपने पति को देवता मानकर उसकी सुश्रुषा एवं परिचर्या करने को कहा गया है :-

सा भवेद् धर्म परमा सा भवेद् धर्म भागिनी।
देववत् सततं साध्वी या भर्तारं प्रपश्यति ।।[1]

मनुस्मृति में कहा गया है कि स्त्री के लिए न तो पृथक यक्ष है, न व्रत है न उपवास है, पति सुश्रुषा से ही वह स्वर्ग जाती है :-

नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रुयते येन तेन स्वर्गे महीयते ।।[2]

गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरित मानस में भी नारी का सर्वतोमुखी धर्म पति सेवा ही बताया गया है :-

एकई धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा ।।३

ऐसी सती नारी को पति के दीर्घायु तथा सौभाग्य के लिए हरिद्रा, कुंकुम, सिन्दूर , कज्जल, कूर्पासक, ताम्बूल तथा शुभ मंगलकारक आभूषण , केश संस्कार, वेणी बांधना, हाथों तथा कानों में आभूषण पहनना आदि आवश्यक बताया गया है किन्तु उसी नारी को विधवा हो जाने पर इन सब उपचारों के परित्याग का विधान किया गया है। तब उसके लिए बाल रंगना, ताम्बूल चर्वण, गन्ध तथा पुष्पों का सेवन, भूषण धारण करना, रंगीन वस्त्र पहनना, कांसे के पात्र में भोजन करना, दो बार भोजन करना तथ कज्जल लगाना निषिद्ध किया गया है। शास्त्रों में वैधव्य को पूर्वजन्म कृत पापों का परिणाम भी माना गया है। किन्तु आधुनिक युग में बाल विवाह, अनमेल विवाह तथा पुरूष द्वारा वृद्धावस्था तक तीन-तीन-चार-चार विवाह करते जाने के कारण वैधव्य, विशेष कर बाल वैधव्य के अवसर अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध होने लगे। इस पर भी शास्त्रों द्वारा दी गई सहमरण की व्यवस्था का दुरूपयोग या जबरन प्रयोग विधवाओं के लिए व्याधि बन गया। इस जबरन सती प्रथा का ही विरोध करना भारतीय पुनर्जागरण काल में प्रारम्भ हुआ और उसी के साथ विधवा समस्या पर भी ध्यान दिया गया। स्त्री जब तक आर्थिक रूप से स्वतन्त्र न हो, शिक्षित न हो तब तक वह अपना वैधव्य भी अपने बल-बूते पर नहीं ढो सकती। इसलिए उसे अभागिन, अशुभ एवं अवांछित माना जाने लगा तथा उसे अपने जीवन धारण के लिए कठोर श्रम, घोर उपेक्षा एवं पदे-पदे प्रताड़ना सहन करनी पड़ी।

१- महाभारत- दान धर्म पर्व - १४६/३६
२- मनुस्मृति- ५/१५५
३- रामचरित मानस

वह जीवित ही मृत-तुल्य बन गयी तथा उसका जीवन यहीं पर नरक तुल्य हो गया।

इन परिस्थितियों में यूरोपीय विचारधारा से सबसे पहले सम्पर्क में आने वाले अतएव सर्वप्रथम प्रभावित राजा राममोहन राय जैसे महान् समाज सुधारकों ने पाश्चात्य प्रगतिशील तत्वों को पहचाना तथा उन्हें भारतीय रूप देने का प्रयत्न किया। इसलिए उन्होंने सबसे पहले सती प्रथा जैसे जबरन लादे गए अमानुषिक कार्यो का विरोध किया क्योंकि उनके अनुसार उन दिनों बंगाल में सती-प्रथा दस गुना अधिक थी जिसका कारण बहु विवाह प्रथा थी। बहु विवाह ही अनमेल विवाह को जन्म देता है। उन्होंने यह भी पाया कि नारी के साम्पात्तिक अधिकार से वंचित रहने के कारण भी बहु विवाह प्रथा प्रचलित थी। साथ ही शिक्षा एवं स्वावलम्बन के अभाव में भी नारी का वैधव्य पूर्ण जीवन व्याधि बन गया था। इसालिए इन प्रबुद्ध समाज सुधारकों ने नारी की चतुर्मुखी प्रगति के लिए न केवल उपाय सुझाए बल्कि उन्हें कार्य रूप में भी परिणत किया। इस प्रकार उनके सामाजिक सुधारों का मुख्य केन्द्र नारी समस्याएं बन गयीं जिनमें विधवा समस्या ही सबसे प्रमुख थी क्योंकि विधवा ही सबसे असहाय स्थिति में तथा सर्वाधिक पीड़ित एवं प्रताड़ित थी।

राजा राम मोहन राय के बाद जब केशवचन्द्र सेन ने ब्रह्म समाज का नेतृत्व सम्हाला तो वे भी नारी समस्याओं को ही प्रमुख रूप से लक्ष्य करके चले। उन्होंने न केवल 'ब्रह्म मैरेज एक्ट' पारित कराया बल्कि बाल विवाह का भी प्रबल विरोध किया तथा अन्तर्जातीय विवाह स्वीकार करके वर्ण व्यवस्था का आधार ही हिला दिया। यद्यपि अपने व्यक्तिगत जीवन में वे उसका निर्वाह नहीं कर सकें क्योंकि उन्होंने स्वयं अपनी कन्या का विवाह सजातीय किया, समय से किया और समुचित दहेज देकर शास्त्रीय विधि-विधान से किया। किन्तु सन् १८६७ में केशवचन्द्र सेन की प्रेरणा से बम्बई में प्रार्थना समाज का जन्म हुआ जिसके चार मुख्य उद्देश्य थे जो सभी नारी समस्या से जुड़े थे। ये उद्देश्य थे- जाति व्यवस्था समाप्त करना, विधवा विवाह, नारी शिक्षा का प्रचार तथा बाल-विवाह का निषेध। इस दिशा में काम करते हुए प्रार्थना समाज ने गरीबों के लिए आठ रात्रि स्कूल खोले। महाराष्ट्र के पण्ढरपुर नामक तीर्थ स्थल में पागलखाना तथा निराश्रित बाल आश्रम खोले। विधवा आश्रम चलाये तथा नारी शिक्षा के लिए 'महिला संघ' खोले।

बंगाल में सन् १८६५ में शशिपाद बनर्जी ने अपनी पत्नी को ही शिक्षिका बनाकर अपने घर में महिला शिक्षा का विद्यालय पड़ोस की स्त्रियों के लिए प्रारम्भ किया। सन् १८७१ में वे अपनी पत्नी के साथ इंग्लैण्ड की यात्रा पर गए। उनकी पत्नी पहली हिन्दू महिला थीं जिन्होंने समुद्र पार की यात्रा की। सन् १८७७ में इस पत्नी की मृत्यु के बाद शशिपाद बनर्जी ने विधवा विवाह किया। इनके द्वारा सम्पादित विधवा आश्रम सफलतापूर्वक चला। इस प्रकार व्यक्तिगत प्रयत्नों से नारी कल्याण के अनेक कार्य किया जाना प्रारम्भ हो गया।

पूना में भी ज्योति बा फुले ने विधवाओं के पुनर्विवाह का कार्य आगे चलाया। सन् १६०६ से १६१२ के बीच देश में बहुत से महिला आश्रम खोले गए। इनमें डी० के० कर्वे का पूना का हिन्दू विधवाश्रम अपने ढंग का अनोखा रहा। इसे काफी समर्थन प्राप्त हुआ। कर्वे जी ने स्वयं अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के बाद एक विधवा स्त्री से सन् १८६३ में विवाह किया। उसी वर्ष उन्होंने एक संस्था चलायी जिसमें विधवा स्त्री से विवाह करने वालों को तथा जो लोग ऐसे विधवा विवाह करने वालों के साथ खान-पान का व्यवहार कर सकें उन लोगों को प्रवेश मिला। श्री कर्वे जी ने ही भारत के सर्व प्रथम महिला विश्वविद्यालय की स्थापना २० जून, १६१६ को की जो भारत में एक अत्यन्त अनोखी घटना थी।

सन् १६१८ में विठ्ठलभाई पटेल ने अन्तर्जातीय विवाह का बिल प्रस्तुत किया। १ फरवरी, १६२७ को हर बिलास सारडा ने बाल विवाह प्रतिबन्धक बिल प्रस्तुत किया जो सन् १६२६ में पारित हो गया। इसके अन्तर्गत १४ वर्ष से कम आयु की लड़की तथा १८ वर्ष से कम आयु के लड़के का विवाह किया जाना कानूनन निषिद्ध हो गया। इसके पूर्व बाल विवाह के विरोध में जनमत तैयार किया गया था और पहले लड़कियों की आयु १० वर्ष तथा बाद में १२ वर्ष मान ली गयी थी। वर्तमान समय (सन् १६६६) में कानूनी स्थिति यह है कि १८ वर्ष से कम आयु की लड़की तथा २१ वर्ष से कम आयु के लड़के का विवाह नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार भीषण प्रतिरोध के बीच समाजिक सुधारकों ने अत्यन्त विषम परिस्थितियों में विधवा विवाह के प्रति जन जागृति पैदा की और सन १८६७ में विधवा विवाह को कानूनी मान्यता दिला सके। इसमें केशवचन्द्र सेन की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है।

इस सम्बन्ध में ओ० मेले महोदय का यह कथन महत्वपूर्ण है जिसमें उन्होंने कहा है कि 'विधवा विवाह का समाज इतना विरोध करता था कि सुधारकों ने विधवा को स्वावलम्बी बनाने के लिए शिक्षा का सहारा लिया।'[१] यहां हमें इस तथ्य पर भी ध्यान देना चाहिए कि इसी प्रकार शिक्षित की गई नारियों ने और विशेषकर विधवाओं ने नारी जागरण का सूत्र-संचालन अपने हाथों में लिया। हां, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे मनीषियों ने 'पाराशर संहिता' का मत उद्धृत कर विधवा विवाह का समर्थन कर इसे ठोस आधार अवश्य प्रस्तुत कराया। उन्होंने सन् १८५६ में विधवा विवाह का सबल अभियान चलाया।

अप्सरायें एवं देवकन्या :-

ऋग्वेद में प्राकृतिक तत्वों का देव और देवियों के रूप में वर्णन किया गया है। इनके साथ ही ऋभुओ, अप्सराओं, गन्धर्वों को भी द्वितीय श्रेणी के (अर्द्ध) देवताओं में परिगणित किया गया है। ऋग्वेद में उर्वशी अप्सरा तथा पुरूरवा का प्रसंग वर्णित है[२] जिसमें उर्वशी को देव श्रेणी में तथा पुरूरवा को मरणशील मानव की श्रेणी में रखा गया है और यही उनके परस्पर समागम में बाधक बनता है। अन्ततोगत्वा उर्वशी चार वर्ष तक पुरूरवा के साथ रहने को सशर्त प्रस्तुत होती है और यह अवधि पूर्ण होने पर गर्भवती होते हुये भी वह पुरूरवा को साथ रहने की शर्त के तोड़ने का स्वयं कुचक्र रचाकर बहाना मिल जाने पर छोड़ जाती है। यह कथानक शतपथ बाह्मण में भी मिलता है[३]। वेदों में गन्धर्वो को उनका पति माना गया है।[४]

महाभारत के आदि पर्व में शकुन्तलोपाख्यान में शकुन्तला की मेनका अप्सरा से उत्पत्ति के सन्दर्भ में प्रमुख छह अप्सराओं की गणना की गई है।

उर्वशी, पूर्वचिति, सहजन्या, मेनका, विश्वाची और घृताची।[५] इनमें से उर्वशी का आख्यान राजा पुरूरवा से और मेनका का आख्यान विश्वामित्र से जुड़ा है और इन दो आख्यानों को आधार बनाकर संस्कृत के महाकवि कालिदास ने 'विक्रमोर्वशीय्' और 'शाकुन्तलम्' नामक नाटकों की रचना की है।

आदि पर्व में ही अर्जुन के जन्म प्रसंग पर अप्सराओं के द्वारा उपस्थित होकर नृत्य करने का वर्णन मिलता है। वहाँ २८ अप्सराओं का नाम मिलता है और उनमें उर्वशी सहित ग्यारह अप्सराओं को प्रमुख अप्सराओं में परिगणित किया गया है।[६]

महाभारत के ही शान्तिपर्व में उल्लेख है कि व्यासपुत्र शुकदेव जी के ऊर्ध्वगमन (परमपद की प्राप्ति) प्रसंग में जब वे मलय पर्वत पर पहुँच गए तो वहां उर्वशी और पूर्वचिति नामक अप्सराएं थीं जो वहीं सदा निवास करती हैं।

श्रीमद्भागवत पुराण में भी दस विध सृष्टि की उत्पत्ति में से देवसर्ग को अष्टविध बताया गया है, जिसमें अप्सराओं की भी गणना की गई है।

१- माडर्न इण्डिया एण्ड द वेस्ट- ओ० मेले- पृ० ४५६
२- ऋग्वेद -१०-९५
३- शतपथ ब्राह्मण -११,५,१
४- अथर्ववेद - ४-३७
५- महाभारत - आदिपर्व - ७४/६८
६- वही- आदिपर्व- १२२/६०-६६

देवता, पितर, असुर, गन्धर्व-अप्सरा, यक्ष-राक्षस, सिद्ध, चारण-विद्याधर, भूत-प्रेत, पिशाच और किन्नर- किम्पुरूष अश्वमुख आदि।[1]

अप्सराओं को ब्रहम लोक में नृत्य करते या इन्द्रलोक में इन्द्र की सेवा में रहते चित्रित किया गया है। वे देवताओं का नृत्य आदि से मनोरंजन करती तथा देवताओं के विशेषकर इन्द्र के, इन्द्रपद की रक्षा के लिए ऋषियों, मुनियों तथा राजाओं आदि को भी मोहित करती तथा तपभ्रष्ट करती अनेक पुराणों में चित्रित की गई हैं। कहतें हैं कि ब्रहमलोक एवं स्वर्गलोक में देवताओं का मनोरंजन करती इन देवांगनाओं की तरह ही धरती के देवताओं के लिए उनके देव मन्दिरों में देवकन्याओं की व्यवस्था की गई। किन्तु प्रारम्भ में इसका चाहे जो भी उद्‌देश्य रहा हो कालान्तर में जबरन देवदासी बनाने या उपेक्षिताओं, अनाश्रितों या बाल विधवाओं को भी देवकन्या या देवदासी की कोटि में देवमन्दिरों में प्रवेश कराया जाने लगा और उनका घोर दुरूपयोग भी किया जाने लगा।

वेश्यावृत्ति :-

दूसरी ओर पृथ्वी पर ईश्वर के प्रतिनिधि बने राजाओं ने भी अपने मनोरंजन के लिए नर्तकियों की अन्तःपुरों तक में प्रविष्टि करा ली और उन्हें स्थायी संरक्षण देकर उनका वेश्याओं की तरह भी खूब उपभोग किया। इसी तरह के बड़े-बड़े गणों या नगरों में श्रेष्ठिजनों ने भी अपने आमोद-प्रमोद के लिए नर्तकियों की व्यवस्था की और उन्हें सरंक्षण दिया। इस प्रकार गणिकाएं समाज में प्रवेश कर गयीं और सामान्य जन (सभी) द्वारा उपभोग की जाने के कारण 'सामान्या' भी कहलानें लगी। इस प्रकार देवस्थानों में देवदासी या देवकन्या के रूप में और नगर में नगरवधू या रूपाजीवा के रूप में वेश्याएँ स्थापित हो गयीं।

वेदों में वेश्याओं के अस्तित्व का कोई उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु कामसूत्र में वेश्याओं का पूरा एक स्वतन्त्र अधिकरण (खण्ड) ही है। अर्थशास्त्र[2] में तो राज्य द्वारा वेश्याओं की सुरक्षा एवं निरीक्षण करने का भी उल्लेख है। इस कार्य के अधिकारी को गणिकाध्यक्ष कहा जाता था जो न केवल महलों की गणिकाओं की देखभाल एवं निरीक्षण के लिए उत्तरदायी था बल्कि नगर के वेश्यालयों का भी निरीक्षण करता था तथा प्रत्येक मास प्रत्येक वेश्या से दो दिनों की आय राज कर के रूप में वसूल करता। इतना ही नहीं, गणिकाओं के शिक्षकों तथा प्रशिक्षकों को राजाश्रय प्राप्त था। वेश्याओं की चोरी, धूर्तो, जादूगरों, कलाबाजों आदि से रक्षा की भी व्यवस्था राज्य करता था तथा उन्हें गुप्त राजकीय कार्यो में भी नियुक्त करता था।।

दूसरी ओर धार्मिक वेश्वावृत्ति या देवकन्या एवं देवदासी का सर्वप्रथम लिखित उल्लेख विंध्य पर्वतमाला के रामगढ़ की गुफा में दो प्राकृत शिलालेखों में मिलता है जो सम्राट अशोक के बहुत बाद के नही प्रतीत होते। इसमें से एक में देवादीन नामक चित्रकार के सुतनुका नामक देवदासी के प्रेम में फंसने का उल्लेख है।[3] इस प्रकार बौद्ध काल के पूर्व किसी देवदासी प्रथा का उल्लेख नहीं मिलता। यह प्रथा मध्य युग में प्रचलित हुई और वह भी दक्षिण भारत के देव मन्दिरों में और तब से अभी कुछ पहले तक चलती रहीं जहां देवदासियों के लिए मन्दिरों के साथ ही वास स्थान भी बनाए जाते रहे और उसे गर्हित नहीं माना गया यद्यपि स्मृतिकारों ने विशेषकर मनुस्मृति ने वेश्याओं के सम्पर्क से होने वाले पापों के कठोर प्रायश्चित की व्यवस्था की। गौतम स्मृति ने तो वेश्या के हत्यारे को कोई पाप न लगने तथा कोई दण्ड न दिए जाने की भी व्यवस्था की।[4]

वेश्यावृत्ति पर विचार करते हुए परिपूर्णानन्द वर्मा ने लिखा है - 'वासना की महत्ता को स्वीकार करके ही मानव समाज ने एक ओर सदाचार का मन्त्र दिया, दूसरी ओर वेश्या की भी रचना कर दी'।[5] पाश्चात्य देशों में तो वेश्यावृत्ति बहुत

१- श्री मद्‌भागवत- ३/१०- श्लोक
२- अर्थशास्त्र - २/२७
३- आर्केलाजिकल सर्वे आव् इण्डिया- ए वार्षिक रिपोर्ट - १६०३-४- पृ० १२२
४- गौतम स्मृति - २२/२७
५- पतन की परिभाषा- परिपूर्णानन्द वर्मा - पृ० ८६

ही प्राचीन काल से प्रचलित थी क्योंकि ग्रीक एवं रोमन साहित्य में उनका बार-बार उल्लेख मिलता है। मध्ययुग तक तो योरोप में वेश्यावृत्ति अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच चुकी थी तथा धर्म स्थान उसका केन्द्र बन गए थे। अंग्रेजी के कवि विलियम ब्लेक ने लिखा है - 'धर्म, वास्तव में काम का विकृत रूप था। कानून के पत्थरों से बन्दीगृह बने थे, धर्म के पत्थरों से वेश्यागृह।'[1]

भारत में यद्यपि स्वच्छन्द यौनाचार को अनेक प्रकार से बांधने का प्रयास किया गया तथापि उसके अनेकानेक मार्ग निकलते रहे। फिर भी भारत में पाश्चात्य देशों की अपेक्षा स्वछन्द यौनाचार पर पर्याप्त नियन्त्रण आज भी विद्यमान है।

डॉ० ओम प्रकाश वर्मा ने आधुनिक युग में यौन- अपराधों पर विचार करते हुए लिखा है -

'किन्तु धर्म और नैतिकता, संयम और शालीनता के उपदेश क्या मनुष्य को पशु-वृत्ति पर पूर्ण नियन्त्रण कर पाये हैं? क्या आधुनिक समाज के सभ्य, शिक्षित और बुद्धिवादी मानस का स्वभाव बदल गया है? क्या आज भी अधिकांश पुरूष नित्य नई नारी के उपभोग के उत्सुक नहीं है ? और क्या आज की नारी अपने अर्द्ध नग्न शरीर, आकर्षक साज- श्रृंगार मोहक नाज-नखरे आदि से अनेकों राह चलते पुरूषों की दृष्टि और स्पर्श की लालसा से आतुर दिखाई नहीं देती ? युग के साथ आचरण के नियम बदल जाते हैं और इन नियमों के सन्दर्भ में ही यौन सन्तुष्टि की नई-नई विधाएं भी जन्म लेती है।। वायु के प्रवाह की दिशा बदल जाती है, उसे बांधा नही जाता। काम का वेग, यौन तृप्ति की उत्कण्ठा आज भी उसी प्रकार जीवित है जिस प्रकार वह प्राचीन तथा मध्य युगीन मानव में थी। सत्य तो यह है कि पहले यौन सन्तुष्टि अधिक थी, आज यौन उत्तेजना अधिक है। यौन व्यवहार के सभी स्वरूपों की अभिव्यक्ति पहले की भांति आज भी होती है किन्तु पहले कानूनों के अभाव में उनमें से अधिकांश मान्य, सहज और स्वीकृत थे जबकि आज प्रतिबन्धों के प्रभाव से उनमें से अधिकांश अशोभनीय, दण्डनीय और अपराध है।'[2]

नारी को समानता एवं सम्मान का स्थान प्राप्त होने में सबसे अधिक बाधक तत्व यौन अपराध हैं। इसलिए यौन अपराधों के कारणों पर भी दृष्टि डालना आवश्यक है। यह इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि नारी की सामाजिक चेतना प्रमुखतः इसी यौन अपराध के विरूद्ध संघर्ष करने से सम्बन्धित है।

काम वासना मानव की सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति है। स्त्री- पुरूष का परस्पर आकर्षण प्रबल होता है। उसका उद्दाम वेग नियन्त्रण न किया जाय तो वह कष्टकारक, पीड़ादायक तथा घातक होता है। इसके लिए किसी एक पक्ष को दोषी नही माना जा सकता। हमारे पुरूष प्रधान समाज में यौन विकृतियों के लिए या यौन भावना की प्रबलता के लिए नारी को दोषी माना जाता है किन्तु वस्तुतः यह ठीक नहीं है। नारी सृष्टि क्रम की व्यवस्था को बनाये रखने के लिए प्राकृतिक रूप से व्यग्र होती है किन्तु पुरूष दैहिक सुख के लिए व्यग्र रहता है। इसलिए उसमें चंचलता, चपलता एवं चतुरता प्रबल रहती है और प्राकृतिक प्रतिबन्धों को तोड़ने की प्रवृत्ति भी प्रबल रहती है। नारी के साथ अनेक बन्धन प्रकृति प्रदत्त हैं, शारीरिक बन्धन हैं, सामाजिक बन्धन है। पुरूष इनमें से कुछ से मुक्त रहता है और कुछ से स्वयं को निर्लज्जता पूर्वक मुक्त कर लेता है।

नारी का भूषण लज्जा है, पुरूष लज्जा का परित्याग भी करता है और निर्ल्लज बनने में गौरव अनुभव करता है। नारी शील संकोच से दबी रहती हैं, पुरूष को इनकी यत्किंचित् भी चिन्ता नही रहती। पुरूष कई बार गर्भाधान जैसे उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य के प्रति बहुत अनुत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार करता है जबकि नारी को गर्भ के सम्बर्द्धन, संरक्षण से लेकर प्रजनन, पालन-पोषण में अत्यधिक कष्ट उठाना पड़ता है यहां तक कि प्राण तक त्याग करना पड़ता है। यौन दुराचारों में भी पुरूष को अभियोक्ता माना गया है- वहीं सर्वप्रथम दुराचार की ओर प्रवृत्त होता है। यही बात राजा अश्वपति के प्राचीन आख्यान में इस श्लोक द्वारा की गई है-

---

१- पतन की परिभाषा- परिपूर्णा नन्द वर्मा - पृ० -६

२- अपराध शास्त्र- डा० ओम प्रकाश वर्मा - पृ० - १३५

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः ।
नानाहिताग्निा विद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

लौकिक व्यवहार में भी माताएं, बहुओं, बेटियों को शालीनता से उठने- बैठने, चलने- फिरने तथा बातचीत करने की शिक्षा पदे-पदे देती हैं। पुरूष इससे अपने अहं की सन्तुष्टि तथा वर्चस्व की प्रतिष्ठा समझता है किन्तु प्रकारान्तर से यह उस पर उच्छृंखल होने, अनियन्त्रित होने का खुला आरोप ही है। उसे पूरी तरह अविश्वसनीय माना जाता है। वैसे तो नीति शास्त्र स्त्री का विश्वास न करने की बात कहते हैं - 'विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च।' किन्तु अविश्वसनीय सदैव पुरूष ही सिद्ध होता है। अपने वर्चस्व के बल पर वह अनेक प्रकार के यौन अपराधों को कर सकने का दुस्साहस करता है क्योंकि उनसे वह बच निकलने का रास्ता पा जाता है। स्त्री के लिए यह अनेक कारणों से सम्भव नहीं हो पाता। आधुनिक युग का विवेक शीलता एवं तर्क संगतता का दावा करने वाला मानव यौन अपराधों में प्रवृत होते समय उनको भुला देता है।

इन यौन अपराधों में वेश्यावृत्ति सबसे प्राचीन एवं सबसे व्यापक यौन, अपराध है। सुप्रसिद्ध अपराध शास्त्र टैफ्ट ने पुरस्कार और यौन स्वच्छन्दता को वेश्यावृत्ति में महत्वपूर्ण तत्व माना है।[1] पुरूष आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होने के कारण तथा स्त्री के उतने ही आर्थिक रूप से परावलम्बी होने के कारण धन के बल पर वेश्यावृत्ति प्रारम्भ होना स्वाभाविक था। किन्तु आज जब कि अर्थ के मामले में महिलाएं भी स्वावलम्बी हो रही हैं वे पुरूषों को वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य कर सकती हैं। इसलिए वेश्यावृत्ति अब केवल पुरूषों का ही एकाधिकार नहीं रहा गया। इसलिए जी० आर० स्काट ने वेश्यावृत्ति की आधुनिक परिभाषा देते हुए लिखा है-

'एक व्यक्ति (नर अथवा नारी) जो किसी प्रकार के पुरस्कार (धन अथवा कुछ और) के लिए अथवा किसी अन्य प्रकार की व्यक्तिगत तृप्ति के लिए, पूर्ण या आंशिक व्यवसाय के रूप में समलिंगी या विषम लिंगी अनेक व्यक्तियों के साथ सामान्य अथवा असामान्य यौन संसर्गो में प्रवृत्त होता है, वेश्या है।[2]

डॉ० बेन रीट मैन ने वेश्याओं के ग्यारह प्रकार बताए हैं -

बाल वेश्या, सम्भावित वेश्या, शौकीन वेश्या, नई वेश्या, पुरानी वेश्या, चलती-फिरती वेश्या, वृद्ध या अनुपयोगी वेश्या, चौराहे की वेश्या, रखैल स्त्री, भ्रष्ट विवाहित स्त्री तथा कालगर्ल।[3] टैफ्ट ने इनमें से काल गर्ल्स को सबसे मँहगी और सम्मानित वेश्या कहा है।[4] आज कल प्रायः तीन प्रकार की वेश्या होती हैं - (१) संगठित अड्डो पर कार्य करने वाली जिनका व्यवसाय, धन तथा उपयोग अड्डे के मालिकों के हाथ में रहता है। (२) स्वतन्त्र रूप से व्यवसाय चलाने वाली वेश्याएँ, (३) पूर्णरूप से वेश्या न होकर पारिवारिक जीवन में रहते हुए आर्थिक लाभ के लिए चोरी- छिपे शरीर बेच देने वाली।

जहां तक नारी के वेश्यावृत्ति में फंसने का प्रश्न है - वह एक तो पुरूष के उद्दाम काम वेग के कारण या स्त्री की आर्थिक परिस्थिति के कारण ही प्रधानतः होता है।

परिपूर्णानन्द वर्मा ने[5] पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार स्त्री के वेश्यावृत्ति अपनाने के निम्नलिखित कारण माने हैं -

(१) जीविका के लिए, (२) अर्थोपार्जन के लिए अधिक परिश्रम से बचने के लिए तथा कम आय वाले कार्य से बचने के लिए (३) परिवार से बुरा व्यवहार मिलने या परिवार में बुरा वातावरण होने के कारण (४) गन्दी बस्तियों में अनियन्त्रित और

१- क्रिमिनोलाजी - टैफ्ट पृ० २५०
२- हिस्ट्री आव प्रोस्टीटयूशन - जी० आर० स्काट - पृ-८
३- न्यू होरीजन्स इन क्रिमिनोलाजी - बार्न्स एण्ड बीनर्स से उद्धृत - पृ० -१५
४- क्रिमिनोलाजी - डी० आर० टैफ्ट - पृ० २५७
५- पतन की परिभाषा - परिपूर्णा नन्द वर्मा - पृ० - ५०

अशिष्ट जीवन बिताने के कारण (५) बड़े समुदायों में रहने के कारण भले- बुरे के बीच फंस जाने के कारण (६) धन सम्पन्न लोगों के भोग विलास तथा ऐश- आराम तथा आनन्द का उपभोग करने की लालसा के कारण, भ्रष्ट साहित्य या भ्रष्ट मनोरंजन के कारण, पुरूषों के प्रलोभन तथा दलालों के दबाव के कारण।

आधुनिक युग में निर्धनता के कारण, शान- शौकत या फैशन परस्ती के कारण, असहाय स्थिति के कारण, पुरूषों के अधीन नौकरी आदि करने के कारण वेश्यावृत्ति पनपती है। साथ ही नारियों की स्वतन्त्रता, उच्छंखलता भी वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहित करती है। उनमें असाधारण कामुकता, मन्दबुद्धि , भोलापन, अयोग्य या क्रूर पति या पति का वियोग भी वेश्यावृत्ति को बढ़ावा देता है। किसी भी कारण से विवाह न कर पाने वाले या पत्नी से दूर परदेश में रहने वाले या किसी भी कारण से पत्नी से दूर रहने वाले वेश्यावृत्ति बढ़ाते हैं। साथ ही विविधत्व की इच्छा भी, चाहे वह पुरूष में हो या स्त्री में, वेश्यावृत्ति में प्रवृत्त करती है। कन्वनर ने लिखा है- 'स्वभाव से ही पुरूष बहुस्त्री प्रेमी पशु है। यदि उसकी भागती हुई इच्छाओं की पूर्ति का साधन सीधे- सीधे न प्राप्त होगा तो वह गुप्त रूप से उन्हें पूरा करेगा।'[१] बर्नेस एण्ड टीटर्स ने किन्से रिपोर्ट को उद्धृत करते हुए लिखा है - 'यह विवाह करने या किसी लड़की का खर्च बर्दाश्त करने की अपेक्षा काफी सस्ता है, वे अन्य जिम्मेदारियों और परेशानियों को भूल सकते हैं जैसे गर्भ ठहरने का भय।'[२]

आधुनिक समानता एवं स्वतन्त्रता के युग में जब मानव स्वयं को विवेकशील एवं तर्कसंगत होने का दम्भ करता है, वेश्यावृत्ति बन्द होने के स्थान पर एक संगठित, संस्थागत अपराध बन गया है। टैफ्ट के शब्दों में - 'जुआं, मादक द्रव्य तथा अवैध शराब के व्यापार के साथ- साथ वेश्यावृत्ति का बहुत बड़ा भाग संगठित, संस्थागत अपराध की एक शाखा बन गई है।'[३] बार्नेस तथा टीटर्स का यह कथन बहुत सारगर्भित है कि 'वास्तव में वेश्यावृत्ति व्यवसाय को जन्म देने वाले कारकों पर आक्रमण करके इसके स्त्रोतों को सुखाने का प्रत्येक प्रयत्न करना चाहिए।'[४]

यौन शोषण :-

यौन शोषण का सबसे भयंकर रूप बलात्कार है। इसमें पुरूष की अनियन्त्रित, अनुचित काम वासना या मानसिक विकृति और नारी की विवशता, असहायावस्था ही प्रमुख कारण बनता है। पुरूष और नारी की काम वासना में नारी को भले ही अधिक प्रबल माना जाता हो किन्तु उसकी काम वासना को आसानी से उभारा नहीं जा सकता क्योंकि प्रकृति ने उस पर गर्भ धारण के साथ ही गर्भ के पोषण- पालन आदि का गुरूतर भार भी डाल रखा है। नारी में शील- संकोच, लज्जा आदि प्राकृतिक गुण के साथ ही वासना की तीव्रता को दबाने की अद्भुत शक्ति होती है। अतः न तो वह सहवास के लिए पहल कर सकती है न जोर जबरदस्ती। इसलिए आज भी बलात्कार का दोषी केवल पुरूष वर्ग ही माना जाता है। नारी इस मामले में सचमुच ही अबला है। बलात्कार उसके वश का नहीं। इसलिए किसी अबला की ओर से बलात्कार किए जाने का समाचार सचमुच ही 'न्यूज' बन जाता है। बलात्कार निकट सम्बन्धियों द्वारा भी किया जाता है और अजनबी व्यक्तियों द्वारा। परिवार के ही लोग असहाय स्थिति या असमर्थता का तथा लोक लज्जा का अनुचित लाभ उठाकर निकट सम्बन्धियों में बड़ी सरलता से बलात्कार कर लेते हैं। यौन उत्पीड़न के इन दुष्कर्मो के लिए उन्हें बार- बार अवसर भी मिलता रहता है। इसके विपरीत अजनबी द्वारा किया गया बलात्कार अनुकूल परिस्थिति में ही बलात्कारी द्वारा किया जा पाता है। उसके पुनः बलात्कार कर सकने की सम्भावनाएं क्षीण रहती हैं उसके समक्ष हर प्रकार का संकट भी उपस्थित रहता है परन्तु वह काम वेग के कारण उस सबकी बिना कोई परवाह किए बलात्कार में प्रवृत्त होता है। जोर- जबरदस्ती से या डरा -धमका कर किसी भी प्रकार किया गया बलात्कार सम्पूर्ण जीवन बर्बाद कर देता है और उसकी कोई क्षति पूर्ति नहीं की जा सकती। वह सीधे मृत्यु का वरण कराता है- चाहे बलात्कार से पीड़ित महिला तत्काल आत्महत्या आदि द्वारा प्राण त्याग दे या सारे जीवन आत्महनन की प्रचण्ड अग्नि में जल-जल कर मरे। परन्तु बलात्कारी इतना क्रूर एवं राक्षसी प्रवृत्ति का हो जाता है कि वह किसी प्रकार भी नहीं रुकता।

१- पतन की परिभाषा- परिपूर्णा नन्द वर्मा द्वारा उद्धृत - पृ० - ८४-८५
२- न्यू होरीजोन्स इन क्रिमिनोलाजी - बार्नेस एण्ड टीटर्स - पृ०- ६५
३- क्रिमिनोलाजी - डी० आर० टैफ्ट - पृ०- २५३
४- न्यू होरीजोन्स इन क्रिमिनोलाजी - बार्नेस एण्ड टीटर्स - पृ० - ६६

बलात्कार बालाओं से लेकर वृद्धाओं तक से तथा अविवाहितों से लेकर विवाहितों और विधवाओं तक से काम वासना की उग्रता के कारण या प्रतिशोध की भावना आदि से किया जाता है। हर स्थिति में यह निरीह नारी की हत्या से भी जघन्य अपराध है और किसी भी प्रकार क्षम्य नहीं है।

यौन शोषण के अन्य प्रकार जबरन न होकर भी बाध्यकारी बन जाते हैं क्योंकि उसमें आर्थिक, सामाजिक एवं शारीरिक असमर्थता का या परिस्थिति जन्य असमर्थता का प्रतिपक्षी भरपूर नाजायज फायदा उठाता है। हर स्थिति में नारी को शोषण का शिकार होना पड़ता है। आज के काम प्रधान एवं अर्थ प्रधान युग में यह जरूरी नहीं रह गया कि नारी का शोषण बाहर निकलने या पुरूषों की बराबरी करने के कारण ही हो, घर में रहने वाली एवं परिवार के प्रतिबन्धों में रहने वाली नारी भी यौन शोषण का शिकार हो जाती है विशेषकर तब जब उपर्युक्त प्रकार की शारीरिक, आर्थिक एवं सामाजिक असमर्थताएं उसके साथ जुड़ी हों।

शिक्षा के प्रसार के साथ तथा समाज में समान आधार पर जीवन जी सकने के अधिकार के साथ यौन उत्पीड़न में विशेषकर जबरन यौन उत्पीड़न में पर्याप्त कमी आई है। अब यौन उत्पीड़न, मूर्खतावश, लोभवश, आकर्षणवश या अन्य इसी प्रकार के कारणों से ही अधिक होता है। नारी में यौन उत्पीड़न के प्रति परिवार में, समाज में और अपने कार्यक्षेत्र में भी प्रतिरोध करने की क्षमता एवं शक्ति बढ़ती है। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा के प्रसार के साथ तथा समानता के अधिकार के प्रति जागरूकता के प्रश्चात् वह श्रृंगार, वस्त्राभूषण तथा फैशन आदि के प्रलोभनों से दूर रहे तथा पुरूषों को आकर्षित करने वाले किसी भी क्रिया कलाप या वेश भूषा या बनाव-श्रृंगार को अपनी विजय न मान कर अपना अपमान माने। वह इस भ्रम में न पड़े कि वह पुरूष को कठपुतली की तरह नचा सकती हैं क्योंकि ऐसा करते हुए उसके स्वयं के कठपुतली बन जाने का खतरा बना रहता है। वस्तुतः साम्य स्थिति तथा सौम्य स्थिति तो तभी सम्भव है जब एक ओर न पुरूष स्त्री को कठपुतली की तरह नचाए न स्त्री स्वयं कठपुतली बने और दूसरी ओर न स्त्री पुरूष को कठपुतली बनाने का कुत्सित प्रयास करे। सौमनस्य की स्थिति तथा समता की स्थिति तथा सम्मान की स्थिति तभी सम्भव हो सकती है।

कुप्रथाओं आदि से पीड़ित नारी की सामाजिक स्थिति एवं नारी चेतना की भूमिका :-

ऊपर उन कुछ कुप्रथाओं एवं कुरीतियों का उल्लेख किया गया है जिनके कारण नारी का जीवन अभिशाप बन कर रह गया था और उसे किसी भी प्रकार का कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं था। नारी पर्दे में रहकर परिवार प्रतिकर में रहकर कुप्रथाओं और कुपरम्पराओं से पीड़ित थी। उसके पुनरूद्धार का प्रयास आकाश- पुष्प की भाँति असम्भव कार्य प्रतीत होता था। परन्तु पुरुष वर्ग में जब अपने लिए समानता, स्वतन्त्रता का भाव जागृत हुआ तब उसने नारी के लिए भी समानता एवं स्वतन्त्रता की बात सोचना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार नारी को बन्धन में डाले रखने वाले पुरूष वर्ग ने ही नारी के लिए समानता एवं स्वतन्त्रता का द्वार खोला क्योंकि उसके बिना समानता एवं स्वतन्त्रता की अवधारणा खोखली एवं अधूरी रहती।

वेश्यावृत्ति उन्मूलन में साहित्य का योगदान :-

भारतीय समाज सुधार आन्दोलन की एक विचित्र बात यह रही कि नारी कल्याण से जुड़ी अनेक समस्याओं की ओर समाज सुधारकों का ध्यान तो गया और उनके लिए अनेक मार्ग सुझाये तथा अपनाए गए किन्तु नारी के वेश्या रूप पर उनका ध्यान केन्द्रित नहीं हुआ। सम्भवतः उन्हें समाज से बाहर माना गया और समाज को ही केन्द्र में रखा गया। इसलिए स्वभावतः साहित्य में भी उसके प्रति विशेष झुकाव नहीं दिखायी दिया। बंगला साहित्य में भी वेश्यावृत्ति के विरूद्ध, सशक्त लेखनी शरद् चन्द्र चटर्जी से पूर्व नहीं उठायी जा सकी। इस दिशा में शरद् चन्द्र चटर्जी के अभूतपूर्व योगदान की आगे यथा स्थान चर्चा की जायेगी।

प्रारम्भिक हिन्दी कथा साहित्य में भी वेश्यावृत्ति पर प्रहार नहीं किया गया। कुछ उपन्यासकारों ने वेश्यावृत्ति को अपने उपन्यासों का विषय बनाया किन्तु उन्होंने वेश्यावृत्ति की समाप्ति के स्थान पर उलटे उसकों समाज के लिए उपयोगी माना।

किन्तु स्वतन्त्रता के बाद वेश्यावृत्ति उन्मूलन के लिए अनेक योजनाएं शासकीय स्तर पर बनायी गयी और प्राचीन काल से न केवल चली आ रही बल्कि प्रतिष्ठा प्राप्त इस वेश्यावृत्ति पर अनेक प्रकार के अंकुश लगाने तथा उन्मूलन करने के प्रयास किए गए। डा० सन्त बख्श के अनुसार ' स्वतन्त्रता के बाद कार्यान्वित होने वाली अनेक योजनओं में वेश्यावृत्ति उन्मूलन को सबसे पहले लिया जा सकता है। भारतीय इतिहास में यों तो प्राचीन समय से ही वेश्यावृत्ति के संकेत मिलते हैं किन्तु विशेषकर मध्यकाल में वेश्या प्रथा निरन्तर बढ़ती गई। वेश्या प्रथा के मूल में जहां एक ओर जीविका की विवशता है, वहीं दूसरी ओर भारतीय व्यक्तियों की मध्यकालीन विचार रुढ़ियां भी हैं जिसमें स्त्री को पुरूष की कुछ सतही एवं ऊपरी इच्छाओं का पूरक माना गया है। स्वातन्त्रोत्तर भारत के व्यवस्थापकों ने इस बात की तीव्र आवश्यकता महसूस की कि स्त्री विषयक इस मध्य कालीन समान्ती सांस्कारिता को समाप्त करके उसे पुरूष के समान अधिकार दिए जाने चाहिए, किन्तु आधुनिक भारत का यह दुर्भाग्य ही रहा कि जहां उसने, एक ओर सिद्धांत के स्तर पर इतने ऊंचे आदर्श रखे, वही व्यवहार के स्तर पर वह उन सुविधाओं को न दे पाया जिनके माध्यम से वेश्याओं का यह विशाल वर्ग उन्नति कर पाता तथा अपने पिछले जीवन से उच्चतर आदर्श को व्यावहारिक रूप दे पाता। कुछ क्षेत्रों में वेश्याओं के इस वर्ग को वे साधन भी दिए गए जिनके आधार पर वे श्रेष्ठ और सामाजिक जीवन व्यतीत कर सकतीं, किन्तु ये साधन इस विशाल वर्ग के लिए इतने कम थे कि उनके माध्यम से आमूल उन्मूलन सम्भव नहीं था।''

वस्तुतः भारत जैसे देश में वेश्यावृत्ति के लिए बहुत अवसर नहीं था और वह केवल कुछ बिगड़े अमीरों या राज-परिवारों के सदस्यों तक सीमित था। वेश्यावृत्ति का यह रोग सामान्य जनता को कभी ग्रस्त नही कर पाया था। सामन्ती युग की ही एक विकृति के रूप में वेश्यावृत्ति पनपी जिसका प्रभाव संस्कृत की कुछ रचनाओं में उपलब्ध होता है। इन कथानकों में चोरो और नशाखोरों, जुंआरियों और लम्पटो का वर्णन और उनका वेश्यावृत्ति से जुड़ना वर्णित है। यह एब भी नगरीय संसकृति का दुष्प्रभाव था। यह नगरीय संस्कृति मौर्य राजाओं के काल तक विस्तार पा चुकी थी और उसके दुर्गुण भी उभर चुके थे। सम्भवतः इसी कारण आचार्य कौटिल्य ने किसी नगर के अधिक बड़ा होने का विरोध किया था। उनके अनुसार पांच लाख से अधिक आबादी का महानगर नहीं होना चाहिए। आधुनिक वैज्ञानिक युग के आवागमन के साधनों तथा विकसित प्रौद्योगिकी के अभाव में उस युग में पांच लाख की आबादी के एकत्रित समुदाय को सम्हाल पाना भी विकट समस्या थी। उसमें सबसे बड़ी बाधा पारस्परिक अन्तर्व्यवहार के क्षेत्र में आती थी जिसमें हर व्यक्ति एक दूसरे से अजनबी सा बनता चला जाता है और किसी को किसी से कोई मतलब नहीं रहता है। इस प्रकार सामाजिक नियन्त्रण ढीला पड़ता जाता है और वेश्यावृत्ति जैसी प्रवृत्तियां पनपने लगती हैं। इसके विपरीत ग्रामीण परिवेश में सीमित परिवारों के कारण इस प्रकार के अवांछनीय व्यवसाय के पनपने की न तो आवश्यकता रहती है न अवसर। बड़े नगरों में परिवार से अलग एकाकी जीवन व्यतीत करने वाले या परिवार और समाज के नियन्त्रण से बच निकल सकने वाले लोग वेश्यावृत्ति की ओर सरलता एवं सहजता से उन्मुख हो जाते हैं। व्यवसाय और रोजगार के लिए स्थान-स्थान से भटकते रहने वाले लोग भटियार- खानों, सरायों, धर्मशालाओं आदि में ठहरते तथा भोजन एवं आवास की सुविधा का उपभोग करते थे। वहीं उन्हें आमोद- प्रमोद के अन्य साधन भी उपलब्ध हो जाते थे। इन साध्नों में उनकी कामेच्छा पूर्ति के साधसन भी सम्मिलित थे।

भारत में दूर-- दूर तक वाणिज्य करने वाले बड़े - बड़े काफिलों के साथ वेश्याएं साथ- साथ चलने लगीं थी। छोटे छोटे कस्बों (अरबी भाषा के इस शब्द का अर्थ है- शहर से छोटी और गांव से बड़ी बस्ती) में कस्ब (वेश्यावृत्ति) को अपनाने वाली कस्बी (वेश्या या गणिका) उपलब्ध होना आम बात थी।

हिन्दी साहित्य में हिन्दी कहानी से बहुत पूर्व हिन्दी उपन्यास लिखा जाना प्रारम्भ हो गया था। हिन्दी उपन्यासों पर भी बंगला का प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है जहां अंग्रेजी उपन्यास की अनुकृति पर बंगला उपन्यास तेजी से लिखे जा रहे थे। हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास के रूप में लाला श्रीनिवास दास के परीक्षा गुरू को गौरव पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त है। संयोग से इस उपन्यास में दो क्रान्तिकारी पक्ष उभर कर सामने आए हैं' एक तो यह कि इसमें राजा- महाराजाओं या सम्पन्न व्यक्तियों या वीर पात्रों के स्थान पर नगर जीवन के सामान्य जनों को कथा का मुख्य पात्र बनाकर उनका चित्रण हुआ है और दूसरे यह कि उनमें वेश्याओं को भी केन्द्र बिन्दु बनाया है यद्यपि ऐसा करने में उनका दृष्टिकोण भिन्न रहा है। संस्कृत की रचनाओं

१- नई कहानी : कथा और शिल्प - डा० सन्त बख्श सिंह - पृ० ४०- ४१

में भी पूर्व काल में उदात्त चरित्रों का ही वर्णन मिलता था किन्तु शूद्रक रचित मृच्छकटिकम् से पात्रों को सामान्य जनों से चयन करने की प्रवृत्ति चल पड़ी।

हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास परीक्षा गुरू (श्री निवासदास) के पात्र भी संस्कृत के शूद्रक लिखित मृच्छकटिक् नाटक के पात्रों की तरह न तो राजा- महाराजा हैं न उच्च कुल उत्पन्न व्यक्ति बल्कि सर्व सामान्य जन हैं - वह सर्व सामान्य जन जो आधुनिक युग का सूत्रधार बनने को था। शूद्रक ने तो अपने नाटक में वेश्या के उदात्त चरित्र का चित्रण कर उसे नायिका के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था किन्तु हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरू' में वेश्यावृत्ति के दुष्परिणामों को उजागर कर उससे बचने का उपदेश दिया गया है।

डॉ० चण्डी प्रसाद जोशी ने लिखा है -

'हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरू' नये युग का संकेत देता है। उपन्यास के पात्र न राजा- महाराजा और न भारतीय किसान हैं, वरन दिल्ली शहर के मध्य वर्गीय पात्र हैं । यह आकर्षक तथ्य है कि जो वर्ग आधुनिक युग का सूत्रधार बनने को था, उसी को केन्द्र में रखकर हिन्दी के प्रथम उपन्यास की कथा रची गई। ----------सेठ मदन मोहन कुछ कुत्सित मित्रों के साथ भोग विलास एवं वेश्यावृत्ति में धन गवां रहा है। चरित्र भ्रष्ट नायक मदन मोहन के साथ श्री निवासदास जी की सहानुभूति है। सारा दोष चुन्नी लाल, शम्भूनाथ तथा बैजनाथ जैसे चरित्रभ्रष्ट मित्रों का है जिनकी संगत के कारण मदन मोहन पथ भ्रष्ट हो रहा है। ऐसा लगता है कि लेखक स्वयं दुख अनुभव कर रहा है कि एक सेठ धन गंवाकर निर्धन होता जा रहा है। श्रीनिवासदास का यह उपयोगितावादी दृष्टिकोण मध्यवर्गीय मनोवृत्ति का द्योतक है। उनकी दृष्टि में वेश्या तथा मित्र दोषी हैं, जिनके कारण मदन मोहन धन सम्पत्ति से वंचित हो रहा है।'[1]

इतना ही नहीं लज्जा राम मेहता तो 'आदर्श हिन्दू' में न केवल वेश्या जीवन और वेश्या जाति के प्रति घृणा प्रदर्शित करते हैं, बल्कि दूसरी ओर उसे एक सामाजिक आवश्यकता के रूप में भी स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं -

'नहीं आप मेरा मतलब समझे नहीं। बेशक रंडियां समाज में एक बला हैं- परन्तु इससे आप यह न समझ लीजिए कि ये समाज से निकाल देने के लायक हैं, फिजूल हैं और इन्हें बन्द कर देना चाहिए। नहीं, इनकी भी समाज के लिए दो कारणों से आवश्यकता है। एक यह कि जब गाने- बजाने और नाचने का पेशा करने वाली हमारी सोसायटी में न रहेंगी।। तब कुल बधुएं इस काम को ग्रहण करेंगी। और दूसरे 'जैसे बड़े नगरों में सड़क के निकट जगह-जगह पनाले बने हुए हैं, यदि वे न बनाए जाएं तो चित्तवृत्ति को, शरीर के विकार को न रोक सकने पर लोग बाजार और गलियों को खराब कर डालें उसी तरह यदि वेश्याएं हमारे समाज से उठा दी जायं तो घर की बहू बेटियां बिगड़ेंगी।'[2]

डॉ० चण्डी प्रसाद जोशी के अनुसार -

'एक ओर वेश्यावृत्ति का विरोध तथा वेश्याओं से घृणा प्रदर्शित करके तथा दूसरी ओर उन्हें एक सामाजिक आवश्यकता मान कर चुप रह जाना, इस अन्तर्विरोध में ही इनके (इस युग के उपन्यासकारों के) विचारों की सीमाएं परिलक्षित हो उठी हैं। वेश्या जीवन को एक समस्या के रूप में उठाकर उसके गम्भीर निदानों का संकेत तो वस्तुतः परवर्ती युगों में प्रारम्भ होता है जिसके सूत्रकर्ता प्रेमचन्द जी हैं।'[3]

डा० सन्त बख्श सिंह ने प्रेमचन्दोत्तर कहानीकारों की वेश्यावृत्ति के प्रति धारणाओं का विवेचन करते हुए लिखा है-

'प्रेमचन्दोत्तर कहानीकारों ने विशेषतः उन कहानीकारों ने जो उर्दू से हिन्दी में आए थे, वेश्याओं को लेकर अनेक

१- हिन्दी उपन्यास - समाजशास्त्रीय विवेचन - डॉ० चण्डी प्रसाद जोशी - पृ० - २८

२- आदर्श हिन्दू- भाग- ३, (लज्जा राम मेहता) - पृ० २१७-२१८-

३- हिन्दी उपन्यास - समाजशास्त्रीय विवेचन - डा० चण्डी प्रसाद जोशी - पृ० ५५

कहानियाँ लिखी। लेकिन ये कहानियां वेश्याओं के बारे में जो आधार भूत सामाजिक भरव था, जिसके आधार पर इस वर्ग का चारित्रिक विश्लेषण किया जा सकता था, ऐसा इन कहानियों के द्वारा सम्भव नहीं हो सका। यशपाल, उपेन्द्रनाथ अशक, अमृत लाल नागर तथा भगवती चरण वर्मा के इस सन्दर्भ में पर्याप्त प्रयोग मिलते हैं, किन्तु ये सारे प्रयोग उतने ही बाहयात्मक थे जितने कि सहादत हसन मण्टो, ख्वाजा अहमद अब्बास अथवा कृश्न चन्दर के।'[1]

भगवती चरण वर्मा ने तो अपनी अमर कृति 'चित्र लेखा' द्वारा हिन्दी कथा जगत में तहलका ही मचा दिया था। यद्यपि उनकी इस रचना पर अनातोले फ्रांस के उपन्यास 'ताया' की छाया मानी गयी है तथापि हिन्दी में यह एक क्रन्तिकारी रचना के रूप में प्रतिष्ठित हुई थी। आगे चलकर यशपाल, उपेन्द्र नाथ अश्क, अमृतलाल नागर, पाण्डये बेचन शर्मा 'उग्र' आदि ने भी वेश्याओं को दृष्टि में रखकर अनेक कहानियों की सर्जना की।

किन्तु यह स्थिति नये कहानीकारों में नही पायी जाती। वे बहुत कुछ आगे बढ़कर (सम्भवतः बंगला भाषा के शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे अनेक कथाकारों की रचनाओं से प्रेरणा लेकर) वेश्या समस्या के बाहरी पक्षा की अपेक्षा आन्तरिक एवं मनो वैज्ञानिक कारणों की ओर बढ़े यद्यपि कुछ कहानीकार मांसल या वासनात्मक पक्षा को उजागर कर ही अपने कृतित्व की सार्थकता समझते रहे।

परन्तु जैसा कि डा० सन्त बख्श सिंह का अभिमत है- 'नये कहानीकार ने इस (वेश्या) समस्या का अध्ययन करके वेश्या वर्ग के इस बाहरी और बहुत कुछ वासनात्मक स्वरूप के स्थूल चित्रण को अधिक महत्व देना उचित नही समझा। हालांकि इन लोगों में भी कुछ लेखकों के द्वारा ऐसी ही कहानियां लिखी गयीं। 'अणिमा' में प्रकाशित कमलेश्वर की कहानी 'मांस का दरिया' इसी प्रकार की स्थूल और स्त्री के वासनात्मक पक्ष को उभारने वाली कहानी है। आधुनिक कहानीकार ने स्त्री के इस स्वरूप को समझने की अपेक्षा इस आधार भूत स्वरूप को समझना चाहा जिसके कारर्ण कोई भी स्त्री इस प्रकार का पेशा अपनाने के लिए विवश होती है। यह सत्य है कि इस वर्ग में अधिकांश ऐसा होता है जो जीविकागत विवशताओं के आधार पर इस मजबूरी के साथ जुड़ जाता है, किन्तु थोड़े से साधन मात्र दे देने से ही स्त्री और पुरूष की इस प्राकृतिक बुभुक्षा को समाप्त नहीं किया जा सकता। इसी कारण वेश्या उन्मूलन के बाद भी भारतीय समाज में यह स्थिति खत्म नहीं हुई वरन् एक नये रूप (काल गर्ल्स, सोसायटी गर्ल्स इत्यादि) विकसित होती चली गई। नये कहानीकारों ने इसीलिए इस बात पर अधिक जोर दिया कि महत्वपूर्ण समस्या उस मनोवृत्ति को समाप्त करने की है जिसके कारण ये सामाजिक व्याध्यिां उत्पन्न होती है। मोहन राकेश (मिस पाल, सेफ्टीपिन, अपरिचित , एक और जिन्दगी, काला राजेगार) राजेन्द्र यादव (प्रतीक्षा, जहां लक्ष्मी कैद है) मन्नू भण्डारी (यही सच है, क्षय, तीन निगाहों की एक तस्वीर) रघुवीर सहाय (प्रेमिका, मेरे और नंगी औरत के बीच) राजकमल चौधरी (ट्रेल की बांबियां, दाम्पत्य, मछली जाल) सुदर्शन चोपड़ा (स्वीकारान्त, अदरंग) इत्यादि कहानीकारों में स्त्री के इसी स्वरूप का चित्रण अपनी पूर्ण कलात्मकता के साथ दिखाई देता है।'[2]

१- नई कहानी : कथ्य और शिल्प - डा० सन्त बख्श सिह - पृ० ४१
२- नई कहानी : कथ्य और शिल्प - डा० सन्त बख्श सिह - पृ० ४१-४२

(ब) हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूपों की अभिव्यक्ति और सामाजिक चेतना की समीचीन परख :-

हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों से ही हम उनमें नारी के विविध रूपों की अभिव्यक्ति पाते हैं। यह स्वाभाविक भी था। जब नारी का चित्रण करना कहानी में एक बार ग्राहय बन गया तब उसकी सामाजिक स्थितियों का चित्रण ही तो उसमें किया जा सकता था। इसलिए 'इन्दुमती', ग्यारह वर्ष का समय, दुलाईवाली, रानी केतकी की कहानी और उसने कहा था आदि में भी नारी की विभिन्न सामाजिक स्थितियों का चित्रण हम पाते हैं। 'इन्दुमती' में पिता को अपनी प्रतिज्ञानुसार अपनी पुत्री के पति का चयन करने में सफल होते तथा उस पर अपनी सन्तुष्टि व्यक्त करते चित्रित किया गया है। 'ग्यारह वर्ष का समय' की नायिका का विवाह बाल विवाह है। वह अपने पति को नहीं पहचानती और न उसका पति ही उसे पहचानता है क्योंकि दोनों का बाल विवाह हुआ था और वह भी भारतीय परम्पराओं के अनुसार पर्दा - प्रथा में। किन्तु वह अपने पति को उसके हाथ के तिल के निशान से पहचान लेती है। इस प्रकार इस कहानी में बाल विवाह का विरोध नहीं झलकता किन्तु उसके कारण उत्पन्न परिस्थितियों को कथानक का आधार बनाया गया है। राजेन्द्र बाला घोष की कहानी 'दुलाईवाली' में भी प्राचीन परम्परावादी पति-पत्नी आधुनिक युग की उपलब्धि रेलगाड़ी में यात्रा करते हैं और विनोद में ही सही पति-पत्नी का बिछुड़ाव और फिर मिलन होता है।

हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों में नारी की सामाजिक स्थिति का चाहे जितना विवरण ढूंढ लिया जाय किन्तु उसमें समाज में व्याप्त नारी सम्बन्धी कुरीतियों पर कोई कटाक्ष नहीं मिलता। इसके विपरीत उसकी उसी स्थिति का समर्थन सर्वत्र दिखायी पड़ता है। यही स्थिति हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों की भी है। उनमें भी इन सामाजिक कुरीतियों को कुरीतियों के रूप में नहीं देखा गया बल्कि उन्हें समाज के लिए उपयोगी एवं उपादेय भी बताया गया है। इससे पूर्व कि हम उस पर अधिक गहराई से विचार करें हमें यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि अंग्रेजी के प्रारम्भिक उपन्यासों में भी यही स्थिति रही है। वहाँ विक्टोरियन युग तक किसी प्रकार के सुधार की कल्पना करना भी सम्भव न था।

हाँ, यह अवश्य है कि हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासकार एक प्रकार से परम्परागत और रूढ़िवादी नारी की प्रतिष्ठा करने में ही प्रवृत्त दिखायी पड़ते हैं मानो वे उसके लिए प्रचारक का कार्य कर रहे हों । पं० लज्जाराय शर्मा मेहता के उपन्यास 'आदर्श हिन्दू' की प्रियवंदा, जिसे उपन्यासकार ने आदर्श हिन्दू नारी के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है, कहती है :- 'उनका सुख उन्हें ही मुबारिक रहे। हम पर्दे में रहने वालियों को ऐसा सुख नहीं चाहिए। हम अपने घर के धन्धें में ही मग्न हैं।'[1] इस उपन्यास की नायिका के अनुसार स्त्रियों का लज्जा ही प्रधान भूषण है और पर्दा ही उसकी रक्षा करने वाला है, इसलिए पर्दे को तोड़ना अच्छा नहीं।'[2] इसी प्रकार 'सुशीला विधवा' में सुशीला भी पर्दा प्रथा का समर्थन करते हुए कहती है :- ' मेरी समझ में पर्दा प्रणाली अच्छी है। जो लोग पर्दा- प्रणाली की निन्दा करते हैं, वे भूलते हैं, झख मारते हैं। पर्दे का प्रयोजन यह नहीं है कि स्त्रियों को सात ताले में बन्द रखना चाहिए, इसका मतलब यही है कि उन्हें ऐसे कुकर्म करने का अवसर न देना चाहिए।'[3] पं० किशोरी लाल गोस्वामी भी पर्दा प्रथा का समर्थन करते प्रतीत होते हैं।

इसी प्रकार नारी को ही व्यभिचार से बचने की शिक्षा देते हुए उपर्युक्त दोनों उपन्यासकार नारी को पति को परमेश्वर मानने का उपदेश देते हुए व्यभिचार से बचने की सलाह देते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में व्यभिचार से बढ़कर कोई पाप नहीं है। इतना ही नहीं किशोरी लाल गोस्वामी की नायिका तो जीवन भर पति की दासी बने रहने में गौरव अनुभव करती है और मरते समय पति से आग्रह करती है कि वह दूसरा विवाह कर ले जिससे इस लोक में अपने पति को सुखी देखकर वह भी परलोक में सुखी रह सके।'[4] यही नहीं किशोरी लाल गोस्वामी की नायिकाएं तो स्वयं जीवित रहते अपने पति को दूसरी पत्नी

१- आदर्श हिन्दू- भाग -१- पृ० -६-७

२- वही भाग -३- पृ० -१

३- सुशीला विधवा - पृ० -११६

४- तरूण तपस्विनी या कुटीर वासिनी - किशोरी लाल गोस्वामी- पृ० -७५

ग्रहण करने अर्थात बहु विवाह की सहर्ष अनुमति देती हैं। लज्जा राम शर्मा मेहता की नायिका तो विधवा विवाह तथा तलाक का खुला विरोध करते हुए कहती है :- 'जो हिन्दू समाज में विधवा विवाह अथवा तलाक का प्रचार करना चाहते हैं वे दम्पत्ति के प्रेम पर, जन्म-जन्मान्तरों के साथ पर, पवित्र सतीत्व पर और यों हिन्दू धर्म पर वज्र मारना चाहते हैं। यदि, भगवान न करे, ऐसी प्रथा चल पड़े तो अनेक नारियां दूसरा खसम करने के लिये अपने पति को जहर दे देंगी। पति-पत्नी के सैकड़ों मुकदमें अदालत की सीढ़ियाँ चढ़ने लगेंगे और आज कल का हिन्दू समाज, हिन्दू समाज न रह जायेगा।'[१]

यही नहीं, 'आदर्श हिन्दू' में तो मेहताजी विधवा स्त्री के पति की मृत्यु के बाद तत्काल मृत्य हो जाने की बड़ी प्रशंसा की है और उसे सच्ची सद्गति माना है जो प्रकारान्तर से सती प्रथा की प्रशंसा है। वे लिखते हैं - 'लोग कहा करते थे कि उसकी समझ मोटी है, परन्तु आज उसने दिखला दिया कि पढ़ी - लिखी औरतों से वह हजार दर्जे अच्छी निकली। दोनों की बैकुण्ठियां साथ निकलीं, दोनों एक ही चिता पर जलाये गए----वास्तव में ऐसे ही लोगों का जन्म सार्थक है - भारत में ऐसे ही सज्जनों की आवश्यकता है । पतिव्रता की पराकाष्ठा -- सरकारी कानून भी परमेश्वर के कानून के आगे कुछ नहीं।'[२]

स्पष्ट है कि यह टिप्पणी समाज में हो रहे सामाजिक एवं कानूनी परिवर्तनों पर कटाक्ष है। ' राजकुमारी ' नामक उपन्यास में एक नारी पात्र जमना के अपने पति की चिता पर जल जाने पर लेखक कहता है 'यद्यपि सती दाह की चाल उस समय के बहुत पहले ही से उठा दी गई थी, पर तो जो सती है, वे क्या कभी रुक सकती है। लोग उन्हें रोकने की हजार कोशिश करते हैं, पर जो सती है, वे पति के मरने पर किसी न किसी तरह अपने प्राण दे ही डालती हैं।'[३]

सती प्रथा पर कानूनी रोक के कारण वे 'सुशीला विधवा' में कहते हैं - 'पति के मरने पर सबसे बढ़कर कार्य तो यही है, कि उसकी चिता में भस्म होकर पति का साथ दे, परन्तु आज कल ऐसा जमाना नहीं रहा , इसलिये जब तक जिए, सदा ब्रहमचर्य व्रत का पालन करने वाली, कभी पराये पुरूष का स्वप्न में भी ध्यान न करने वाली विधवा मरने पर स्वर्ग में पति को पाती है और फिर कभी दम्पत्ति का साथ नहीं छूटता है ।'[४]

ऐसी ही स्थिति वेश्या समस्या के सम्बन्ध में भी देखी जा सकती है। श्री लज्जाराम शर्मा और किशोरीलाल गोस्वामी यद्यपि वेश्या जीवन के प्रति घृणा प्रदर्शित करते हैं किन्तु वेश्याओं को सामाजिक आवश्यकता के रुप में स्वीकार भी करते हैं।। ----बेशक रण्डियां समाज में एक बला हैं -- परन्तु इससे आप यह न समझ लीजिए कि ये समाज से निकाल देने के लायक हैं, फिजूल हैं और इन्हें बन्द कर देना चाहिए ---- यदि वेश्याएं हमारे समाज से उठा दी जायें तो घर की बहू-बेटियां बिगड़ेंगी।'[५]

यही स्थिति अन्य सामाजिक कुरीतियों के सम्बन्ध में भी देखी जा सकती है। वस्तुतः लेखकगण तब तक ना यों के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण अपना नहीं सके थे।

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी ने कुल तीन कहानियां लिखीं जिनमें से एक कहानी 'उसने कहा था' यद्यपि सबसे बाद में लिखी गयी किन्तु उसे हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी होने का गौरव प्राप्त है। संयोग से इन तीनों कहानियों में नारी को केन्द्र में रखा गया है, किन्तु उनके प्रेम को आदर्श एवं शालीन प्रेम के रूप में ही चित्रित किया गया है।

उनकी पहली दो कहानियां 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का कांटा' सन् १६११ में प्रकाशित हुईं। 'सुखमय जीवन', 'भारत मित्र' में प्रकाशित हुई थीं। 'सुखमय जीवन' के नायक की बाइसिकिल चलते -चलते अचानक पंचर हो जाती है और इसी एक

१- तरूण तपस्विनी या कुटीर वासिनी- किशोरी लाल गोस्वामी - पृ० ७५
२- आदर्श हिन्दू - भाग - ३- पृ० -१५० -१५१
३- राजकुमारी - पृ० - १३४
४- सुशीला विधवा - पृ० - १५२
५- आदर्श हिन्दू - भाग- ३ - पृ० - २१७ - २१८

छोटी सी घटना से उसका हाथ कमला जैसी रूपवती लड़की के हाथ में आ जाता है (पाणि ग्रहण हो जाता है) और उसका जीवन सुखमय हो जाता है। इसी प्रकार 'बुद्धू का कांटा' का रघुनन्दन प्रसाद त्रिवेदी छुट्टियों में घर जाते हुए पनिहारिन के रुप में जिस शोख लड़की की छेड़छाड़ का शिकार होकर उससे बिंध जाता है, संयोग से उसी से उसका विवाह हो जाता है।

किन्तु 'उसने कहा था' का नायक अमृतसर की गलियों में जिस लड़की से छेड़छाड़ कर बैठता है उससे उसका विवाह नहीं हो पाता। पर जीवन में उससे पुनः भेंट होने पर नायक नायिका के प्रति और नायिका नायक के प्रति पवित्र प्रेम का निर्वाह करते हैं जो किसी भौतिक सुख या आनन्द की कामना पर प्रतिदान नहीं चाहता बल्कि आत्मिक आनन्द या सुख की अनुभूति करना चाहता है। प्रेम बलिदान चाहता है और उस वचन पर जो (उसने कहा था) नायक अपना जीवन बलिदान करता है।

डा० गणेशदास ने प्रेमचन्द पूर्व युग की हिन्दी कहानी में नारी रूप का विश्लेषण करते हुए अपना मन्तव्य इस प्रकार व्यक्त किया है।

'प्रेमचन्द पूर्व युग की कहानी में सामान्य जीवन की अभिव्यक्ति कम हूई है क्योकि स्वयं कहानी विधा अधिक विकसित नहीं हुई थी। प्रेमचन्द पूर्वयुग में सम्बन्ध, अर्थ, विचार, पर्यावरण का कहानियों में स्पष्ट विभाजन नहीं मिलता। इस युग में जो कहानियां मिलती हैं उनमें नारी के रूप अधिकांशतः अपना विशिष्ट रूप ही ग्रहण करते आए हैं। इंशा अल्लाह खां की 'रानी केतकी की कहानी' और किशोरी लाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' के नारी पात्र सामान्य नारी जीवन की समस्याओं को रेखांकित नहीं करते। रानी केतकी की कहानी में रानी केतकी की प्रेम-गाथा है जिसकी परिणति दो राजाओं के परस्पर संघर्ष और रानी केतकी के वियोग दशा के चित्रण के बाद विवाह में होती है। 'इन्दुमती' कहानी में भी ऐसी प्रेमिका का रूप है जिसके व्यक्तित्व का विकास ऐसे परिवेश के मध्य होता है जहां उसने अपने पिता के अतिरिक्त किसी और पुरुष को देखा नहीं होता। यहां तक कि वह अपनी परछाईं को देखकर ही मुग्ध होती रहती है। प्रेमचन्द पुर्व युग में कतिपय कहानियां ऐसी हैं जिनके पात्र सामान्य वर्ग के हैं। शिव प्रसाद सिंह सिप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' और बंग महिला की 'दुलाईवाली' में नारी पात्र जीवन के सामाजिक यथार्थ का हल्का सा स्पर्श करते हैं। 'एक टोकरी भर मिट्टी ' में विधवा के जीवन का चित्रण है जो जीवन यापन के लिए श्रम करती है और राजा के महल के साथ ही एक झोपड़ी में रहती है। राजा वहां पर उस झोपड़ी को भवन बनवाने के कारण तोड़ देता है। राजा द्वारा गरीबों का किया गया शोषण कहानी में चित्रित है। कहानी में विधवा के माध्यम से उपदेश दिया गया है कि राजा गरीबों का शोषण करना तो जानते हैं, पर दया नहीं। यह कहानी विधवा के रूप को तो उठाती है किन्तु उसका उद्देश्य शोषण दिखाना हो जाता है। इसी तरह 'दुलाई वाली' में पतिव्रता रूप मिलता है जो पति की इच्छानुसार चलती है और इच्छाओं को दबा लेतीं है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द पूर्व युग में नारी के रूप अवश्य मिलते हैं किन्तु उस युग में कहानी अपरिपक्व स्थिति में होने के कारण नारी अपने वास्तविक और सामाजिक सन्दर्भो में चित्रित नहीं हो सकी।'[1]

भारतेन्दु युग की प्रमुख पत्रिकाओं - कविवचन सुधा (१८६७ ई०) हरीश्चन्द्र मैगजीन (१८७३ ई०) ब्राहमण (१८८० ई०) सार सुधानिधि : भारत मित्र (१८७७ ई०) आदि में समय-समय पर प्रकाशित हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों में से अधिकांश अनुदित कहानियां होती थीं यघपि उनमे अत्यन्त मार्मिक तथा भाव व्यंजक खण्ड चित्रों की अवतारणा भी हुई है। इनमें से अधिकांश या तो अंग्रेजी कहानी से प्रभावित थीं या बंगला कहानी से। सन् १६०० में 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के साथ तथा सन् १६११ कें 'इन्दु' पत्रिका के प्रकाशन के साथ हिन्दी कहानी तेजी से आगे बढ़ी।

आगे चलकर 'हिन्दी गल्प माला' (प्रवर्तिका कौशिल्यादेवी - काशी - अगस्त, १६१८ ई०) ने हिन्दी कहानियों को लोकप्रिय बनाने तथा उसकी कला को विस्तार देने में बहुत बड़ा योगदान दिया।[2]

१- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूप - डॉ० गणेश दास - पृ० ६५ -६६
२- हिन्दी कहानी - बदलते प्रतिमान- डॉ० रघुवर दयाल वार्ष्णेय - पृ० २३

प्रेमचन्द, प्रसाद एवं कौशिक : हिन्दी के तीन प्रारम्भिक प्रमुख कहानीकार :-

इसी अवधि में हिन्दी में तीन सशक्त कहानीकारो का आविर्भाव हुआ। ये थे - प्रेम चन्द, जयशंकर प्रसाद और विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'। प्रेमचन्द हिन्दी कहानी क्षेत्र में सन् १६१६ में प्रविष्ट हुए यद्यपि उर्दू कहानी में उन्होंने 'प्रसाद' और 'कौशिक' से पूर्व सन् १६०७ में ही प्रवेश कर लिया था और लगभग एक सौ पचहत्तर कहानियों की रचना कर ली थी। सन् १६१६ में इनकी प्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' प्रकाशित हुई। डॉ० रघुवर दयाल वार्ष्णेय ने डॉ० ब्रह्म दत्त शर्मा के उस कथन का उल्लेख किया है जिसके अनुसार प्रेमचन्द की प्रथम कहानी 'सौत' थी जो सन् १६१५ में सरस्वती में छपी थी और कौशिक की प्रथम कहानी 'रक्षा-बन्धन' थी जो अक्टूबर १६१६ में सरस्वती में प्रकाशित हुई। इस दृष्टि से प्रेमचन्द ने कौशिक से पूर्व हिन्दी कथा साहित्य में प्रवेश किया।'[1]

वहीं वे यह भी लिखते हैं कि - 'भारतेन्दु कालीन कहानियों पर दृष्टिपात करने से यह सिद्ध हो जाता है कि इन कहानीकारों ने कहानी की रूप विधा में सार्थक परिवर्तन किये और उसके माध्यम से युगबोध को उभारने का प्रयास किया। उनसे पुरातनता तो पूर्णतः न टूट सकी किन्तु उनमें सामाजिक चेतना का प्रवेश अवश्य हो गया। शिल्प एवं सुधारवादी सामाजिक चेतना का पुट भी इन कहानियों में उभर कर आने लगा।'[2]

डॉ० सन्त बख्श सिंह के अनुसार 'प्रेमचन्द के उदय के साथ ही कहानी विधा एक स्वतन्त्र विधा के रूप में निर्मित और विकसित हुई। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द का उदय सन् १६१६ ई० में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित 'पंच परमेश्वर' कहानी के माध्यम से हुआ।'[3]

श्री विजय मोहन सिंह के अनुसार - 'प्रेमचन्द को हमारी सामाजिक संरचना की जटिलता के प्रत्येक स्तर का अद्भुत परिज्ञान था- 'दो कब्रें' कहानी के कुंवर साहब की पुत्री सुलोचना उनकी वेश्या प्रेमिका से उत्पन्न हुई है जिससे उसके अध्यापक रामेन्द्र भावुकता तथा आदर्श में पड़कर विवाह कर लेते हैं - एक वेश्या पुत्री से विवाह का साहस - सामाजिक दबावों की विडम्बना की शुरूआत - उसके बाद होती है। हम सुधार तथा विद्रोह का दुस्साहस कर सकते हैं लेकिन उसके बाद ? 'दो कब्रें' इसी का जबाब ढूढने की कहानी है। सुधारवादी युग के सबसे बड़े हिमायती प्रेमचन्द से अधिक शायद ही किसी ने समझा हो, न तब और न अब।

रामेन्द्र का सामाजिक बहिष्कार कुल बधुएं करतीं हैं -उनकी पुत्री के जन्मोत्सव में कोई कुलबधु शामिल नहीं होती और उनकी जगह वेश्याओं का समूह 'बधावा' लेकर पहुँचता है। रामेन्द्र के गहरे द्वन्द्व का प्रेमचन्द ने सुन्दर चित्रण किया है। उसके 'अकेलापन'- अजनबीपन को सर्वाधिक जटिलता, सूक्ष्मता और प्रामाणिकता के साथ प्रेमचन्द ने पहचाना तथ प्रस्तुत किया है। इस अकेली कहानी के सन्दर्भ में हिन्दी की अधिकांश कहानियों का अजनबीपन थोथा, बनावटी और ओढ़ा हुआ प्रतीत होता है।'[4]

प्रेमचन्द में कहानी सामाजिक चेतना से भर गई। प्रेमचन्द ने पूंजी के महत्व का, मजदूर और किसान की दयनीय दशा का भीषण रूप देखा। नारी के उत्पीड़ित एवं निर्जीव शरीर में भी उन्होंने प्राणों का संचार किया। उसे शिक्षा ग्रहण करने, समाज में अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने, समाज में अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा उन्होंने दी। जाति प्रथा, बाल विवाह, विधवा प्रथा जैसी कुरीतियों पर प्रहार करने की सामाजिक चेतना दिखायी पड़ने लगी। इसलिए वे तिलस्मी, जासूसी और एय्याशी से ऊपर उठकर सामाजिक चेतना के लिए सक्रिय हुए। उनकी कहानियों का मूल स्वर स्वस्थ एवं समृद्ध समाज का निर्माण करना है। उनमें कल्पना, अतिरंजना तथा मनोविलास का चित्रण नहीं किया। उनकी कहानियों यथार्थपरक

१- हिन्दी कहानी - बदलते प्रतिमान - डॉ० रघुवर दयाल वार्ष्णेय - पृ० - २३-२४
२- हिन्दी कहानी - बदलते प्रतिमान - डॉ० रघुवर दयाल वार्ष्णेय - पृ० - २४
३- नयी कहानी - कथ्य और शिल्प - डा० सन्त बख्श सिंह- भूमिका से।
४- आज की कहानी - विजय मोहन सिंह - पृ० २३

विश्वनीय अतएव अमिट प्रभाव वाली बन सकीं। प्रेमचन्द की 'सुजान भगत', प्रसाद की 'नीरा', वृन्दावन लाल वर्मा की 'शरणागत', धनीराम प्रेम की 'बहन' आदि कहानियाँ ऐसे ही यथार्थ को उजागर करती हैं। किन्तु वे आदर्शवाद को पूरी तरह छोड़ नहीं पायें। शायद छोड़ना उचित भी नहीं था क्योंकि कथा साहित्य को सर्वसम्मत एवं लोक प्रिय बनाने के लिए आदर्शवाद का आश्रय लेना आवश्यक है - या कम से कम उस युग में आवश्यक था। इसलिए प्रेमचन्द युग की कहानियों में 'सत्य' और 'तथ्य' का मणिकांचन योग देखने को मिलता है। इस सम्बन्ध में जैनेन्द्र जी ने लिखा है -

'मैं मानता हूँ कि आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रेमचन्द पहले प्रणेता हैं, जो यत्नपूर्वक यथार्थता के दबाव से बचने के लिए रोमांस की गली में भूलकर मौज करने नहीं गए। रोमांस को उन्होंने छोड़ ही दिया, सो बात नहीं। इस अर्थ में रोमांस कभी छूटता है? कोई लेखक कल्पना को छोड़ कैसे सकता है ? कल्पना बिना लेखक क्या ? लेकिन अपने हृद्‌गत रोमांस को उन्होंने व्यवहार पर, वास्तव पर घटाकर और दिखाया। उनके साहित्य की खूबी यह नहीं है कि उनका आदर्श अन्तिम है, अथवा सर्वथा स्वर्गीय है। इसकी विशेषता तो यह है कि उस आदर्श के साथ व्यवहार का असामंजस्य नहीं है। वह आदर्श स्वयं में कम ऊँचा है कि वह नीचे वालों को उठाकर उनके साथ - साथ रहना चाहता है। इस समन्वय की पुष्टता के कारण वह पुष्ट है।'[१]

जहां तक नारी की सामाजिक चेतना की बात है, जैसा कि डा० रघुवर दयाल वार्ष्णेय ने लिखा है - 'उनकी (प्रेमचन्द की) अधिकांश कहानियां नारी की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक चेतना को स्वर देती हैं। वैवाहिक बुराइयों पर प्रेमचन्द ने अनेक कहानियां लिखी हैं। बाल विवाह पर छींटाकशी करते हुए उन्होंने 'सुभागी', लांछन', 'उन्माद' तथा 'नैराश्य लीला' कहानियों का निर्माण किया है। अनमेल विवाह के जीते- जागते चित्र 'नया- विवाह', 'नरक का मार्ग', 'उद्धार', 'आधार', 'आगा पीछा', 'भूत', 'तथ्य' आदि कहानियों में उभरकर आए हैं। बहु-विवाह को आधार बनाकर लेखक ने 'सौत', 'गृह दाह' कहानियों का निर्माण किया है। वैवाहिक कुरीतियों का मूल कारण दहेज प्रथा है। उसके सम्मुख लड़की के सभी गुण और सौन्दर्य छिप जाते हैं। 'गिला', 'कुसुम', 'विद्रोही', 'उद्धार', 'एक ऑच की कसर' तथा 'दो भाई' कहानियों में इसी कुरीति को स्वर मिला है। 'अलग्योझा', 'स्वामिनी', 'ज्योति', 'धिक्कार', 'सुभागी', 'बालक', 'नैराश्य लीला', 'त्यागी का प्रेम', 'तथ्य' और 'प्रेम की होली' कहानियों के माध्यम से प्रेमचन्द ने वैधव्य जीवन की दर्द भरी गाथा को साकार किया है। वेश्यावृत्ति को उन्होंने सब पापों का मूल कहा है। यदि यह वृत्ति समाज से किसी प्रकार दूर हो जाये तो मनुष्य जाति के अधिकांश पाशविक विचार समाप्त हो सकते हैं। 'रामलीला', 'लांछन', 'निर्वासन', 'बहिष्कार', 'ज्योति', 'नया विवाह', 'नरक का मार्ग', 'त्यागी का क्रोध' तथा 'प्रेम की होली' में वेश्यावृत्ति के कारण और उसकी समाप्ति के सभी पहलुओं पर विचार किया है और इन विचारों की सटीक व्याख्या 'दो कब्रें' और 'आगा पीछा' कहानियों में हुई है। आर्थिक परतन्त्रता भी नारी के पतन का कारण हैं। अज्ञान और अशिक्षा आर्थिक परतन्त्रता के मूल हैं। इसीलिए प्रेमचन्द ने स्थान- स्थान पर नारियों को शिक्षित होने पर विशेष बल दिया है। 'बेटों वाली विधवा', 'जीवन की शाम', आदि कहानियों में प्रेमचन्द ने नारियों की आर्थिक अवशता का मार्मिक चित्रण किया है। ------------- 'कुसुम', 'जीवन का शाप', 'गृहनीति', 'लांछन' एवं 'रहस्य' कहानियों में नारी शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। समानाधिकार के लिए ही प्रेमचन्द ने अन्तर्जातीय विवाह का पक्ष भी लिया है जो राष्ट्र में भावात्मक एकता प्रदान कर सकता है। स्थान -स्थान पर उन्होंने पर्दा प्रथा का भी विरोध किया है।'[२]

जय शंकर प्रसाद हिन्दी कहानी के क्षेत्र में पच्चीस वर्ष (सन् १९११ से १९३७) तक बराबर लिखते रहे। इनकी कहानियों में नारी को गौरवमय पात्र की भूमिका दी गई है। इनके नारी पात्र या तो अतीत के गौरव और आदर्शों के प्रतीक है या आधुनिक परिस्थितियों की जीती-जागती तस्वीर या फिर वे जो प्रेम के नशे में मदहोश हैं। 'इनकी अधिकांश कहानियां नारी पात्रों द्वारा संचालित हैं, वे पुरूषों से अधिक जागरूक तथा सक्रिय हैं वे पुरूष से उच्च्य धरातल पर प्रतिष्ठित हैं और गिरे हुए पुरूष का उद्धार करती हैं, उसे सन्मार्ग पर लगाती हैं, उसके लिए प्रेरणा स्त्रोत बनती हैं और उसे सक्रिय बनाती हैं। वे स्वयं न केवल शारीरिक सुन्दरता से युक्त हैं बल्कि विवेकशील, संयमी एवं कर्मशील हैं। 'वस्तुतः उनकी नब्बे प्रतिशत कहानियां ऐसी हैं जो प्रेम के किसी न किसी रूप को प्रदर्शित करती हैं। यदि उनका सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाय तो इस प्रेम के अनेक रूप उभर कर आए हैं- पुरूष - स्त्री के सफल प्रेम को प्रदर्शित करने वाली कहानियां, पुरूष - स्त्री के असफल प्रेम को प्रदर्शित करने वाली

१- हिन्दी कहानी : बदलते प्रतिमान - डा० रघुवर दयाल वार्ष्णेय द्वारा उद्धृत- पृ० -३३

२- वही - पृ० - ४४- ४५

कहानियां, दाम्पत्य प्रेम को प्रदर्शित करने वाली कहानियाँ, पूर्वागुरागिनी नायिकाओं के प्रेम को दिखाने वाली कहानियां, मुग्धा नायिका के प्रेम को प्रदर्शित करने वाली कहानियां, विधवा- प्रेम के आधार पर पुनर्विवाह की ओर संकेत करने वाली कहानियां, निम्नकोटि के प्रेम को प्रदर्शित करने वाली कहानियां, अभिजात व्यक्तियों का निम्न श्रेणी वाली जाति की कन्याओं से प्रेम प्रदर्शित करने वाली कहानियां, स्वच्छन्द प्रेम पर आधारित कहानियाँ, अन्य जाति के पुरूषों और नारियों के प्रेम को प्रदर्शित करने वाली कहानियाँ एवं देशप्रेम को प्रदर्शित करने वाली कहानियाँ। --------इस युग की स्त्रियां अनुपम सुन्दर वैराग्य और करूणा की मूर्ति हैं और वे एकाकी जीवन व्यतीत करती हुई हमारी समस्त सम्वेदना और सहानुभूति को अपनी ओर खीचनें की शक्ति रखती है।

'इस युग की कहानियों का आधार स्त्रियां ही हैं, जिनके किनारे- किनारे कहानी के रेशे जाल बुनते चलते हैं। इनमें इतनी प्रभुविष्णुता आ गई है कि पुरूष इनके छाया मात्र प्रतीत होते हैं।'[1]

वे आगे लिखते हैं - 'नारी - चरित्र प्रसाद -कला के केन्द्र बिन्दु बन कर आए हैं। उनके ये स्त्री पात्र ही अतीत के गौरव और प्राचीन आदर्शों के प्रतीक हैं। ये नारियां ही सामाजिक बन्धन और परम्पराओं के प्रति विद्रोह करती हैं और अपने अप्रतिम सौन्दर्य, अनुपम आकर्षण और प्रभावशाली व्यक्तित्व से कहानी सूत्र का संचालन करती हैं तथा अपने अन्तर में घात-प्रतिघात, अन्तर्द्वन्द्व, विद्रोह और उत्सर्ग के तत्व छिपाये रहती हैं। पुरूष पात्र सदा इन्हीं के चारों ओर घूमते से दिखायी देते हैं। प्रकृति मानवीय चेतना का अभिन्न अंग बन कर अपना अभिनय करती दिखाई देती है।'[2]

प्रसाद जी के बाद विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक की कुछ कहानियों में तथा पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की अनेक कहानियों में नारी से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं को उभारा गया है। उग्र जी की एक कहानी 'मोकों चुनरी की साध' बाल विवाह और वैधव्य जीवन की विडम्वना पर लिखी हुई सर्वोत्तम कहानी है। इसी प्रकार 'आंखों में आंसू', 'काने का ब्याह' और 'हत्यारा' कहानियां लिखी गयी हैं। 'करूण कहानी' में शोषित नारी के स्वरूप पर आंसू बहाया गया है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कुल इक्कीस कहानियों में से अनेक में नारी समस्याएं जैसे कि अन्तर्जातीय विवाह की समस्या, विधवा विवाह तथा दहेज प्रथा आदि को उठाया गया है। डा० रघुवर दयाल वार्ष्णेय ने लिखा है - 'उनकी अधिकांश कहानियों में नारी की तत्कालीन सामाजिक अवस्था का चित्रण हुआ है। इसीलिए कुछ कहानियों के शीर्षक नायिकाओं के नाम पर रखे गए हैं। वस्तुतः इनकी अधिकांश सामाजिक कहानियां नायिका प्रधान हैं। इन नायिकाओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है ----- परिस्थितियों के सामने पराजित हो जाने वाली एवं परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने वाली। प्रथम वर्ग की नारियां अपनी स्थिति से सन्तुष्ट नहीं हैं, किन्तु समाज के कठोर बन्धनों में तड़-फड़ा कर रह जाती हैं। इसके विपरीत दूसरे वर्ग की नारी पात्रों को संघर्षोपरान्त सहज सफलता मिल जाती है और वे अपने मनोनूकूल परिस्थितियां उत्पन्न कर लेती हैं।'[3]

भगवती प्रसाद बाजपेयी की कुल तीन सौ कहानियों में से अनेक में नारी समस्याओं को उभारा गया है। डा० रघुवर दयाल वार्ष्णेय के अनुसार - 'नारी के दर्द, दुख, शोषण, उत्पीड़न, प्रेम और नैराश्य की संवेदनाओं को इन्होंने अपनी कहानियों का कथ्य बनाया है। बिखरते हुए परिवार रूढ़िबद्ध विवाह पद्धति आदि सभी ने नारी जीवन को तोड़कर रख दिया है। वस्तुतः नारी जीवन की वेदना- गाथा बचपन से ही प्रारम्भ हो जाती है। किशोरी बनने से पूर्व ही उसे नारीत्व ओढ़ने के लिए विवश कर दिया जाता है और जब तक उमंग का साक्षात्कार उसे हो, तब तक वह पतिगृह की कूटनीति और उत्पीड़न का शिकार हो जाती है। कहीं वह विधवा हो गयी तो उसका रहा- सहा सम्बल भी चला जाता है। बाजपेयी जी ने कुछ ऐसे पात्रों की भी सर्जना की है जो नारी जाति के उत्थान को प्राथमिकता देते हैं'।[4]

इसी प्रकार सुभद्रा कुमारी चौहान की भी अड़तालीस कहानियों में से अधिकांश में नारी समस्याओं को उभारा गया है।

१- हिन्दी कहानी : बदलते प्रतिमान - डा० रघुवर दयाल वार्ष्णेय - पृ० - ४८ - ४६

२- वही - पृ० - ५१

३- वही - पृ० - ६५

४- वही - पृ० - ६७

नारी द्वारा नारी की मनोवेदनाओं की अभिव्यक्ति के कारण ये स्वाभाविक एवं प्रभावी भी बन गयी हैं। तत्कालीन अन्य महिला लेखिकाओं में ऊषा देवी मित्रा की कहानियों के सम्बन्ध में डा० रघुवर दयाल वार्ष्णेय के अनुसार - (नारी होने के कारण) नारी के अन्तर्जगत को बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करने में पूर्ण सफलता मिली है।'[1]

इसके बाद के युग में फ्रायड़,युंग आदि मनोविश्लेषण वादियों का प्रभाव भी कहानीकारों पर पड़ने लगा। यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, अज्ञेय आदि इसी प्रकार के कहानीकार हैं। बाद में तो खुलकर इसका प्रसार हो गया। स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के विकृत -अविकृत सभी रूपों एवं दशाओं का नग्न वर्णन होने लगा। किन्तु यह स्थिति केवल हिन्दी साहित्य में ही नहीं आयी। विश्व के सभी साहित्य न्यूनाधिक रूप में इससे प्रभावित हुए। फ्रेंच, जर्मन, इतालवी और अंग्रेजी आदि प्रमुख यूरोपीय भाषाओं का साहित्य इससे अछूता नहीं रह सका तब भारतीय साहित्य ,जो पाश्चात्य साहित्य के प्रमुख प्रवाहों से प्रभावित होता रहा है, इससे किस प्रकार बच सकता था।

डा० रघुवर दयाल वार्ष्णेय ने उस स्थिति का सटीक चित्रण किया है जिसनें नर - नारी सम्बन्ध, पारिवारिक जीवन की अवधारणा को आमूल- चूल परिवर्तन कर दिया है। वे लिखते हैं -

'पिछले कुछ वर्षो में प्रेम कहानी के नाम पर नारी शरीर के भोग को विद्रूप की हालत में पंहुचाते हुए अधिकाधिक कामोत्तेजक प्रसंग की कहानियां लिखी गई हैं। अतः उनकी इस भोगेच्छा ने नारी के अंग वर्णन से लेकर मानसिक प्रतिमाओं को अपनी कहानी में समेटा है अतः उनमें यौनाचारिताओं की हविश उभरकर आ गयी है। परिणामतः रेणु, राकेश, अमरकान्त निर्मल वर्मा, राम कुमार, कमलेश्वर, श्रीकान्त वर्मा, शिव प्रसाद सिंह, राजेन्द्र यादव आदि कहानीकारों ने प्रेम की बेबसी, थकान, होम सिकनेस, आत्मरति और निष्क्रियता की सीमाओं में बांधकर छोड़ दिया था, बाद के लेखक केवल उसी को दुहराते रहे हैं। किन्तु इन कहानीकारी को यह समझ लेना आवश्यक है कि आज की नारी आत्म सजग है। वह पुरूष से उतना ही आत्म समर्पण चाहती है जितना पुरूष उस पर अधिकार की कामना करता है अतः उनमें सच्चे प्रेम की कल्पना करना बिडम्बना ही होगी। दोनों ही अपरिपक्व हैं। इसीलिए इन प्रणयवादी कहानियों की असफलता की तह में पात्रों की नासमझी, आखेटप्रियता और स्वार्थ प्रियता है। इसीलिए आज की कहानियों में प्रेम चित्रण में उदासी और अकेलेपन का रूप पैदा हो गया है जिसके कारण प्रेमी और प्रेमिका अपने जीवन के महत्वपूर्ण क्षणों में भी आमने - सामने खड़े होने से कतराते हैं। इतना ही नहीं, वे समस्याओं के उभरने पर अपने प्रणय सम्बन्ध तक को तोड़कर अलग खड़े हो जाते हैं या पूर्णतः पस्त होकर भाग भी खड़े होते हैं। इस दूर खड़े होने या भागने का एक कारण पाश्चात्य सभ्यता की छाया भी है। आज का कहानीकार अपने नायक- नायिका की प्रतिमाओं को झटके से तोड़ने में भी नहीं हिचक रहा। आज की इन विषम परिस्थितियों ने प्रेमी और प्रेमिका को एकदम नपुंसक बना दिया है अतः उनका स्वभाव चिड़चिड़ा और कमजोर हो गया है। अब वे नायक और नायिका चाहे राजेन्द्र यादव की कहानी 'छोटे-छोटे ताजमहल' के विजय और मीरा हों अथवा राम कुमार की कहानी 'यात्रा' के वह और देवी हों, मोहन राकेश की कहानी 'एक और जिन्दगी' या कमलेश की कहानी 'राजा निर बंसिया' के नायक- नायिका हों अथवा श्रीकान्त वर्मा की कहानी 'परिणाम' अथवा 'दूसरे के पैर' के प्रेमी प्रेमिका- सभी एण्टी हीरोइन हैं। सभी अपने में सिमटे , कुचले और नपुंसक। ज्यों- ज्यों ये एक दूसरे को समझने का प्रयास करते हैं त्यों ही त्यों ये एक - दूसरे के पास से गुजर जाते हैं। प्रेम का अनुभव होते हुए भी उन्हें यह आभास नहीं होता कि वे किसे प्रेम कर रहे हैं? पार्श्व में बैठे किसी पात्र को, अथवा अनुपस्थित नायक को या अस्तित्वहीन चरित्र को या स्वयं को।'[2]

वे आगे लिखते हैं - 'नयी कहानी के नाम पर कुछ कहानीकारों ने नारी -पुरूष के अन्तर में झांकने का प्रयास किया है और वहां से नये- नये तथ्य निकालने की फिराक में नयी कहानी को नंगी औरत का रूप देने में कोई कोर- कसर नहीं छोड़ी। परिणामतः काम प्रसंग अनुभूति की सच्चाई के रूप में अभिव्यक्ति नहीं पा सके। वे तो फैशन परस्त मात्र बन कर रह गए हैं। इस नयी कहानी की पेठ में युगनद्ध स्थिति और सम्भोग ब्योरों की इतनी तेजी से आमद -दरफ्त हुई कि कामशास्त्र के सीमित आसन कम पड़ गए। इन्होंने तो काम की एक -एक सलवट और उसके एक- एक कर्ब की अभिधात्मक शव परीक्षा

१- हिन्दी कहानी : बदलते प्रतिमान - डा० रघुवर दयाल वार्ष्णेय - पृ० ६९

२- वही - पृ०- १३८

प्रारम्भ कर दी। ---------- परिणामतः ये कहानियां अपना शिल्प खो बैठीं और बाजारू बन कर रह गयीं। आलोचकों द्वारा आश्वस्त ये कहानीकार और विशेषतः कहानी लेखिकाएं अपने को नव्यतम और आधुनिकतम कहने लगीं और सेक्स का खुलकर अभिधापरक चित्रण करने में अपने को महान समझने लगीं। जिन महिला लेखिकाओं ने सेक्स की बंधी बंधाई लीक और मुहावरे को तोड़ने का प्रयास किया उन्हें नयी कहानी में तुरन्त प्रवेश दे दिया गया। ये शायद हमारी संस्कृति द्वारा प्रदत्त पर्दे को गुलामी का परिणाम मानते हैं। किन्तु यह सर्वथा सत्य है कि आधुनिक से आधुनिक कला को भी मानवीय गुणों से समन्वित होना आवश्यक है। डिस्टार्शन किए नग्न चित्रित नारी की यथार्थ रूप में तल्खी की दाद दी जा सकती हैं किन्तु उसे अंकशायिनी बनाया ही नहीं जा सकता। यदि नग्नता सम्मोह का आधार बन कर हमारे लौकिक चित्त को अतीन्द्रिय बना सके, उन्नयन की क्षमता प्रदान कर सके, आकाश में उड़ने की क्षमता प्रदान कर सके या मांसलता से दूर शुभ्र मनुष्यता का साक्षात्कार करा सके, तभी वह अपनाने योग्य है। उसके विपरीत यदि वह विकृति का पर्याय बनती है तो वह बुद्धि को झकझोरने के सिवाय कुछ नहीं दे सकती।'[1]

कथा साहित्य इस प्रकार की बदलती हुई परिस्थितियों में प्रमुख रूप से दो प्रकार से बढ़ने लगा ? एक तो शीघ्र प्रतिष्ठित हो जाने या चर्चा में आ जाने की ललक के कारण और दूसरे देखा - देखी या फैशन के कारण। डा० रघुवर दयाल वार्ष्णेय ने इस सम्बन्ध में जो निष्कर्ष निकाला है वह उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है :-

'किसी पुराने जमे - जमाये कहानीकार ने अपनी उभरती हुई काम - पिपासा को शाब्दिक क्रीड़ा में बांधने के लिये पॉच कहानियों की रचना कर दी। अभिव्यक्ति के लिए उसने टेंढ़े - मेढ़े प्रतीकों का सहारा लिया और संग्रह का नामकरण भी प्रतीकात्मक किया। बस, एक नया फैशन। कलकत्ता के एक कहानीकार ने लीस्बयन्स (एक - दूसरे से प्रेम करके यौन भावना को तृप्त करने वाली नारियां) पर ही कहानियां लिख डालीं। हवा चली और इलाहाबाद में बैठे एक कहानीकार को लगी। अतः उसने अपनी प्रेमिका को बाथरूम में नंगा कर नौकर की भुजाओं में आबद्ध कर दिया। रमेश बक्षी ने तो इन सेक्सी कहानियों की एक सिरीज ही लिख डाली। राजेन्द्र यादव की 'प्रतीक्षा' में भी यही सत्य उभरा। शायद इसे उन्होंने अपनी मौलिकता माना, बिना यह सोचे समझे कि उनसे पन्द्रह - बीस वर्ष पहले ही उर्दू के कहानीकार यह सब कुकर्म कर गुजरे हैं। उनके यहाँ समलिंगी यौनाचार ही नहीं, धुऑ , बू, फिसलन और लिहाफ में सेक्स के बारीक रेशे उभर चुके हैं। फैशन था, अतः निहारिका के एक अंक में दो कहानियां प्रकाशित हुईं, जिनकी नायिकाएं पति की नपुंसकता के कारण युवा किरायेदारों की गलबहियों में लिपट गयीं ओर वे जिन फिकरों को बिना हिचक के बोल देती हैं उन्हें एक पुरूष भी बोलने में सकुचायेगा। उसी समय जैनेन्द्र की 'राजीव और उसकी भाभी' ने एक और फैशन चला दिया। अब कहानीकार उसी सीमित विषय को लेकर देवर-भाभी की कहानियां लिखने लगे। विवाहित पत्नियां, पति सरल और पत्नी प्रेमी। पति के किसी प्रेमी का घर में आना, पत्नी का वह पुराना प्रेमी सिद्ध होना और पत्नी का भटक जाना। किन्तु यह कोई नया दौर नहीं था। यह उर्दू के 'अंगारे ग्रुप' की देन थी। सज्जाद जहीर, रशीद और अहमद अली विलायत से नये विचार लेकर आये और 'अंगारे' नाम से एक कहानी संग्रह प्रकाशित कराया। जैनेन्द्र की कहानियों की मनोवैज्ञानिकता और यौन भावों की बारीकी उन्हीं का सुथरा- सुधरा रूप है और 'राजीव और उसकी भावीं' का आधार सज्जाद जहीर के एकांगी 'बीमार' है। जो भी हो, हिन्दी के लिए तो यह नया फैशन ही था अतः भाभी मार्का कहानी का दौर प्रारम्भ हो गया। उसी समय 'माधुरी' के विशेषांक में जैनेन्द्र, भगवती प्रसाद बाजपेई और पहाड़ी की कहानियॉ प्रकाशित हुईं। उन्हीं दिनों 'चकल्लस' पत्रिका का 'भाभी विशेषांक' प्रकाशित हुआ।'[2]

इस निष्कर्ष से सभी सहमत हों यह आवश्यक नहीं है किन्तु इसमें जो प्रवाह चित्रित किया गया है वह ऐतिहासिक तथ्य है और हमारा प्रयोजन उसी से है। धीरे- धीरे सामाजिक चेतना में जो परिवर्तन आना प्रारम्भ हुआ वह बीसवीं सदी के अन्तिम कुछ दशकों में वहुत तेजी से बढ़ा। यहां तक कि नारी- लेखिकाओं ने भी, जिनकी संख्या इस अवधि में शताधिक हो गयी, इस दिशा में तेजी से कदम उठाये। उस पर आगे यथा स्थान विचार किया जायेगा क्योंकि वह अपने आप में एक असाधारण परिवर्तन है। लेकिन उससे पूर्व हम उन सामाजिक परिवर्तनों पर दृष्टिपात करें जो नारी की सामाजिक चेतना में एक महत्वपूर्ण घटक बन गयें हैं और बन रहे हैं।

१- हिन्दी कहानी : बदलते प्रतिमान - डा० रघुवर दयाल वार्ष्णेय - पृ० - १४०

२- वही - पृ० १४०- १४१

डा० रघुवर दयाल वार्ष्णेय के अनुसार तो 'हमारे सब सम्बन्ध सन्दिग्ध और प्रश्न बन गए हैं। आज बाप-बेटे अपने सम्बन्धों को नकार करते दोस्तों जैसा व्यवहार करने लगे हैं, साथ बैठकर शराब पीतें हैं, भाई- बहिन आपस में कहनी - अनकहनी कहते - सुनते हैं, पति-पत्नी अलग- अलग दोस्त रखते हैं, पुराने प्रेम प्रसंगों की चर्चा करते हैं, अलग- अलग काम करते हैं, एक दूसरे से मेहमानों या दोस्तों जैसा व्यवहार करते हैं, जब मन होता है अलग हो जाते हैं। इन सब वास्तविकताओं को नयी कहानी ने अपना विषय बनाया है, प्राचीन सामन्ती सम्बन्धों से लड़ने की शक्ति बटोरी है, और प्राचीन संस्कारों से उनका मोह टूटने लगा है। बर्ट्रेण्ड रसेल ने एक स्थान पर यह महसूस करते हुए लिखा है कि धर्म और परलोक के शिकंजे से मुक्ति और गर्भ निरोधक विधियों ने स्त्री- पुरूषों के सम्बन्धों में भीषण संक्रान्ति पैदा कर दी है।'[1]

स्वभावतः इसका प्रभाव साहित्य में भी पड़ना था और साहित्य में भी सबसे अधिक कहानी और उपन्यास साहित्य पर। फिर क्या था, हिन्दी कहानीकारों को विशेषकर पाश्चात्य प्रभाव से पराभूत परवर्ती कहानीकारों ने आधुनिकता के नाम पर न जाने क्या- क्या लिखना और थोपना प्रारम्भ कर दिया। अत्यन्त हैरत अंगेज बात यह है कि महिला कहानी कार भी इसमें एक भी कदम पीछे नहीं रहीं, मानो समानता सबसे पहले इसी क्षेत्र में करनी आवश्यक थी। जिस देश में अभी महिलाओं को समानता के मूलभूत अधिकारों पर ही हमला बचाना हो वहां इस प्रकार की उतावली उन्हीं के लिए घातक सिद्ध होती रहेगी। पुरूष वर्ग अब भी नारी को अपनी विलासिता की पूर्ति के लिए कठपुतली की तरह उपयोग करता है या अवसर मिलते ही करना चाहता है और नारी भी जब तक चाहे अनचाहे उसकी वासना को भड़काने का अभिनय समाज में (या नाटकों, फिल्मों या टी० वी० आदि पर या विज्ञापनों में एवं माडल गर्ल के रूप में भी) करती रहेगी तब तक नारी के सम्मान, समानता की कल्पना भी दिवा स्वप्न ही सिद्ध होगा। ऐसा नहीं है कि नारी को सदा यह विवशतावश ही वेश्यावृत्ति की तरह करना पड़ रहा हो।

१- हिन्दी कहानी : बदलते प्रतिमान - डा० रघुवर दयाल वार्ष्णेय - पृ०- १४२

चतुर्थ अध्याय

(अ) नारी मुक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि

ब्रह्म समाज और नारी मुक्ति आन्दोलन
प्रार्थना समाज और नारी मुक्ति आन्दोलन
परमहंस सभा और नारी मुक्ति आन्दोलन
आर्य समाज और नारी मुक्ति आन्दोलन
नारी शिक्षा और नारी मुक्ति आन्दोलनं
शशिपाद बनर्जी का महिला शिक्षा विद्यालय
शरत् चन्द्र का नारी मुक्ति में योगदान
पारसी समाज और नारी शिक्षा
दादा भाई नौरोजी तथा अन्य प्रमुख पारसियों का योगदान
ज्योति बा फुले का योगदान
कर्वेजी का प्रथम महिला विश्व विद्यालय
गोपाल कृष्ण गोखले का भारत सेवक समाज

(ब) भारतीय नारी की सामाजिक चेतना पर नारी मुक्ति आन्दोलन का प्रभाव

विभिन्न संस्थाओं का गठन और जन जागृति
विदेशी महिलाओं का नारी जागृति में योगदान

(स) हिन्दी कहानियों में नारी मुक्ति आन्दोलन और नारी की सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति

चतुर्थ अध्याय

अ- नारी मुक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि

जब हम भारत के पुनर्जागरण काल के सामाजिक धार्मिक, आन्दोलनों के इतिहास, उनके कार्य कलाप और उनके उद्देश्यों पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि उनमें सभी की मुख्य समस्या नारी को समाज में सम्मानित स्थान दिलाने की थी।

ब्रह्मसमाज और नारी मुक्ति अन्दोलन :-

सबसे पहला तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण धार्मिक -सामाजिक आन्दोलन ब्रह्मसमाज के रूप में उभरा जिसके प्रर्वतक राजा राम मोहन राय थे। वे एक नारी समस्या को लेकर आगे बढ़े। उनके भाई की मृत्यु पर उनकी भाभी को जबरन जिन्दा चिता पर चढ़ा कर सती बना दिया गया। इसका उनके मन पर गहरा असर पड़ा। उन्होंने सती प्रथा के विरोध में एक लेख लिखा जो नारी मुक्ति आन्दोलन का सर्वप्रथम एवं महत्वपूर्ण दस्तावेज है। उन्होंने ही सर्वप्रथम इस समस्या पर गम्भीरता से विचार किया और उनके प्रयासों से लार्ड विलियम बैंटिक ने सतीप्रथा निषेध कानून पारित करा दिया।

राजा राम मोहन राय ऐसे पुरातनवादी परिवार में पैदा हुए थे कि तत्कालीन प्रथाओं के अनुसार न केवल उनका बाल विवाह हुआ बल्कि दस वर्ष की आयु तक पहुंचते - पहुंचते वे दो बार विधुर हो चुके थे और उनके तीन विवाह हो चुके थे।।

प्रार्थना समाज और नारी मुक्ति आन्दोलन :-

राजा राम मोहन राय के बाद केशवचन्द्र सेन ने ब्रह्मसमाज का नेतृत्व अपने हाथ में लिया तब वे भी नारी समस्याओं को ही प्रमुख रूप से लक्ष्य करके चले। डा० चण्डी प्रसाद जोशी के अनुसार 'उनके सामाजिक सुधार का मुख्य केन्द्र नारी समस्याएं थीं। नारी शिक्षा, विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह का केवल प्रचार ही नहीं, वरन् उसे व्यावहारिक रूप भी दिया गया। रूढ़िवादी वर्गों के प्रवल विरोधी होने पर भी उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता देने के लिए सन् १८६२ ई० में 'ब्रहम मैरेज एक्ट' पास करवाया। ------- उन्होंने बाल विवाह का प्रवल विरोध किया। अन्तर्जातीय विवाह स्वीकार करके वर्ण व्यवस्था का आधार ही हिला दिया। यद्यपि (केशव चन्द्र) सेन के व्यक्तित्व पर यह दुर्भाग्यपूर्ण व्यंग्य है कि वे स्वयं व्यक्तिगत जीवन में आदर्शो को न निभा सके।'[1]

परमहंस सभा और नारी मुक्ति आन्दोलन :-

समाज सुधार का कार्य करने वाली महाराष्ट्र की 'परम हंस सभा' नामक गुप्त संस्था के प्रयत्न से जिसके सम्वन्ध में फरकुहर का कथन है कि इस सभा का सदस्य वही हो सकता था जो ईसाई या मुसलमान का बनाया भोजन खा सके'[2] सन् १८६७ में केशवचन्द्र सेन की प्रेरणा से बम्बई में 'प्रार्थना समाज' का जन्म हुआ। प्रार्थना समाज के मुख्यतः चार उद्देश्य थे - जाति व्यवस्था समाप्त करना, विधवा विवाह, नारी शिक्षा का प्रचार तथा बाल - विवाह का निषेध। स्पष्टतः ये सभी उद्देश्य नारी समस्याओं से जुड़े थे।

१- हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन - डा० चण्डी प्रसाद जोशी - पृ० ७- ८

२- माडर्न रिलीजस मूवमेन्ट्स इन इण्डिया - फरकुहर - पृ० - ५

केशवचन्द्र सेन ने 'इण्डियन मिरर' नामक पत्रिका की स्थापना की जिसमें सामाजिक और नैतिक प्रश्न तथा धार्मिक और आध्यात्मिक प्रश्नों पर बहस छेड़ी गयी। उन्होंने सती प्रथा तथा बाल विवाह का विरोध किया। वे महंगे हिन्दू विवाहों के भी विरोधी थे किन्तु उन्हें स्वयं अपनी कन्या का विवाह चौदह वर्ष की आयु के पूर्व करना पड़ा और उसका विवाह एक (कूच बिहार के) राजकुमार से बड़े ठाट - बाट से हुआ तथा प्राचीन (वैदिक) विधि - विधान के अनुसार हुआ। इस प्रकार वे स्वयं उन नियमों का पालन न कर सके जिनका वे उपदेश देते थे।"

आर्य समाज और नारी मुक्ति आन्दोलन :-

आर्य समाज ने भी नारी गौरव को पुनः प्रतिष्ठित करने में अभूतपूर्व योगदान दिया। आर्य समाज ने नारी शिक्षा का प्रचार किया और बतलाया कि वैदिक युग में स्त्रियों को शिक्षा तथा शादी का समानाधिकार प्राप्त था। आर्य समाज ने बाल विवाह का प्रवल विरोध किया। शादी के समय नारी को १६ वर्ष तथा पुरूष को २४ वर्ष, की कम से कम आयु होना आवश्यक माना।

अन्य समाज सुधारकों में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने प्रथम बार पाराशर संहिता का मत उद्धृत करके शास्त्रों की सहायता से विधवा विवाह का समर्थन किया था और उन्ही के सक्रिय सहयोग से सन् १८५६ में विधवा विवाह कानून बना था। उन्होंने बहु विवाह का प्रबल विरोध किया था।

नारी शिक्षा और नारी मुक्ति आन्दोलन :-

सन् १८६५ में शशिपाद बनर्जी ने अपनी पत्नी को ही शिक्षिका बनाकर अपने घर में महिला शिक्षा का विद्यालय पड़ोस की स्त्रियों के लिए प्रारम्भ किया। सन् १८७१ में वे अपनी पत्नी के साथ इग्लैण्ड की यात्रा पर गए। उनकी पत्नी पहली हिन्दू महिला थीं जिन्होंने समुद्र पार की यात्रा की। सन् १८७७ में इस पत्नी की मृत्यु के बाद शशिपाद बनर्जी ने विधवा विवाह किया। इनके द्वारा स्थापित विधवा- आश्रम सफलतापूर्वक चला।

इस प्रकार उन्होंने विधवा उत्पीड़न का सशक्त समाधान प्रस्तुत किया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि ने भी नारी स्वतन्त्रता, नारी शिक्षा एवं नारी स्वावलम्बन की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किए। इस सबका उल्लेख यथा - अवसर किया जा चुका है।

शरत्चन्द्र का नारी मुक्ति में योगदान :-

समाज सुधारकों की तरह ही साहित्यकार भी इस दिशा में पीछे नहीं रहे। उन्होंने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है और अपना अमूल्य योगदान दिया है। ऐसे ही एक साहित्यकार हैं - शरत्चन्द्र चटर्जी।

शरतचन्द्र को बाल्यावस्था में ही शैशव की संगिनी धीरू नामक एक कन्या ने प्रभावित किया जो उनके एक मित्र की बहिन थी। शरत् ने अपनी कई नायिकाओं का सृजन करते समय उसी को आधार बनाया। इसी जीवन काल में बाल विधवा निरूपमा के प्रति भी उनका प्रेम जगा। उसकी भी अभिव्यक्ति उनके विभिन्न उपन्यासों में विभिन्न रूपों में मिलती है।

इसी प्रकार वे कालीदासी नामक वेश्या के भी सम्पर्क में आये और 'आवारा' तथा 'चरित्र हीन' की उपाधि पायी। कालीदासी के अतिरिक्त मुजफ्फरपुर में रहते हुए पुंटी तथा राजवाला नामक वेश्याओं से भी शरत् का घनिष्ठ सम्पर्क रहा

१- १०० ग्रेट नेम्स फ्राम इण्डियाज पास्ट - वी० वी० रमन - पृ० २०५

और उनसे नारी जीवन का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रारम्भ हुआ। इसी के परिणाम - स्वरूप शरत् में नारियों के प्रति एक स्पष्ट दृष्टि बनी।

रंगून में रहते हुए (सन् १६०३ से १६०५ तक) वे वेश्यालयों में भी आते -जाते रहे। कलकत्ता में भी वे बदनाम गलियों और वेश्यालयों में नारीत्व की खोज करते रहे। उनका निबन्ध 'नारी का इतिहास' उनकी इसी अध्ययन एवं प्रभाव की अभिव्यक्ति है। उन्होंने शान्ति नामक लड़की से स्वयं विवाह करना स्वीकार कर लिया जिसका विवाह उसके पिता कुछ पैसे लेकर किसी शराबी तथा बूढ़े से कर रहे थे। किन्तु यह पत्नी दो वर्ष बाद ही प्लेग से मर गयी। उनका दूसरा विवाह मोक्षदा या हिरण्मयी से हुआ। शरत के जीवन में इन दोनों स्त्रियों के योगदान का उल्लेख करते हुए श्री विष्णु प्रभाकर ने शरत् की जीवनी 'आवारा मसीहा' में लिखा है -

'वह अत्यन्त साधारण, सरल और अशिक्षिता पर धर्मशीला, पतिव्रता और सेवा परायण महिला थी। शरत् बाबू के प्रति उनमें अगाध प्रेम और श्रद्धा थी। उस दिशा हारा निराश्रित व्यक्ति का जीवन सुखी बनाने में अपनी दृष्टि और अपनी समझ में उन्होंने कुछ भी उठा न रखा था। वह सही अर्थों में अर्पिता थीं।'[१]

शरत् का सम्पूर्ण जीवन भी नारी उद्धार को समर्पित रहा। मनुष्यता का निरूपण उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा किया। उन्होंने लिखा है - 'मैनें अनीति का प्रचार करने के लिए कलम नहीं पकड़ी। मैंने तो मनुष्य के अन्तर में छिपी हुई मनुष्यता की उस महिमा को, जिसे सब नहीं देख पाते, नाना रूपों में अंकित करके प्रस्तुत किया है।'[२]

शरत् ने कालीदासी नामक वेश्या के सम्बन्ध में बाद में लिखा - 'कितनी महान् है यह! पथभ्रष्ट हो जाने पर भी मनुष्यता के अन्दर की सद्प्रवृत्तियाँ पूरी तरह नष्ट नहीं होतीं। बाहरी रूप ही मनुष्य का असली परिचय नहीं है। अनेक सती नारियां अनेक कुकर्म करती हैं। चोरी, जालसाजी, झूठी गवाही कुछ भी उनसे नहीं छूटता। इसके विपरीत दुराचारिणियों के हृदय में भी दया- माया बनी रहती है।'[३]

इस प्रकार पीड़ित, पतित, तथा घृणित नारियों के बीच रहकर भी शरत् बाबू ने नारीत्व की खोज की और नारीत्व को सतीत्व से बढ़कर प्रतिष्ठा प्रदान की। उन्होंने यह धारणा बनाई कि सतीत्व और नारीत्व दोनों का पृथक -पृथक अस्तित्व है।

शरत चन्द्र ने हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार इलाचन्द्र जोशी को कहा था - 'सतीत्व और नारीत्व यह दोनों आदर्श समान नहीं हैं। नारी हृदय की मंगलमयी करूणा, उसकी जन्मजात मातृ वेदना, उसके सतीत्व से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। बहुत सी स्त्रियां मैंने ऐसी देखी हैं जिनका दूसरे पुरूष से कभी किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक सम्बन्ध नहीं रहा, तथापि उनके स्वभाव में अत्यन्त नीचता, घोर संकीर्णता, विद्धेष भावना और चोर वृत्ति पाई जाती है। इसके विपरीत ऐसी पतिताओं से मेरा परिचय रहा है, जिनके भीतर मैंने मातृ हृदय की निःस्वार्थ ममता और करूणा का अथाह सागर उमड़ता हुआ पाया है।'[४]

शरत के विषय में इलाचन्द्र जोशी ने लिखा है - जो साधारण से साधारण स्त्रियां भी उनके सम्पर्क में आईं उनके प्रति भी शरत् के मन में करूणा, संवेदनशीलता और सहृदयता की भावना उमड़ती रही। कभी - किसी भी नारी की आर्थिक या सहृदयताजनित विवशता से अनुचित लाभ उठाने की प्रवृत्ति उनके मन में नहीं जगी।[५]

१-आवारा मसीहा- विष्णु प्रभाकर -पृ० ३६२
२-वही- पृष्ठ-४१२
३-वही- पृष्ठ-५१
४-वही- पृष्ठ-२६५
५-वही -पृष्ठ - २६६

सचमुच ही शरत बाबू नारी जाति के मसीहा थे। उनके अभिनन्दन समारोह में उनका अभिनन्दन करते हुए नारियों ने अभिनन्दन पत्र में लिखा था -

'पराधीन देश के अधःपतित समाज की असहाय अन्तःपुर चारिणियों के हृदय की मूक आनन्द वेदना को तुमने भाषा में पूर्ण कर दिया है। उनके दुर्गतिपूर्ण जीवन के सुखदुखों की सभी अनुभूतियों को निबिड़ सहानुभूति में ढालकर तुमने साहित्य में सत्य करके प्रत्यक्ष करा दिया है। तुम्हारी अनाविष्ट दृष्टि, सूक्ष्मपर्यवेक्षण सामर्थ्य, सुगम्भीर उपलब्धि, शक्ति तथा विचित्र मानव चरित्र की अतल स्पर्शी अभिज्ञता ने निखिल नारी चरित्र की निगूढ़ प्रकृति का गुप्ततम पता पा लिया है। हे नारी चरित्र के परम रहस्य ज्ञाता, हम लोग तुम्हारी वन्दना करती हैं।'[1]

शरत् की उदार तथा उदात्त दृष्टि ही उन्हें यह गौरवपूर्ण पद दिला सकी। हिन्दी में ऐसे पुरूष लेखक का सर्वथा अभाव है जिसे ऐसा गौरवपूर्ण स्थान दिया जा सके और भविष्य में भी कोई हो सकेगा कि नहीं कौन जाने।

पारसी समाज और नारी शिक्षा :-

कलकत्ता में ब्रह्म समाजियों ने तथाबम्बई में पारसी समाज में सबसे पहले स्त्रियों का पुरूषों के साथ- साथ बाहर निकलने का आग्रह चल पड़ा। बम्बई में एल्फिन्स्टन इन्स्टीट्यूट से शिक्षित होकर निकले समाज ने स्त्री शिक्षा पर जोर दिया। अंग्रेज दम्पत्तियों के अनुकरण पर भारतीय दम्पत्ति भी बाजारों में घूमने लगे। पारसी दम्पत्तियों ने इस दिशा में पहल की।

दादा भाई नारौजी तथा अन्य प्रमुख पारसियों का योगदान :-

दादा भाई नौरोजी को पहला भारतीय माना जाता है जिन्हें आधुनिक भारतीय शिक्षण संस्थाओं में प्रोफेसर का पद मिला। वे बम्बई के सुप्रसिद्ध एलफिन्स्टन कालेज में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए। सन् १८५१ में उन्होंने 'रास्त गफ्तार' नामक पारसी अखबार प्रारम्भ किया। सन् १८५५ में वे इंग्लैण्ड गए और वहां के सफल भारतीय व्यापारी बन सके। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें बड़ौदा का दीवान बनाया। वे इंग्लैण्ड के सेन्ट्रल फिन्सबरी से सन् १८९२ से १८९५ तक ब्रिटिश कामन्स सभा (संसद) के सदस्य रहे।'[2]

उन्होंने सन् १८५५ में 'स्त्री बोध' नामक पत्रिका भी चलायी जिसे आगे चलकर खुरशेद जी नसरवान जी कामा ने आगे वढ़ाया। खुरशेद जी कामा ने पारसी लड़कियों के लिए स्कूल खुलवाने में भी बड़ा काम किया।

किन्तु यह सब भी इतनी सरलता से नहीं हो सका। पारसी समाज को भी नारी शिक्षा एवं नारी स्वतन्त्रता की दिशा में पहल करने में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। एक - दो दृष्टांतों से इसे समझा जा सकता है।

बम्बई में सन् १८२२ में बाम्बे नेटिव एज्यूकेशन सोसायटी की स्थापना की गई जिसने अंग्रेजी तथा भारतीय भाषा के स्कूल स्थापित किये किन्तु लड़कियों की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की गई। रूस्तम मसानी ने 'दादा भाई नौरोजी : दि ग्राण्ड ओल्ड मैन आव् इण्डिया' नामक जीवनी में लिखा है कि किस प्रकार दादा भाई नौरोजी जब कुछ मित्रों के साथ बम्बई के सबसे सम्भ्रान्त इलाके फोर्ट में पारसी परिवारों में परिवार के मुखिया से यह अनुरोध करने पहुँचे कि वे अपनी लड़कियों को शिक्षा लेने दें तव उन्हें घोर निराशा हुई। कई बार दादा भाई नौरोजी को ही पारसी परिवारों से इस प्रकार बेरूखी से यह कहते हुए बाहर किया गया कि पारसी अपनी बेटियों को 'मेम साहिब' नहीं बनाना चाहते। सन् १८८३ में बेलगाम के पोस्टमास्टर एस० खुरशेद जी ने

१- आवारा मसीहा - विष्णु प्रभाकर - पृ० २६७

२- १०० ग्रेट नेम्स फ्राम इण्डियाज पोस्ट - वी० वी० रमन - पृ० १६४ - १६५

यह अनुरोध किया कि उनकी बेटी को मैट्रिक्यूलेशन की परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जाय। तब तक बम्बई विश्वविद्यालय में भी लड़कियों के लिए द्वार नहीं खुले थे। किन्तु खुरशेद जी तथा उनके अनेक सहयोगियों ने तमाम अपीलें भेजकर विश्वविद्यालय से अनुमति प्राप्त कर ली।

बम्बई विश्वविद्यालय से पहली महिला स्नातक सन् १८८८ में मिस कार्नेलिया सोहराबजी थीं। वे ही सबसे पहली महिला बैरिस्टर बनीं जो सम्भवतः विश्व की सबसे पहली महिला बैरिस्टर थीं।

सन् १८६३ में आयरिश महिला एनी बेसेण्ट पहली बार भारत आयीं और दक्षिण भारत के बन्दरगाह तूतीकोरन में उतरीं। वे थियोसोफिकल सोसायटी के लिए समर्पित महिला थीं। उन्होंने सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल और कालेज खोला जो बाद में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की धुरी बना। लड़के - लड़कियों के ४० स्कूल खोले गए ताकि उनमें उत्तरदायित्व और आत्म वलिदान की भावना जागृत की जा सके। उन दिनों बम्बई के जागरूक व्यापारी जगन्नाथ शंकर सेठ ने बहुत विरोध सहन कर भी डा० जान विल्सन को लड़कियों का स्कूल खोलने के लिए अपनी जगह उपलब्ध करा दी।'[१]

ज्योति बा फुले का योगदान :-

पूना में भी सन् १८५१ में स्त्री शिक्षा की दिशा में प्रशंसनीय कार्य हुआ। ज्योति बा फुले ने लड़कियों का एक स्कूल चलाया, दलितवर्ग के बच्चों के लिए कक्षाएं चलायीं तथा विधवाओं के पुनर्विवाह का काम आगे चलाया। सन् १८७७ के अकाल के समय भी फुले जी ने बड़ा काम किया। महाराष्ट्र के पूना नगर के एक माली परिवार में जन्मे ज्योति बा फुले को उन सभी तरह की प्रताड़नाओं को सहन करना पड़ा जो उन दिनों उच्चवर्ग के लोग दलित या निम्न वर्ग को अकारण-सकारण देते रहते थे। परन्तु यह केवल इन्हीं के साथ या इन जैसे लोगों के साथ ही नहीं हुआ। महाराष्ट्र में उस समय बाजीराव पेशवा अधिपति थे और वे अपने शासन काल में 'चित्तपावन' नामक ब्राहमण उपजाति के ब्राहमणों को ही महत्व देते थे।' ब्राहमणों की अन्य उपजातियां राजकीय सम्मान और पुरस्कारों की प्राप्ति में चित्तपावन ब्राहमणों से नीचे थीं।'[२] जब ब्राहमण जाति के प्रति ही यह द्वेष भावना घर कर गयी थी तो फिर अन्य जातियों एवं शूद्रों तथा दलितों की क्या स्थिति होगी यह कल्पना ही की जा सकती है।

देश के अन्य भागों की तरह पूना में भी ईसाई प्रचारकों ने भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा देकर अपने प्रभाव में लाने का उपक्रम किया। ब्रिटिश शासन ने सन् १८२१ में पूना में हिन्दू कालेज की स्थापना की जिसे संस्कृत कालेज भी कहते थे किन्तु उसमें केवल ब्राहमण छात्र ही शिक्षा प्राप्त कर सकते थे।

ज्योति बा फुले जब ७ वर्ष के थे तो उन्हें एक मराठी पाठशाला में प्रवेश दिलाया गया। परन्तु 'बम्बई नेटिव एज्यूकेशन सोसायटी' के संकेत पर सोसायटी विद्यालय से छोटी जाति के छात्रों को निकाल दिया गया। ज्योति राव फुले भी उसी समय विद्यालय से हटा लिए गए। परन्तु कुछ वर्ष बाद उन्होंने सन् १८४१ में पुनः मिशन स्कूल में प्रवेश लिया जो स्काटलैण्ड के मिशन द्वारा संचालित था। किन्तु ज्योति बा फुले तथा उनके तीन ब्राहमण मित्रों पर ईसाइत का प्रभाव नहीं पड़ा। सन् १८४७ में उन्होंने मिशन स्कूल की शिक्षा पूरी कर ली। 'ज्योति (बा फूले) ने अपनी पुस्तक में स्पष्ट लिखा है कि स्वतन्त्रता एवं राष्ट्रीयता का बीज उनके मस्तिष्क में उनके ब्राहमण अध्यापकों तथा ब्राहमण मित्रों ने बोया था।'[३]

किन्तु एक ब्राहमण मित्र के विवाह के निमन्त्रण में ब्राहमणों के साथ चलने पर अन्य ब्राहमणों ने ज्योति बा फुले का घोर अपमान किया। उनके पिता ने अपने अपमानित पुत्र का जिन शब्दों में परितोष करना चाहा उनसे तत्कालीन स्थिति का पता चलता है -

---

१- गोदरेज : ए हण्ड्रेड इयर्स - बी० के० करंजिया - पृ० १०- ११ से उद्धृत।
२- महात्मा ज्योति बा फुले - डा० ब्रजलाल वर्मा - पृ० - ४
३- वही - पृ०- ११- १२

'वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राहमण उच्च वर्ग में आते हैं। हिन्दू समाज में धर्म के वे केन्द्र बिंदु हैं। हम लोग शूद्र वर्ण में नीच जाति के हैं। यह ब्राहमणों की महती कृपा थी कि उन्होंने तुमको केवल वहां से भगा दिया, मारा पीट नहीं। मैंने गैर-ब्राहमणों को ब्राहमणों के द्वारा किसी भी भूल पर हाथी के नीचे गिराकर कुचलते देखा है। और तो और गैर -ब्राहमण जातियों के लोगों के लिए अच्छे ढंग के वस्त्र धारण करना निषेध है। पूना की सड़कों मे शूद्र तथा अतिशूद्र वर्ण के लोगों को कमर में किसी पेड़ की पत्ती खोंसना पड़ता था। दूर से ही ब्राहमणों को पता हो जाता था कि शूद्र जा रहा है तो उससे वे दूर रहते थे इसलिए कि कहीं छू न जाय। शूद्र सूर्योदय से पहले या सूर्योदय के बाद सड़कों पर नहीं चल सकते थे।'[1]

कर्वे जी का प्रथम महिला विश्वविद्यालय :-

सन् १६०६ से १६१२ के बीच देश में बहुत से महिला आश्रम खोले गए। इनमें डी० के० कर्वे का पूना का हिन्दू विधवाश्रम अपने ढंग का अनोखा रहा। इसे काफी समर्थन प्राप्त हुआ। कर्वेजी ने स्वयं अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के बाद एक विधवा स्त्री से सन् १८६३ में विवाह किया। उसी वर्ष उन्होंने एक संस्था चलायी जिसमें विधवा स्त्री से विवाह करने वालों को तथा जो ऐसे विवाहितों के साथ खान-पान कर सकें, ऐसे लोगों को प्रवेश मिला। श्री कर्वे जी ने ही भारत के सर्व प्रथम महिला विश्वविद्यालय की स्थापना २० जून,१६१६ को की जो भारत में एक अत्यन्त अनोखी घटना थी।

यह अत्यन्त आश्चर्यजनक एवं प्रशंसनीय बात है कि भारत के प्रथम महिला विश्वविद्यालय के संस्थापक घोण्डो केशव कर्वे मात्र २० रूपये वेतन पाने वाले क्लर्क थे। वेतन में से बचत कर समाज सेवा का जो आदर्श उन्होंने उपस्थित किया वह अपने ढंग का एक मात्र प्रयास है। विधुर हो जाने पर ब्राह्मण कर्वे ने किसी बालिका से पुनः विवाह नहीं किया वरन् विधवा विवाह किया और एक विधवा आश्रम की नींव डाली। पहले यह स्कूल के रूप में चला फिर सन् १६१६ में महिला विश्वविद्यालय की नींव पड़ी।। इसके प्रथम उपकुलपति देश के माने हुए संस्कृत के विद्वान् सर रामकृष्ण भण्डारकर हुए। मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर देश का गौरव बढ़ाने वाला यह प्रथम विश्वविद्यालय है। जकारिया का कथन है कि यह भारत वर्ष का प्रथम स्वतन्त्र विश्वविद्यालय है जो बिना सरकारी सहायता के अपना अस्तित्व बनाए रहा।'[2] कर्वे महोदय ने व्यावहारिक दृष्टि अपनाते हुए महिलाओं को गृहविज्ञान की शिक्षा देना उपयुक्त समझा जिससे कि वे सुगृहिणी सिद्ध हो सकें। आज देश की अनेक शिक्षण संस्थाओं ने गृह विज्ञान की शिक्षा देना आवश्यक मान लिया है इसका सारा श्रेय कर्वे महोदय को ही है।

सन् १६१८ में विट्ठल भाई पटेल ने अन्तर्जातीय विवाह का बिल प्रस्तुत किया। शीघ्र ही दहेज न लेने के लिए सारे देश में प्रतिज्ञाएं करायी जाने लगीं। १ फरवरी, १६२७ को हर विलास सारडा ने बाल विवाह प्रतिबंधक बिल प्रस्तुत किया जो सन् १६२६ में पारित हो गया। इसके अन्तर्गत १४ वर्ष से कम आयु की लड़की तथा १८ वर्ष से कम आयु के लड़के का विवाह किया जाना कानूनन निषिद्ध हो गया। इसके पूर्व बाल विवाह के विरोध में जनमत तैयार किया गया था और पहले लड़कियों की आयु १० वर्ष तथा बाद में १२ वर्ष मान ली गयी थी। वर्तमान समय (सन् १६६८) में कानूनी स्थिति यह बन गयी है कि १८ वर्ष से कम आयु की लड़की तथा २१ वर्ष से कम आयु के लड़के का विवाह नहीं किया जा सकता है।

बम्बई में डाक्टर एम० आर० जयकर ने तथा मद्रास में डाक्टर मूथू लक्ष्मी रेड्डी ने समाज सुधार का काफी काम किया।

गोपाल कृष्ण गोखले का भारत सेवक समाज :-

सन् १६०५ ई० में श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने भारत सेवक समाज की स्थापना की थी। इस संस्था का उद्देश्य देश के लिए सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओं का निर्माण करना था। भारत सेवक समाज वस्तुतः प्रथम विशुद्ध सामाजिक संस्था थी

१- महात्मा ज्योति बा फुले - डा० ब्रजलाल वर्मा - पृ० - १३
२- रिनेसां इण्डिया - जकारिया - पृ० - ६५

क्योकि इससे पूर्व की सामाजिक संस्थाओं में धार्मिक पक्ष प्रधान था तथा सामाजिक पक्ष गौण था। अतः उन संस्थाओं को शुद्ध सामाजिक संस्था नहीं कहा जा सकता। भारत सेवक समाज का एक नियम यह था कि उसका सदस्य वही व्यक्ति बन सकता था जो कम से कम ग्रेजुएट हो। इससे यद्यपि अनेक उत्साही देश सेवी अपना योगदान देने के लिए सदस्य बनने से वंचित रह गए होंगे किन्तु इससे यह भी सिद्ध हो गया कि देश सेवा का गुरूतर भार शिक्षितों को ही वहन करना था। भारत सेवक समाज ने नारी शिक्षा की दिशा में भी सराहनीय कार्य किया।

उन्नींसवी शती के सामाजिक आन्दोलनों के पीछे निहित दृष्टिकोण, उनकी कार्य प्रणाली तथा उनकी सफलता - असफलता पर अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए डा० चण्डी प्रसाद जोशी ने ठीक ही लिखा है कि -

'१९वीं शताब्दी के सभी प्रमुख सामाजिक आन्दोलन धार्मिक भावना से प्रेरित थे। उन्हें शुद्ध सामाजिक आन्दोलन नहीं कहा जा सकता। धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्वरूप ही उनका प्रधान था लेकिन आधुनिक युग के समाज तथा समस्याओं को वे भुला न सके। वास्तविक तथ्य तो यह है कि हिन्दू समाज की विकृतियों से क्षुब्ध होकर रूढ़ियों का विरोध करने की प्रेरणा जगी थी लेकिन समाज की विकृतियों का कारण धर्म समझा गया अतः हिन्दू धर्म में परिवर्तन करना ही मुख्य उद्देश्य बन गया।

आज उस युग के समाज सुधारकों के त्याग . तथा साहस का महत्व समझना आवश्यक हैं। उस युग में रूढ़िवादी समाज का विरोध करना ही सबसे बड़ी क्रान्ति थी। सुधारकों को गुप्त सभाएँ भी संगाठित करनी पड़ती थीं। समस्याओं का समाधान ढूंढना सरल कार्य न था। 'ओ मेले' का कथन है कि विधवा विवाह का समाज इतना विरोध करता था कि सुधारकों ने विधवा को स्वावलम्बी बनने के लिए शिक्षा का सहारा लिया।'[1] यह आश्चर्य जनक तथ्य है कि विधवा विवाह समाज द्वारा स्वीकृत न होने के कारण नारी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ। यही विधवाएं फिर नारी जागरण की कर्णधार बनीं।[2]

(ब) भारतीय नारी की सामाजिक चेतना पर नारी मुक्ति आन्दोलन का प्रभाव :-

ऊपर इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान दिलाया गया है कि नारी मुक्ति आन्दोलन का श्रीगणेश पुरूषों द्वारा किया गया क्योंकि सामाजिक सुधारों के लिए यह सबसे अधिक आवश्यक समझा गया कि नारी को मुक्त किया जाय तभी सामाजिक मुक्ति और राजनीतिक मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। इसीलिए राजा राममोहन राय ने नारी पर किए जा रहे अमानुषिक अत्याचारों को रोकने के लिए सर्वप्रथम सती प्रथा का विरोध आरम्भ किया।

उन्होंने न केवल नारी मुक्ति आन्दोलन के लिए जनमत तैयार किया बल्कि कानून बनवाकर वैधानिक मान्यता भी दिलवाई। उनके द्वारा सती प्रथा उन्मूलन कानून बनवाने और उनके बाद ब्रहम समाज का नेतृत्व सम्हालने वाले केशवचन्द्र सेन द्वारा भी नारी शिक्षा, विधवा विवाह और अन्तर्जातीय विवाह का प्रचार करके नारी की सामाजिक चेतना को बल दिया गया। उन्होंने सन् १८६२ ई० में ब्रहम मैरज एक्ट पारित करा कर एक साहसपूर्ण कदम उठाया। वे बाल विवाह का भी विरोध करते रहे जिसके कारण ही विधवा समस्या और सती प्रथा की समस्या भीषण बाढ़ सी समाज में फैल गयी थी।

इस प्रकार के नारी मुक्ति आन्दोलनों के कारण बम्बई और कलकत्ता में और खासकर बम्बई में सर्वप्रथम भारतीय दम्पत्ति अंग्रेज दम्पत्तियों की तरह साथ - साथ सार्वजनिक स्थानों में घूमने - फिरने तथा समारोहों, सभाओं में भाग लेने लगे। बम्बई में यह सबसे पहले पारसी समाज में प्रारम्भ हुआ।

भारतीय नारी की सामाजिक चेतना जगाने में अनेक प्रकार की कठिनाइयां थीं और उनमें सबसे बड़ी कठिनाई थी नारी नेतृत्व का अभाव। तत्कालीन परिस्थितियों में नारियों को प्रभावी नेतृत्व नारियों से ही मिल सकता था किन्तु इस दृष्टि से नारियों

१- माडर्न इण्डिया एण्ड द वेस्ट - ओ० मेले - पृ० - ४५६

२- हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन - डा० चण्डी प्रसाद जोशी - पृ० - १० - ११

कथापुरुषों की भी उपलब्धता नगण्य थी। इसलिए प्रारम्भिक स्थिति में शशिपाद बनर्जी को अपनी पत्नी द्वारा ही पास - पड़ोस की नारियों को शिक्षित करने के लिए रात्रि पाठशालाएं प्रारम्भ करानी पड़ीं। उनके और अन्य समाज सुधारकों के योगदान की चर्चा पूर्व में की जा चुकी है।

नारी मुक्ति आन्दोलन के प्रयासों के कारण ही नारी ने विधवा - विवाह और अन्तर्जातीय विवाह स्वीकार किया, विद्यालयों में विद्याध्ययन करना प्रारम्भ किया। किन्तु फिर भी नारी आन्दोलन का संचालन करने के लिए नारियों का अभाव लम्बे समय तक खटकता रहा और जिस प्रकार भारतीय पुरुषों को जागृत करने के लिए पहले विदेशी लोगों को पहल करनी पड़ी उसी प्रकार भारतीय महिलाओं को भी जागृत करने के लिए विदेशी महिलाओं को पहल करनी पड़ी। यहाँ इस स्थिति पर दृष्टिपात कर लेना उचित होगा।

विभिन्न संस्थाओं का गठन और जन जागृति :-

भारत में अंग्रेजों ने सर्व प्रथम अनेक संस्थाएं गठित कीं जिनमें एशियाटिक सोसायटी आव् बंगाल (१७८४), कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी (१८१७), कलकत्ता स्कूल सोसायटी (१८१८), एग्रीकल्चर एण्ड हार्टी कल्चर्स सोसायटी आफ इण्डिया (१८२०) प्रमुख थीं। प्रारम्भ में कुछ हिन्दू ऐसी संस्थाओं से जुड़े और १६ फरवरी, १८२३ को हिन्दुओं ने गौड़ीय समाज की स्थापना बुद्धि, सामाजिक और सामान्य उन्नति के लिए की। राजा राममोहन राय ने ब्रहम समाज की स्थापना १८२८ में की। सन् १८२८ में कलकत्ता के हिन्दू कालेज के विद्यार्थियों ने अपने यूरोपियन शिक्षक हेनरी लुई विवियन डेरोजियो के प्रेरणाप्रद नेतृत्व में 'एकेडेमिक एसोसिएशन' का गठन किया जो विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक सुधारो पर वाद-विवाद आयोजित करता था।

१७ जनवरी, १८३० को अत्यन्त सनातनी हिन्दुओं ने 'धर्मसभा' की स्थापना की जिसके पाश्चात्य संस्थाओं की तरह अध्यक्ष, निदेशक, कोषाध्यक्ष और सचिव थे यद्यपि यह सती प्रथा पर रोक का विरोध करने के लिए गठित की गयी थी। पहले तो इस सभा ने उन उच्च हिन्दुओं की भी निन्दा की जिन्होंने बैंटिक की कार्यवाही का समर्थन किया था और प्रिवी कौन्सिल के समक्ष अपील की जिसे सन् १८३२ में ठुकरा दिया गया। परन्तु अपनी स्थापना के पाँच वर्ष बाद ही सन् १८३५ में इसी धर्म सभा के प्रमुख नेताओं ने उन्हीं बैंटिक का अभिनन्दन किया। यह सभा ३० जनवरी, १६३५ को हिन्दू कालेज में हुई जिसमें ५०० से ६०० लोग उपस्थित थे। सम्भवतः हिन्दुओं द्वारा यह पश्चिमी शैली की पहली सभा थी।

इसी प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में भी जन जागृति का अभियान विदेशियों द्वारा प्रारम्भ किया गया। वस्तुतः विदेशियों ने अपने अधिकारों की रक्षा की माँग के साथ भारतीयों के अधिकारों की रक्षा की मांग प्रारम्भ की इसलिए कुछ भारतीय भी उनके साथ जुड़े। ऐसे दो लोगों में सर द्वारका नाथ टैगोर- भारतीय थे तथा दूसरे थे- जार्ज थाम्पसन - एक विदेशी। सर द्वारका नाथ टैगोर ने हिन्दू कालेज में आयोजित एक सभा में भारतीयों की संख्या कम देखकर कहा कि वे अपना अधिकार प्राप्त करने से घवड़ाते हैं और अंग्रेजों से भयभीत हैं ---------किन्तु यदि हिन्दू कालेज तीन - चार वर्ष और चलता रहा तो ऐसी सभा में चार - गुना भारतीय आने लगेंगे। दूसरी ओर जार्ज थाम्पसन जो सन् १८४३ में सर द्वारका नाथ टैगोर के साथ इंग्लैण्ड से भारत आए थे संवैधानिक तरीके से अधिकारों के लिए लड़ने का पहला पाठ पढ़ाने वाले सिद्ध हुए।

जार्ज थाम्पसन ने न केवल देश भर में व्याख्यान देकर जोश फैलाकर बल्कि कलकत्ता में लगातार साप्ताहिक व्याख्यान देकर भारतीयों को जागने तथा अपनी शिकायतें स्वयं करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कहा- 'भारत में विदेशी शासक हैं, विदेशी काउंसिलर हैं, विदेशी इतिहासज्ञ हैं, विदेशी बदनाम करने वाले हैं और विदेशी एडवोकेट हैं। यहाँ तक कि टाउन हाल की सभा में विदेशी वक्ता भी रहते हैं। भारत के इंग्लैण्ड में एजेण्ट भी विदेशी हैं, क्या यह होना चाहिए, क्या यही होते रहना चाहिए, यह कब बदलेगा।' उन्होंने कहा कि खराब कानूनों और खराब प्रशासन के लिए स्वयं भारतीय जिम्मेदार हैं। आप कोई सलाह नहीं देते, आप कोई विरोध नहीं करते, आप कोई संशोधन नहीं सुझाते।'

इस प्रकार की ओजस्वी वक्तृता का नवयुवक बंगालियों पर जादुई असर पड़ा। इसलिए जार्ज थाम्पसन को भारत में 'राजनीतिक शिक्षा का पिता' कहा जाता है। कहना न होगा कि इसी जन जागृति ने नारी मुक्ति आन्दोलन और भारतीय नारी की सामाजिक चेतना में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। कलकत्ता के हिन्दू कालेज और बम्बई के एलफिन्स्टन कालेज ने ऐसे समाज सुधारकों को जन्म दिया जो नारी मुक्ति आन्दोलन से पूरी तरह से जुड़े।

विदेशी महिलाओं का नारी जागृति में योगदान :-

लेकिन इससे पूर्व अनेक विदेशी महिलाओं ने भारत में नारी जागरण की दिशा में अभूतपूर्व योगदान किया। इनमें मैडम ब्लावत्सकी (१८३१- १८९१) जो सन् १८७८ में भारत आयीं और थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना की, उल्लेखनीय हैं। ४२ वर्ष की उम्र में एनी बेसेण्ट उनसे प्रभावित होकर सन् १८९३ में भारत आयीं। इन दोनों महिलाओं ने भारतीय धर्म और दर्शन से प्रभावित होकर भारत में कार्य करना प्रारम्भ किया। अतः उनका भारतीय महिलाओं पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। एनी बेसेण्ट तो बाद में कांग्रेस अध्यक्षा भी बनीं जो कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष थीं और वह भी विदेशी। उनके बाद यह गौरवपूर्ण पद प्रथम भारतीय महिला सरोजिनी नायडू को प्राप्त हुआ।

दूसरी ओर हम पाते हैं कि स्वामी विवेकानन्द ने जब भारत में महिलाओं में सामाजिक चेतना जागाने का लक्ष्य रखा तब उनके सामने प्रबुद्ध भारतीय नारियों का अभाव खटका। सन् १८९५ में जब वे लन्दन में प्रवचन कर रहे थे तब उनके मन्त्र मुग्ध श्रोताओं मे मार्गरेट नोबल नामक महिला भी थीं। दूसरी बार जब वे इंग्लैण्ड गए तब उन्होंने सीधे- सीधे मार्गरेट नोबल से कहा कि उनके दिमाग में भारत में महिलाओं में सामाजिक चेतना जगाने की एक योजना है और वे इस कार्य में उनकी बहुत सहायता कर सकती हैं। मार्गरेट नोबल ही भारत आकर सिस्टर निवेदिता बनीं। स्वामी विवेकानन्द की धारणा थी कि यदि अब तक भारत महान महिलाएं नहीं पैदा कर सका तो उसे अन्य देशों से उधार ले लेना चाहिए।'[1] वे सन् १८९८ में कलकत्ता आयीं। उन्होंने लड़कियों के लिए एक स्कूल खोला और राम कृष्ण मिशन से जुड़ गयीं। उनका भारतीय महिलाओं के लिए एक अमर वाक्य उस समय भी प्रासंगिक था, आज भी प्रासंगिक बना हुआ है और आगे भी प्रासंगिक बना रहेगा - 'आधुनिक फैशन और पाश्चात्य फिजूलखर्ची को -----अपनी वन्दनीय विनम्रता और अपने स्नेहपूर्ण घरेलू सम्बन्धों को बर्बाद न करने दो'---------भारतीय नारियों की सेवा के प्रति उनकी ललक उनके इस सम्बोधन में मार्मिक ढंग से व्यक्त हुई है - 'मैं सदा आप सब (बहनो) से प्रार्थना करती हूँ कि अपनी इस छोटी बहन को सदा याद करती रहें और मेरे लिए प्रार्थना करती रहें जो इस सुन्दर और पवित्र देश को प्यार करती है और जो आपकी अधिक से अधिक प्रभावी ढंग से सेवा करने की आकांक्षा रखती है।

इसी प्रकार सन् १८७० में भारत आयीं डा० क्लारा ए० स्वैन ने चिकित्सालय चलाया और अकेले उसे सम्हाल न सकने के कारण १४ महिला विद्यार्थियों को चिकित्सा की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। इसमें उन्हें दो प्रकार के विरोधों का सामना करना पड़ा - जो उस समय भारत में प्रबल थे। एक तो शिक्षा में महिलाओं को बढ़ाना और वह भी घर और परिवार से बाहर के व्यवसाय में तथा दूसरा पाश्चात्य चिकित्सा के प्रति सामान्य सन्देह की भावना। तथापि उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और साहस पूर्वक उन महिलाओं को शरीर रचना आदि का ज्ञान कराया। दो वर्ष बाद वे सिविल सर्जन द्वारा ली गई परीक्षा में उत्तीर्ण पायी गयीं और इस प्रकार भारत में चिकित्सा क्षेत्र में भारतीय नारियों का पदार्पण हुआ। उन्होंने रामपुर के नवाब की उदारता से महिलाओं के लिए एक अस्पताल खोला जहां भर्ती होने वाले मरीज यह कहते पाये गए कि वे बीमार न होने पर भी वहां आना चाहेंगे।'[2]

इस प्रकार की लगन के फलस्वरूप जब १९०६ में वे भारत पुनः आयीं तब मेथडिस्ट मिशन के एक हजार स्कूल थे और उनमें दस हजार लड़कियां शिक्षा ले रही थीं।

१- दि कम्पलीट वर्क्स आव् सिस्टर निवेदिता - सं० - पी० आत्मपूर्ण - पृ० - सात

२- एमीनेण्ट मिशनरी वीमेन - मिसेज जे० टी० ग्रेसी - पृ० - २१३

महात्मा गान्धी द्वारा भारत कोकिला की उपाधि से सम्मानित सरोजनी नायडू यद्यपि सनातनी बंगाली ब्राहमण परिवार में पैदा हुई थीं किन्तु उन्होंने डा० गोविन्द राजलु से अन्तर्जातीय विवाह किया। उनका विवाह १६ वर्ष की अवस्था में हुआ जो प्रारम्भिक अन्तर्जातीय विवाहों और अर्न्तप्रान्तीय विवाहों में परिगणित किया जाता है। यह विवाह एक वैदिक कर्मकाण्ड से हटकर सिविल मैरेज के रूप में सम्पन्न हुआ।

वे बचपन से ही कविता करने लगी थीं और उनकी ख्याति अंग्रेजी जगत में भी हुई किन्तु वे भारत की हिन्दू महिलाओं के उत्पीड़न से व्यथित रहती थीं और वे उनके उद्धार के प्रति सतत जागरूक रहीं। वे भारतीय महिलाओं में राजनीतिक चेतना भी जाग्रत करना चाहतीं थीं। इसलिए वे अखिल भारतीय महिला परिषद से सक्रिय रूप से जुड़ी रहीं और उसकी अध्यक्ष बनीं। उस सम्बन्ध में सारे भारत की यात्रा करती रहीं। कांग्रेस की अध्यक्ष बनकर और बाद में स्वतन्त्र भारत के सबसे बड़े प्रदेश उत्तर प्रदेश की राज्यपाल बनकर महिलाओं को राजनीति में भी आगे आने के लिए प्रोत्साहित किया। इस प्रकार उन्होंने महिलाओं के लिए साहित्य के क्षेत्र में, समाज के क्षेत्र में और राजनीति के क्षेत्र में स्वयं काम करके आदर्श प्रस्तुत किया।

भारतीय नारी की सामाजिक चेतना का यह क्रम तब से निर्बाध गति से बढ़ रहा है और उसके लिए नयी- नयी दिशाएं एवं दशाएँ उपलब्ध की जा रही हैं।

(स) हिन्दी कहानियों में नारी मुक्ति आन्दोलन और नारी की सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति :-

पिछले अध्याय में यह विवेचित किया जा चुका है कि किस प्रकार हिन्दी के तीन सशक्त कहानीकार - प्रेमचन्द, 'प्रसाद' एवं 'कौशिक' ने बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में नारी मुक्ति आन्दोलन से प्रभावित होकर नारी की सामाजिक चेतना का चित्रण करते हुए कहानियां लिखना प्रारम्भ किया। इनमें से प्रेमचन्द ने तो 'प्रसाद' और 'कौशिक' से पूर्व सन् १६०७ में ही उर्दू कहानी के क्षेत्र में प्रवेश कर लिया था। यह संयोग की बात ही नहीं है कि प्रेमचन्द की प्रथम हिन्दी कहानी जो सन् १६१५ में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई वह नारी समस्या से सम्बन्धित थी और उसका शीर्षक 'सौत' था। इसी प्रकार कौशिक जी की प्रथम कहानी 'रक्षा बन्धन' थी जो अक्टूबर, १६१६ में सरस्वती में प्रकाशित हुई।

इस युग की कहानियों की एक प्रमुख विशेषता नारी की सामाजिक चेतना का चित्रण ही हैं। इन नारियों को देश प्रेम के लिए व्यक्तिगत प्रेम को न्योछावर करते भी चित्रित किया गया है जैसा कि प्रसाद की 'पुरस्कार' कहानी में देखने को मिलता है। वह अपने प्रेमी को ही देश प्रेम के कारण बन्दी बनवा देती है और उसके पुरस्कार स्वरूप अपने बन्दी प्रेमी के साथ ही प्राणदण्ड भोगना चाहती है। इसी प्रकार प्रेमचन्द के 'प्रेम का उदय' में एक कंजड़ स्त्री अपने पति को कुमार्ग पर जाने के लिए पहले तो उकसाती है और फिर उसे सन्मार्ग पर लगाती है। आभूषणों के प्रति नारी सुलभ आकर्षण का परित्याग करती है और एक आदर्श नारी का उदाहरण प्रस्तुत करती है। प्रसाद जी की 'गुण्डा' कहानी में नन्हकू सिंह जमींदार से गुण्डा बना है और राजमाता विधवा हैं और दुलारी उनके पिता की जमींदारी में रहने वाली वेश्या की लड़की है। पर इस कहानी में जहाँ बनारस के गुण्डे को भी शरीफों से भी शरीफ चित्रित किया गया है वहीं राजमाता को भी आदर्श विधवा के रूप में और दुलारी को आदर्श वेश्यापुत्री के रूप में चित्रित किया गया है। नन्हकू सिंह दुलारी से गाना जरूर सुनता है पर कभी उसके कोठे पर पैर नहीं रखा। वह राजमाता के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देता है।

नारी की सामाजिक और राजनैतिक चेतना का जो बीज पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी की 'उसने कहा था' से प्रारम्भ हुआ था (जिसमें सूबेदारनी ने कहा था - 'सरकार ने बहादुर का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमक हलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की घंघरिया पलटन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती।') वह प्रसाद जी की कहानियों में पूर्णतया पल्लवित दिखता है। गुलेरी जी में राज भावना के साथ राष्ट्र भावना उसी प्रकार मिली जुली मिलती है जो भारतेन्दु युग का एक प्रमुख लक्षण थी। कहानी के क्षेत्र में गुलेरी जी की 'उसने कहा था' कहानी में राजभावना के अन्य अनेक रूप देखे जा सकते हैं। हिन्दी कहानी के अध्ययन में उनकी कहानी पर विचार करते हुए इस पक्ष की ओर किसी का ध्यान नहीं गया है। किन्तु यह अलग अध्ययन का विषय है। यहाँ इतना ही अभिप्रेत है कि आज जबकि नारियों को फौज

में भी पुरुषों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर अपना राष्ट्र के प्रति कर्तव्य निर्वाह करने के लिए अवसर दिया जा रहा है, उसकी मांग उस समय से हो रही थी।

प्रसाद जी की कहानी 'आकाशदीप' में चम्पा का वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव बुद्ध गुप्त के प्रति उसके इस कथन में देखा जा सकता है - 'बुद्ध गुप्त ! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है, सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं। सब मिलकर मेरे लिए एक शून्य है। (यहाँ पंच महाभूतों - क्षिति, जल , पावक, गगन और समीर - और उनसे उत्पन्न सृष्टि का भाव व्यक्त किया गया है) प्रिय नाविक ! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिये और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले - भाले प्राणियों के दुख की सहानुभूति और सेवा के लिए।' यहाँ नारी की सामाजिक चेतना का भाव अपने उदात्त रूप में उभरा है।

डा० महेश चन्द्र 'दिवाकर' ने माना है कि प्रेमचन्द की लोक सेवा की भावना ने यशपाल को प्रभावित किया और उनकी मानवतावादी विचारधारा ने जैनेन्द्र कुमार को।[1]

आचार्य चतुर सेन शास्त्री की कहानी 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी' में नारी की सामाजिक चेतना की एक झलक कहानी की नायिका बेगम सलीमा के उस पत्र में मिलती है जिसे वह अपने ऊपर व्यर्थ का मिथ्यादोषारोपण लगने पर स्वयं मृत्यु का वरण करने के पूर्व बादशाह सलामत को लिखती है - 'दुनिया के मालिक ! आपकी बीबी और कनीज होने की वजह से आपके हुक्म को मानकर मरती हूँ, इतनी बेइज्जती पाकर एक मलिका का मरना ही मुनासिब है, मगर इतने बड़े बादशाह को औरतों को इस कदर नाचीज तो न समझना चाहिए कि अदना - सी बेवकूफी की इतनी बड़ी सजा दी जाए।'

इस प्रसंग में डा० महेश चन्द्र 'दिवाकर' का यह अभिमत उचित प्रतीत होता है जिसमें उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि 'प्रेमचन्द युग के अन्तिम वर्षों में कहानियों में नारी के पत्नी रूप में आधुनिक नारी के दर्शन होने लगते हैं। विशेषकर सन् १६५० के बीच नारी की स्थिति में पर्याप्त अन्तर आ गया। इसीलिए इस युग की कहानियों में नारी अपनी पारिवारिक परिस्थितियों से संघर्ष करती प्रतीत होती है और वह बुराइयों के प्रति विद्रोह भी करती है। यह विद्रोह इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र कुमार और अज्ञेय की कहानियों में देखा जा सकता है।'[2]

नारी की सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का विकसित रूप आगे साठोत्तरी कहानियों की विवेचना में स्पष्ट किया जायेगा।

१- बीसवीं शती की हिन्दी कहानी का समाज मनोवैज्ञानिक अध्ययन - डा० महेशचन्द्र 'दिवाकर' - पृ० - १७०

२- वही - पृ० - १८२

पंचम अध्याय

(अ) नारी की सामाजिक चेतना के जागरण में सुधारवादी और राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमिका

विदेशी विद्वानों का योगदान
विदेशी महिलाओं का योगदान
विलियम बैंटिक का योगदान
भारतीय सुधारकों एवं उनके द्वारा स्थापित संस्थाओं
का योगदान
जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे का योगदान
गोपाल कृष्ण गोखले का योगदान
स्वामी दयानन्द का योगदान
सामाजिक सुधारों का मूल्यांकन

(ब) हिन्दी कहानियों में सुधारवादी आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रेरित नारी की
सामाजिक चेतना की विवेचना

पंचम अध्याय

(अ) नारी की सामाजिक चेतना के जागरण में सुधारवादी और राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमिका :-

भारतीय नारी की सामाजिक चेतना का प्रारम्भ किन परिस्थितियों में हुआ और कैसे लोगों का उसमें योगदान महत्वपूर्ण रहा और उनके किस प्रकार के प्रयासों से यह सम्भव हुआ - इस पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है।

भारत में पुनर्जागरण पाश्चात्य देशों के प्रभाव, उनके साहित्य, उनके ज्ञान - विज्ञान और उनके प्रयासों और पहल से भी आया। इसमें विदशी पुरुषों ने ही नहीं, विदेशी महिलाओं ने भी पहल की। उनसे प्रेरणा लेकर नयी शिक्षा प्राप्त जागरुक भारतीय भी राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तनों के लिए कटि-बद्ध हुए। यह विचित्र संयोग है कि पुरुषवर्ग ही नारी को प्रताड़ित करने के लिए उत्तरदायी था और पुरुष वर्ग को ही अपने द्वारा नारी पर किये जा रहे अत्याचारों पर विचार करने के लिए बाध्य होना पड़ा। नारी का अपने ऊपर अनिश्चित काल से किए जा रहे अमानवीय अत्याचारों को मूक एवं शान्तिपूर्ण तरीके से सहन करते रहना नयी शिक्षा प्राप्त पुरुषवर्ग के लिए सहनीय नहीं रह गया। इसलिए पुरुषवर्ग ने सुधारवादी और राष्ट्रीय आन्दोलनों के द्वारा नारी की सामाजिक समानता और सामाजिक चेतना का बीड़ा उठाया।

यहाँ हम इस दिशा में प्रारम्भ किए गए सुधारवादी आन्दोलनों और राष्ट्रीय आन्दोलनों पर तथा उनके सुत्रधारों पर दृष्टि पात करेंगे और नारी की सामाजिक चेतना में उनकी भूमिका का विहंगावलोकन करेंगे। यह इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि नारी की सामाजिक चेतना में अनेक घटक प्रभावी थे। इनमें विदेशी पुरुषों तथा महिलाओं का योगदान, साहित्य एवं पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन एंव उनकी उपलब्धता, शिक्षा का प्रसार एवं संचार साधनों का प्रसार आदि प्रमुख थे। आगे इन पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है -

विदेशी विद्वानों का योगदान :-

आधुनिक भारत के 'महान विदेशी मित्र'[1] कहे जाने वालों में से एक विलियम जोन्स (१७४६-१७९४) ने एशियाटिक सोसायटी आव् बंगाल की स्थापना की जिसे बाद में रायल एशियाटिक सोसायटी कहा गया। वह सन् १७८३ में कलकत्ता आए और वहाँ स्थापित सुप्रीम कोर्ट के जज बने। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रथम गवर्नर जनरल वारेन हैस्टिंग्स की यह नीति थी कि भारत के स्थानीय पवित्र कानूनों और नियमों में हस्तक्षेप न किया जाय। इसलिए एक आयोग गठित किया गया जिसे यह काम सौंपा गया कि वह प्राचीन या शास्त्रीय हिन्दू कानून तथा सुस्थापित प्रथाओं और परम्पराओं पर आधारित कोड तैयार करे। इसी सन्दर्भ मे विलियम जोन्स ने संस्कृत का अध्ययन किया। वह प्रतिदिन एक घण्टा संस्कृत पढ़ने - सीखने में लगाने लगा। आगे चलकर उसने कालिदास के शाकुन्तलम् का अनुवाद किया। उसने सबसे पहली बार ग्रीक और संस्कृत भाषा के तुलनात्मक अध्ययन का आग्रह किया। उसने हिन्दू कानून और मुस्लिम कानून का अंग्रेजी अनुवाद भी किया।[2]

विलियन जोन्स की ही तरह विलियम केरी (१७६१-१८३४) ने कश्मीरी भाषा की पहली पुस्तक प्रकाशित की। वह पादरी बन गया था और ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए समर्पित था। सन् १७९२ में उसने एक पुस्तक लिखी जिसमें कहा गया

१- ग्रेट नेम्स फ्राम इण्डियाज पास्ट- वी० वी० रमन - पृ० - २१३

२- वही- पृष्ठ - २१६ - २२०

कि विश्व की कुल आबादी लगभग ७३१ मिलियन लोगों में ५५७ मिलियन लोग गैर- ईसाई थे। उसकी इस पुस्तक में ईसाई बनाने के मार्ग में आने वाली बाधाओं और उनके दूर करने के उपायों की विस्तार से चर्चा थीं। इसलिए इसे अंग्रेजी भाषा का पहला और सबसे महान् मिशिनरी ग्रन्थ माना जाता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि यह पुस्तक उस समय लिखी गयी थी जब अंग्रेज शासक भारत में धार्मिक हस्तक्षेप के पक्ष में नहीं थे। साथ ही वे इस बात से भी भयभीत थे कि पाश्चात्य ज्ञान का प्रचार करने से देशी लोगों के बीच नये विचारों का भी प्रसार होगा। इसलिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने केरी को भारत आने की अनुमति नहीं दी किन्तु वह डेनमार्क के एक जहाज में चढ़कर चुपचाप सन् १७६३ में कलकत्ता आ गया। शीघ्र ही उसने बंगला भाषा का इतना अध्ययन कर लिया कि बाइबिल का उसमें अनुवाद कर सके। वह नील की खेती में नौकरी कर तर्कसंगत आय बना रहा था किन्तु उस आय का अधिकांश भाग वह मिशनरी स्कूल के शिक्षकों और विद्यार्थियों पर खर्च कर देता था। इतनी लगन के बाद भी वह हिन्दुओं और मुसलमानों को ईसाई नहीं बना पा रहा था।

सन् १८०० में वह सीरामपुर चला गया जहाँ उसने एक चर्च बनवायी, एक स्कूल स्थापित किया तथा एक मुद्रण - प्रेस भी खुलवाया। वह स्वयं प्रतिदिन उपदेश देता था। एक वर्ष बाद ही कृष्ण चन्द्र पाल नामक बढ़ई जिसकी एक ईसाई डाक्टर ने चिकित्सा की थी, पादरी बनने के लिये प्रस्तुत हो गया। २८ दिसम्बर, १८०० को हुगली के जल से एक हिन्दू का धर्मान्तरण किया गया।

सन् १८०१ तक उसने अन्य कई भारतीय भाषाएं सीख लीं। इसलिए उसे फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता में प्राच्य भाषाओं का प्रोफेसर नियुक्त किया गया। यहाँ उसने बाइबिल का अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया और बंगाली, तेलगू, पंजाबी आदि के व्याकरण ग्रन्थ तथा उन भाषाओं के शब्दकोष तैयार किए। सन् १८३२ तक सीरायपुर प्रेस ने चालीस भाषाओं में २१२,००० प्रतियां छापीं थीं। उसने कई साप्ताहिक तथा दैनिक समाचार पत्र भी निकाले। 'समाचार दर्पण' बंगाली में निकाला गया जो किसी भी गैर यूरोपीय भाषा का पहला आधुनिक समाचार पत्र था। १६वीं शताब्दी में 'फ्रेण्ड आव् इण्डिया' नामक अंग्रेजी पत्रिका कई दशकों तक प्रभावी प्रकाशन बना रहा। यद्यपि केरी ने अपने धर्म का प्रचार करने के लिए यह सब किया किन्तु उत्साही एवं सहानुभूति रखने वाले भारतीयों के साथ मिलकर उसने नवजात कन्याओं को गंगा मे फेंक देने की प्रथा का विरोध किया और उसी के प्रयास से लार्ड वेलेजली ने इस प्रथा पर प्रतिबन्ध लगा दिया।[1]

हेनरी कोलब्रोक (१७६५-१८३७) सन् १७८२ में लन्दन से भारत आया। तब वह २० वर्ष पूरे नहीं कर चुका था। उसने संस्कृत का इतना अध्ययन कर लिया कि विलियम जोन्स के अधूरे काम को पूरा करने का उत्तरदायित्व उसे सौपा गया। उसने 'पतिव्रता हिन्दू विधवा के कर्तव्य' नामक एक विद्वतापूर्ण निबन्ध तैयार कर प्रकाशित किया। उसे भी फोर्ट विलियम कालेज में संस्कृत का प्रोफेसर नियुक्त किया गया। वहां वह कम्पनी की सेवा में अंग्रेजों को संस्कृत भाषा और हिन्दू कानून का ज्ञान देता था। उसकी वेद सम्बन्धी रचनाओं से विश्व को भारतीय वेदों का ज्ञान प्राप्त हुआ।[2]

जिस प्रकार सामाजिक आन्दोलनों में विदेशियों ने पहल की उसी प्रकार राजनीतिक आन्दोलनों में भी विदेशियों ने पहल की। इसका विवेचन यथास्थान किया जायेगा।

विदेशी महिलाओं का योगदान :-

विदेशी पुरुषों की तरह ही विदेशी नारियां भी भारत में सामाजिक सुधारों की दिशा में अग्रणी रहीं। इनमें ब्लावत्सकी (१८३१-१८६१) ने सन् १८७५ में थियोसिफिकल सोसायटी की स्थापना की और कर्नल वालकाट के साथ सन् १८७८ में भारत आयीं और अगले वर्ष बम्बई से 'दि थियोसोफिस्ट' नामक पत्रिका निकाल कर उसका सम्पादन किया।

एनी बेसेण्ट (११८४७-१६३३) इतनी सक्रिय महिला थीं कि एक पादरी से विवाह करके भी बाद में न केवल पति का

१- ग्रेट नेम्स फ्राम इण्डियाज पास्ट- वी० वी० रमन - पृ० - २२१ - २२३

२- वही - पृ० - २२३ - २२५

परित्याग किया बल्कि उसके धर्म का भी परित्याग कर दिया। वह गरीबों तथा महिलाओं के समान अधिकार के लिए इंग्लैण्ड में संघर्ष करती रहीं। उन्होंने नवविवाहितों में सन्तति निरोध का प्रचार किया। ब्रिटिश लेबर पार्टी के संस्थापकों में उनकी गणना की जाती है।

वे सन् १८६३ में थियोसोफिकल सोसायटी से प्रभावित होकर भारत आयीं। भारत आते ही उन्हें लगा कि पूर्व जन्म में वे हिन्दू थीं। उनके प्रयास से सन् १६१६ में बनारस में सेन्ट्रल हिन्दू कालेज की स्थापना हुई। वे थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्ष बनीं और जे० कृष्णा मूर्ति को जो उस समय मात्र १४ वर्ष के थे, बुद्ध और ईसा की कोटि के मसीहा के रूप में देखा। वे सन् १६१७ में अखिल भारतीय कांग्रेस की अध्यक्ष बनीं। वे पहली और एक मात्र विदेशी महिला थीं जिन्हें यह पद मिला। उसके बाद सरोजनी नायडू भी कांग्रेस अध्यक्ष बनीं । उन्होंने बाल विवाह का विरोध किया।

स्वामी विवेकानन्द से प्रभावित होकर सिस्टर निवेदिता (पूर्व नाम मार्गरेट नोबल) भारत आयीं क्योंकि स्वामी विवेकानन्द ने उनसे कहा कि वे भारत में नारियों के लिए अनेक योजनाएं सोच रहे हैं और उनका विचार है कि मार्गरेट नोबल उनके इस कार्य में बड़ी सहायक हो सकती हैं। वे तत्काल तैयार हो गयीं। स्वामी विवेकानन्द यह बात भलीभाँति जानते थे कि यदि भारत महान् महिलाएं तैयार नहीं कर पा रहा तो उसे अन्य राष्ट्रों से ऐसी महिलाएं प्राप्त करनी चाहिएं। वे सन् १६६८ में कलकत्ता आ गयीं और रामकृष्ण मिशन की परम्परा में सम्मिलित होकर सिस्टर निवेदिता बन गयीं। उन्होंने कलकत्ता में एक बालिका विद्यालय चलाया जिसमें वयस्क महिलाएं भी पढ़ायी जाने लगीं।[1]

क्लारा ए० स्वैन (१८३४-१६१०) ने एक छोटी डिस्पेन्सरी खोली और १४ महिला विद्यार्थियों को चिकित्सा की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। तथापि, इसका विरोध हुआ क्योंकि लोग नहीं चाहते थे कि महिलाएं घर- परिवार से बाहर किसी व्यवसाय में लगे।। किन्तु दो वर्ष बाद उन महिलाओं ने चिकित्सा परीक्षा पास कर ली। भारत में इस प्रकार पहली बार महिलाओं को चिकित्सा की डिग्री मिली। क्लारा स्वेन ने रामपुर के नबाब की सहायता से पहला महिला अस्पताल स्थापित किया। मेथेडिस्ट मिशन की स्थापना के २५वें वर्ष में सन् १६०६ में वे जब पुनः भारत आयीं, तब तक भारत में महिला शिक्षा ने कितनी प्रगति की थी इसका आभास मिस लीलावती सिंह के उक्त अवसर पर पढ़े गये निबन्ध से मिलता है - उनके अनुसार तब तक मेथडिस्ट मिशन के एक हजार स्कूल थे तथा उनमें दस हजार लड़कियाँ शिक्षा ले रही थी।[2]

विलियम बैंटिक का योगदान :-

विलियम बैंटिक का नाम सती प्रथा रोकने के सफल प्रयास के साथ जुड़ा है। आश्चर्य की बात है कि भारत में शताब्दियों से प्रचलित सती - प्रथा को रोकने का कार्य सात समुद्र पार के एक विदेशी को करना पड़ा। इसी प्रकार की एक अन्य प्रथा थी कि नवजात कन्याओं को देवी - देवताओं की प्रसन्नता के लिए सागर में छोड़ देना। बैंटिक कानून ने इस प्रथा को भी रोक दिया। उसे ठगी के भी उन्मूलन करने का श्रेय है। यह सब उसने अपने सात वर्ष के ब्रिटिश प्रशासन की अवधि में किया। वह सन् १८३५ में भारत से वापस गया और चार वर्ष बाद पेरिस में उसका निधन हो गया। किन्तु बंगाल का गर्वनर बन कर आने के पूर्व भी वह सन् १८०३ में भारत में मद्रास का गर्वनर बन कर आया था। उस समय भी उसने हिन्दू सिपाहियों को अपने जाति सूचक चिन्हों का प्रयोग करने से रोक दिया था और साफा बांधना बाध्यकारी कर दिया था। इसे हिन्दूओं ने धर्म में हस्तक्षेप माना था और इसे ईसाई बनाने की दिशा में उठाया गया कदम समझा था। इसलिए इसका प्रतिवाद हुआ और दो आपत्ति करने वालों को नौ सौ कोड़े मारने का कठोर दण्ड दिया गया था जिससे सन् १८०६ में पहला सिपाही विद्रोह उठ खड़ा हुआ था जिसमें विद्राहियों ने बहुत से ब्रिटिश अधिकारियों को जान से मार डाला था। जब यह समाचार इंग्लैण्ड पहुंचा विलियम बैंटिक को इंग्लैण्ड वापस बुला लिया गया था। तब से वह यूरोप के कई देशों में शान्ति मिशनों में काम करता रहा था और दूसरी बार भारत आने पर उसने सती प्रथा आदि पर रोक लगायी थी।[3]

१- हण्ड्रेड ग्रेट नेम्स फ्राम इण्डियाज पास्ट- वी० वी० रमन - पृ० - २३६ - ३८

२- वही - पृ० - २४१ - ४३

३- हण्ड्रेड ग्रेट नेम्स फ्राम इण्डियाज पास्ट - वरदराज वी० रमन - पृ० २८- २६

उसने अंग्रेजी भाषा की शिक्षा का प्रसार भी किया। मैकाले के प्रसिद्ध मिनिट्स से इसमें उसे बड़ा बल मिला। इस प्रकार उसने भारत में अंग्रेजी शिक्षा प्रवर्तित कर दी। इससे भारतीयों को अंग्रेजों की सेवा में तमाम अवसर उपलब्ध हो गए। वस्तुतः बैंटिक जव दूसरी बार भारत में बंगाल का गवर्नर बन कर आया तब ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपनी विस्तार वादी नीतियों के कारण भारत में जमा किया गया अपना खजाना खाली कर चुकी थी। इसलिए बैंटिक को यह काम भी करना था कि वह किसी प्रकार ब्रिटिश खजाने को भरे। बैंटिक ने अनुभव किया कि बहुत से ऐसे पद थे जिन पर अंग्रेजों को ऊँचे वेतनों पर नियुक्त किया गया था क्योंकि वे अंग्रेज थे और दूर देश से भारत में अंग्रेजी सेवा में आए थे। यदि उन पदों पर भारतीयों को थोड़ी शिक्षा देकर नियुक्त कर दिया जाय तो बहुत धन बचाया जा सकता था। इस व्यवस्था को लागू कर उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी का बहुत धन बचा दिया जिससे इंग्लैण्ड में बैठे कम्पनी के डायरेक्टर बहुत प्रसन्न हुए।[1]

इस प्रकार विदेशी पुरुषों और स्त्रियों के योगदान के कारण भारतीयों में भी इस दिशा में प्रयास करने की प्रवृत्ति वढ़ी जिनमें अग्रणी राजा राम मोहन राय आदि का उल्लेख पूर्ववर्ती अध्यायों में किया जा चुका है। इस युग के सम्बन्ध में जकारिया ने लिखा है कि 'उस समय हिन्दू समाज तथा भारतीय राजनीति को आधुनिक रूप देना सबसे बड़ी देश सेवा समझी जाती थी।'[2]

भारतीय सुधारकों एवं उनके द्वारा स्थापित संस्थाओं का योगदान :-

राजा राम मोहन राय ने सन् १८३० में हिन्दुओं के समक्ष नया उदाहरण प्रस्तुत करते हुए समुद्र यात्रा कर इंग्लैण्ड की यात्रा की। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार समुद्र यात्रा का निषेध होने के कारण यह उनका क्रान्तिकारी कदम था। सन् १८३६ में द्वारका नाथ टैगोर के नेतृत्व में कुछ उदार हिन्दुओं ने 'तत्व बोधिनी सभा' की स्थापना की। यद्यपि देवेन्द्र नाथ टैगोर बहुत सुधारवादी नहीं थे और वेदों और ब्राहमणें की महत्ता मानते थे तथा अन्तर्जातीय विवाहों तथा विधवा विवाहों के भी समर्थक न थे, स्त्रियों के सार्वजनिक रूप से कार्य करने के भी विरोधी थे, तथापि उन्हें 'ब्रह्मर्षि' नाम से पुकारा गया। वे सन् १८४६ में अपनी जीवन लीला समाप्त होने तक ब्रहमसमाज की सेवा में लगे रहे। तथापि, अपने उपर्युक्त प्रकार के विचारों के कारण नयी शिक्षा दीक्षा से प्रभावित केशवचन्द्र सेन उनके साथ अधिक समय काम न कर पाये। ब्रहम समाज के दो रूप हो गए। देवेन्द्र नाथ ठाकुर 'आदि ब्रहम समाज' के नेता रहे और केशवचन्द्र सेन 'भारतीय ब्रहम समाज के।किन्तु ब्रहमसमाज से बड़े-वड़े प्रतिभावान् व्यक्ति तथा चिन्तक प्रभावित हुए जिससे सारे देश में समाज सुधार की लहर दौड़ गयी। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने सन् १८५६ में विधवा विवाड़ का सबल अभियान चलाया। महाराष्ट्र में 'परमहंस' नामक एक गुप्त संस्था बनी जिसके सम्बन्ध में फरकुहर का कथन है कि इस सभा का सदस्य वही हो सकता था जो ईसाई तथा मुसलमान का बनाया भोजन खा सके।'[3] सन् १८६७ में केशवचन्द्र सेन की प्रेरणा से इसी सभा ने 'प्रार्थना समाज' को जन्म दिया।

'प्रार्थना समाज' के मुख्यतः चार उद्देश्य थे - (१) जाति व्यवस्था समाप्त करना, (२) विधवा - विवाह, (३) नारी शिक्षा का प्रचार, (४) बाल विवाह का निषेध। इस लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में काम करते हुए प्रार्थना समाज ने गरीबों के लिए आठ रात्रि स्कूल खोले। पण्ढरपुर में पागलखाना तथा निराश्रित बाल आश्रम खोले। विधवा- आश्रम तथा नारी शिक्षा के लिये 'महिला संघ' खोले गए। अछूत जातियों के संघ बनाए गए।

'प्रार्थना समाज' इस अर्थ में अन्य समाजों की अपेक्षा विशेष थी कि यह धार्मिक संस्था की अपेक्षा सामाजिक संस्था अधिक रही। -------- न उसने ब्रहम समाज की तरह अंग्रेजियत की ओर लालसा भरी दृष्टि से देखा और न आर्य समाज की तरह प्राचीन गौरव की गुहार मचाई। 'प्रार्थना समाज' ने इन 'समाजों' की भांति अन्य समाज की रचना नहीं की, वरन् हिन्दू समाज में ही रहकर उसका सुधार करता रहा। उसके सामने सदैव 'मनुष्य की सेवा में ही ईश्वर का प्रेम है' का आदर्श

१- हण्ड्रेड ग्रेट नेम्स फ्राम इण्डियाज पास्ट - वरदराज वी० रमन - पृ० २८

२- रिनेसां इण्डिया - जकारिया - पृ०- २१

३- माडर्न रिलीजस मूवमेण्ट्स इन इण्डिया - फरकुहर - पृ० ५

रहा।[1]

सन् १८६७ में विधवा विवाह को कानूनी मान्यता मिली। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने ही हिन्दू बालिका विद्यालय की नींव सन् १८४६ में डाली।

प्रार्थना समाज नें अनेक सामाजिक कार्य किए जिनमें महाराष्ट्र के पण्ढरपुर नामक तीर्थ स्थान में अनाथालय की स्थापना एक प्रमुख कार्य है। केशव चन्द्र सेन ने बाल विवाह के विरोध में तथा विधवा विवाह एवं अन्तर्जातीय विवाह के सम्बन्ध में सरकार से कानून पारित कराये।

जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे का योगदान :-

प्रार्थना समाज में बाद में जस्टिस गोविन्द महादेव रानाडे जैसे समाज सुधारकों ने बड़ा काम किया। उनके कार्यो से प्रार्थना समाज वहुत लोकप्रिय हो गया। उन्होंने धार्मिक कार्यो के साथ - साथ राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक कार्यो में भी भाग लिया। शिक्षा प्रसार के लिए उन्होंने पूना में दक्षिण शिक्षण सभा (दक्कन एज्यूकेशन सोसायटी) की स्थापना की। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना में भी उनका हाथ था। सन् १८८७ में जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे ने भारतीय राष्ट्रीय सामाजिक परिषद की स्थापना की जिसने समाज सुधार के बहुत से कार्य किए और जिसके वार्षिक अधिवेशन अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशनों के साथ हुए। इस महान् मेधावी महापुरुष को एण्ड्रूज महोदय ने राजा राम मोहन राय तथा सर सैय्यद अहमद खां से भी अधिक प्रगतिशील सुधारक कहा है।

रानाडे को उन्नीसवी शती के अन्तिम २५ वर्षो में भारत के इतिहास का सबसे बड़ा नाम माना जाता है। तीस वर्ष की अवस्था में वे सन् १८७१ में पूना पहुंचे और फिर बराबर उठते गए। वे बम्बई विश्वविद्यालय के प्रारम्भिक स्नातकों में से थे जैसे कि बंकिम चन्द्र चटर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय से पहले बी० ए० करने वालों में थे।

रानाडे ने 'इन्दु प्रकाश' नामक पत्रिका का सम्पादन किया। वे राजा राम मोहन राय से प्रभावित होकर धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों के लिए सक्रिय हुए। उन्होंने वाल विवाह की बुराईयों का उद्घाटन किया। यद्यपि उनका स्वयं का विवाह १२ वर्ष की अवस्था में ६ वर्ष की कन्या से हुआ था जैसा कि उन दिनों प्रचलित परम्परा थी। उन्होंने लड़के - लड़कियों की विवाह की न्यूनतम आयु को बढ़ाने का अनुरोध सरकार से किया। किन्तु उन्हें स्वयं अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के एक माह के भीतर ही पुनः ग्यारह वर्ष की लड़की से विवाह करना पड़ा जब कि उस समय उनकी स्वयं की आयु के ३० वर्ष पूरे हो चुके थे। इससे सामाजिक सुधारा कों बड़ा धक्का पहुंचा।

उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन किया और शास्त्रों से यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि विधवा विवाह का निषेध शास्त्रों में नहीं था। उन्होंने विधवा पुनर्विवाह संघ की स्थापना की और उस ईसाई महिला की उदारतापूर्वक सहायता की जो एक विधवाश्रम चला रही थी। उन्होंने कहा कि 'यदि हमारा पौरुष हमारे घर की महिलाओं पर ही अत्याचार करने के लिए है तो यह नीचता की पराकाष्ठा है।'

अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करने के लिए उन्हें धर्म बहिष्कृत तक किया गया किन्तु उन्होंने समाज का विरोध नहीं किया और धर्म में पुनः सम्मिलित होने के लिए प्रायश्चित तक किया।[2]

१- रिनेसां इण्डिया - जकारिया - पृ० - ४
२- वही - वी० वी० रमन - पृ० - २०४

गोपाल कृष्ण गोखले का योगदान :-

गोपाल कृष्ण गोखले का जन्म ६ मई, १८६६ को कोल्हापुर (महाराष्ट्र) के एक चित पावन ब्राहमण परिवार में हुआ था। सन् १८८४ में बम्बई के एलफिन्स्टन कालेज से स्नातक उपाधि प्राप्त कर वे दकन एज्यूकेशन सोसायटी के सदस्य बने। वे पूना के कालेज में इतिहास एवं अर्थशास्त्र के आचार्य पद पर नियुक्त हुए। वे पूना की 'सार्वजनिक सभा' के जिसके राष्ट्रीय उत्थान में योगदान की चर्चा अन्यत्र की गई है मन्त्री रहे और उसकी पत्रिका का भी सम्पादन किया। चार वर्ष तक वे 'सुधारक' के सम्पादक रहे जिसने समाज सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

लगभग एक दशक तक वे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के सर्व प्रमुख नेता रहे और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का निर्शायक नेतृत्व करते रहे। उन्होंने सन् १९०५ के बनारस कांग्रेस की अध्यक्षता की। सन् १८९९ से १९०१ तक बम्बई विधान परिषद के और सन् १९०१ से १९१५ तक केन्द्रीय विधान परिषद के सदस्य रहे।[१] सन् १९०४ में श्री गोखले तथा चन्दावरकर ने अलग-अलग प्रतिज्ञा की कि वे सारे देश में समाज सुधार का कार्य तीव्रता से बढ़ायेंगे।

गोखले जी का जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। गोखले जी उन्हें अपना राजनीतिक गुरू मानते थे। किसी भी विषय में उनका निर्णय गोखले के लिए भी अन्तिम होता था। रानाडे और गोखले इन दोनों महापुरुषों के सानिध्य की तुलना सूर्य एवं कमल के बीच प्रातः कालीन सम्बन्धों से की जाती है।[२] इनके प्रथम मिलन को पावन संगम की संज्ञा दी गई है।[३]

रानाडे की तरह ही गोखले को दादा भाई नौरोजी ने भी प्रभावित किया। इसी प्रकार वे सर फिरोजशाह मेहता से भी प्रभावित थे। सर फिरोजशाह मेहता के विषय में वे कहा करते थे कि उनको छोड़कर उचित काम करने की अपेक्षा मैं उनके साथ मिलकर अनुचित काम भी करना अधिक पसन्द करूंगा।'[४] वे सर फिरोजशाह मेहता की तुलना चेम्बर लेन, पामरस्टोन एंवं ग्लैड स्टोन से करते थे।[५] सर फिरोजशाह मेहता के प्रति गोखले जी की निष्ठा इन शब्दों से स्पष्ट है - 'यह सत्य है कि इस देश में ऐसे अनेक एकमत नेता नहीं हैं, जो हमारा नेतृत्व कर सकें, लेकिन हम ऐसे लोगों से पूर्णतः रहित भी नहीं हैं। हमें एक ऐसा व्यक्ति प्राप्त है। वह है महान देशभक्त, उच्चकोटि के गुणों एवं विशेषताओं से युक्त और हर प्रकार से हमारा नेतृत्व करने में सक्षम-सर फिरोजशाह मेहता।'[६]

गान्धी जी गोखले जी को अपना राजनीतिक गुरू मानते थे। गान्धी जी द्वारा भारत भूमि पर सन् १९२० में अपने अहिंसात्मक प्रतिरोध का प्रयास करने के पांच वर्ष पूर्व सन् १९१५ में १९ फरवरी को गोखले जी का देहान्त हो गया। उनके विषय में गान्धी जी ने लिखा है- 'गोखले की कार्य पद्धति अद्वितीय थी। वे अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने देते थे। मैंने देखा है कि उनके तमाम सम्बन्ध देश कार्य के लिए ही होते थे। बातें भी तमाम देश कार्य के निमित्त होती थी; बातों में कहीं मलीनता, और गैर जिम्मेदारी या असत्य न दिखायी दिया। हिन्दुस्तान की गरीबी और पराधीनता उन्हें प्रतिक्षण चुभती थी।'[७]

१- गोखले - ए पालिटिकल बायोग्राफी - डी०वी० माथुर-पृ० -१८६-२०८
२- गोपाल कृष्ण गोखले - ए हिस्टारिकल बायोग्राफी - प्रो० टी० के० सहानी- पृ०-२८
३- गोखले मेरे राजनीतिक गुरू - एम० के० गान्धी -पृ०-४
४- आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन - प्रो० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा - पृ०-१६६
५- जी० के० गोखले के व्याख्यान एवं लेखन- जे० एस० हायलैण्ड -पृ०-६५५
६- गोखले - माई मास्टर - श्री निवास शास्त्री - पृ० -२५२

उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में श्री मोहम्मद अली जिन्ना का यह मूल्यांकन भी महत्वपूर्ण है-:-

उनके व्यक्तित्व एंव कृतित्व से मिलने वाली अनेक महानतम् शिक्षाओं में से एक यह है कि उनका जीवन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि अकेला व्यक्ति कितना अधिक काम करके दिखा सकता है, अपने देश तथा देशवासियों के भाग्य निर्माण में कितना अधिक और सारभूत योगदान कर सकता है और जिसके जीवन से लाखों को सच्ची प्रेरणा एवं नेतृत्व की उपलब्धि हो सकती है।'[१]

गोखले जी उदार दल के होने के नाते गरम दल के लोकमान्य तिलक से उनके राजनैतिक विचार मेल नहीं खाते थे लेकिन इसके बावजूद गोखले ने तिलक के विषय में कहा है- 'यद्यपि मैं उनकी पद्धतियों से असहमत हूँ, लेकिन मैं उनके कार्यो के ध्येय पर प्रश्नवाचक चिन्ह नहीं लगा सकता। मेरे इस कथन पर विश्वास कीजिए कि कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसने तिलक की भांति राष्ट्र के लिए त्याग किया हो, सरकार के शक्तिशाली विरोध के बावजूद अपने पूरे जीवन में इतना संघर्ष किया हो, और अपार धैर्य, साहस एवं सहनशीलता का परिचय दिया हो।[२]

गोखले जी के सन् १६१५ में देहान्त के बाद लोकमान्य तिलक ने अपने 'केशरी' पत्र के एक अंक में लिखा- 'भारत का यह हीरा, महाराष्ट्र का यह महामानव, कार्यकर्ताओं का यह राज कुमार स्थायी विश्राम की नींद सो गया है। उसकी तरफ देखो, और उसके चरणों मे नत होने का प्रयास करो।'[३]

आर्य समाज की स्थापना भी सन् १८७५ में बम्बई के गिरगांव क्षेत्र के कक्कड़वाड़ी मोहल्ले में हुई थी जिसने जातिवाद का विरोध किया, बाल विवाह का विरोध किया तथा सन्तान हीन विधवाओं के विवाह का समर्थन किया तथा धर्म परिवर्तित लोगों की शुद्धि कर पुनः हिन्दूधर्म में सम्मिलित करने का अभियान चलाया। गुरूकुलों की स्थापना और नारी शिक्षा को बहुत बढ़ावा दिया।।

स्वामी दयानन्द का योगदानः-

स्वामी दयानन्द अन्य समाज सुधारकों की भांति अंग्रेजी पढ़े- लिखे व्यक्ति न थे लेकिन सामाजिक क्षेत्र में उन जैसा क्रान्तिकारी तथा वैज्ञानिक प्रकृति का अन्य समाज सुधारक न था। बीसवीं शताब्दी में जहाँ अन्य 'समाज' इतिहास की वस्तु बन गए, आर्यसमाज आज भी जीवित है। इसका एकमात्र कारण यह है कि उसने अपने प्रचार के लिए जन साधारण तक अपनी पहुंच बनायी। ब्रहम समाज तथा प्रार्थना समाज जैसी संस्थाएँ केवल नगरों तक तथा बुद्धि जीवियों तक सीमित रहीं लेकिन आर्यसमाज जन-जन को उद्वेलित कर प्रभावित कर सका। वह केवल एक आन्दोलन ही नहीं रहा बल्कि लाखों लोगों का धर्म भी बन गया। उसने जाति के आधार के लिए ईश्वरीय विधान को स्वीकार नहीं किया बल्कि जनतन्त्रीय आधार प्रस्तुत किया। कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार उच्च जाति प्राप्त कर सकता है। आर्यसमाज ने शिक्षा का द्वार सबके लिए खोल दिया विशेष कर अछूतों के लिए क्योंकि वह चाहता था कि अछूतवर्ग भी उच्च वर्ण की समानता पा सके। आर्यसमाज ने नारी शिक्षा का भी प्रचार किया और बतलाया कि वैदिक युग में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने तथा अपनी पसन्द का विवाह करने का समानाधिकार प्राप्त था। आर्य समाज ने बाल विवाह का विरोध किया तथा ब्रह्मचर्य के महत्व को प्रतिपादित कर विवाह के समय नारी की आयु कम से कम १६ वर्ष तथा पुरुष की आयु २४ वर्ष मानी।

तथापि आर्य समाज भी अन्य विरोधों से मुक्त नहीं था। गुण कर्म स्वभाव के आधार पर जाति व्यवस्था को व्यावहारिक रूप देना सम्भव नहीं था। स्त्री शिक्षा का अधिकार देने पर भी सह-शिक्षा का आर्यसमाज ने विरोध किया। इस प्रकार की कमियों के होते हुए भी आर्य समाज अपने युग का सबसे बड़ा क्रान्तिकारी आन्दोलन था।

१- गोपाल कृष्ण गोखले - वी०आर० देवगिरिकर -पृ० २७२-७३ पर उद्वृत।

२- लाइफ आव् गोखले - श्री निवास शास्त्री

३- उदारवाद और गोपाल कृष्ण गोखले - सतीश कुमार -पृ० ५६ पर उद्वृत।

सामाजिक सुधारों का मूल्यांकन :-

वही सामाजिक सुधार शक्तिशाली तथा जीवित रह सकते हैं जो सामान्य जनता तक पहुंचे किन्तु दुर्भाग्य से भारत के प्रारम्भिक सामाजिक सुधार आन्दोलन केवल शहरी मध्यवर्ग तक ही सीमित रहे। इसीलिए ब्रह्म समाज अधिक दिन जीवित न रह सका। इसी प्रकार आर्य समाज भी अपनी पैठ गहरे तक न बना सका। ग्रामीण जनता पर उसका प्रभाव न के समान रहा। हां, प्रबुद्ध शिक्षित एवं नगरीय मध्यवर्ग पर उसका प्रभाव आज भी किसी न किसी रूप में बना है।

वस्तुतः समाज सुधार का कोई भी आन्दोलन तब तक भारतीय परिवेश में प्रभावी नहीं हो सकता था जब तक उसे प्रभावशाली लोगों द्वारा ग्रहण न किया जाय। सामान्य जनता धन, विद्या आदि से सम्पन्न प्रभावशाली लोगों के दिशा - निर्देश पर या उनके अनुकरण पर अपने आचार - व्यवहार में परिवर्तन लाती है। प्रारम्भिक सामाजिक सुधार आन्दोलन या तो ऐसे वर्ग को प्रभावित न कर सका या उसका प्रभाव अधिक स्थायी न रहा।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह थी कि इन समाज सुधारकों ने क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का या समाज का खुले आम विरोध करने का कोई कार्य नहीं किया। उलटे वे स्वयं को प्राचीनता एवं प्राचीन शास्त्रों से जोड़े रहे। उन्होंने जो भी सुधार सुझाये उसके लिए वे शास्त्रों से प्रमाण ढूँढते रहे। डा० चण्डी प्रसाद जोशी ने ठीक ही लिखा है कि 'राम मोहन राय, रानाडे, दयानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि सभी महान् सुधारक प्राचीनता से प्रेरणा लेते रहे तथा अपने विचारों के समर्थन के लिए उन्होंने प्राचीन गौरवपूर्ण प्रगतिशील तत्वों को प्रस्तुत किया। राम मोहन राय ने नारी के साम्पत्तिक अधिकारों की मांग की पुष्टि में कात्यायन, याज्ञवल्क्य, विष्णु, वृहस्पति, मनु, नारद आदि विचारकों के मत को उद्धृत किया था।[1] रानाडे का कथन था कि वह विदेशी व्यवस्था का अनुकरण नहीं कर रहे हैं वरन् प्राचीन गौरव तथा आदर्शों को पुनः प्राप्त करना चाहते हैं।[2] स्वामी दयानन्द के बारे में प्रसिद्ध ही है कि वह पूर्व- वैदिक युग को ही धरती पर उतारना चाहते थे। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर 'पाराशर संहिता' का मत उद्धृत कर के विधवा विवाह का समर्थन करते हैं।[3]

इतना ही नहीं, जैसा कि अन्यत्र विवेचन किया गया है इन समाज सुधारकों ने स्वयं उन प्राचीन रूढ़ियों को अपने ही जीवन में माना भी है। इनमें से अनेक ने तो प्रायश्चित तक किया है। राजा राम मोहन राय एक ऐसे पुरातनवादी परिवार में पैदा हुए थे कि तत्कालीन प्रचलित प्रथाओं के अनुसार उनका न केवल बाल विवाह हुआ था बल्कि दस वर्ष की आयु तक पहुँचते - पहुँचते वे दो बार विधुर हो चुके थे और उनके तीन विवाह हो चुके थे। उनकी भाभी भी जिनके पति की मृत देह के साथ जल कर सती होने से बड़े गहरे रूप में प्रभावित होकर सती - प्रथा के विरोध में लेख लिखा और कानून बनाकर सती प्रथा पर प्रतिबन्ध लगावाने में सफल हुए, वे भाभी भी उनके भाई की पहली पत्नी नहीं थीं। केशवचन्द्र सेन भी जो बाल विवाह का विरोध कर रहे थे अपनी कन्या का विवाह चौदह वर्ष से अधिक नहीं रोक पाये। इतना ही नहीं उन्हें अपनी कन्या का विवाह बड़े ठाट - बाट से करना पड़ा और प्राचीन विधि विधान के अनुसार ही करना पड़ा।

जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे ने भी यद्यपि आगे चलकर बाल विवाह का विरोध किया किन्तु स्वयं उनका विवाह तत्कालीन प्रचलित परम्परा के अनुसार १२ वर्ष की आयु में ६ वर्ष की कन्या से हुआ। इतना ही नहीं उन्हें अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के बाद एक माह के भीतर ही पुनः ग्यारह वर्ष की लड़की से विवाह करना पड़ा जब कि उस समय स्वयं उनकी आयु ३० वर्ष हो चुकी थी। उन्होंने शास्त्रों से यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि विधवा विवाह का निषेध शास्त्रों में नहीं था। अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करने के लिए उन्हें धर्म से बहिष्कृत किया गया किन्तु उन्होंने समाज का विरोध नहीं किया और धर्म में पुनः सम्मिलित होने के लिए प्रायश्चित तक किया।

१- हिन्दुइज्म थ्रू द एजेज - डी० एस० शर्मा - पृ० ८६
२- दि सोशल रिनेशां इन इण्डिया - डा० के० सी० व्यास - १३२- ३३
३- हिन्दी उपन्यास : समाज शास्त्रीय विवेचन - डा० चण्डी प्रसाद जोशी - पृ० - ११

राजा राम मोहन राय ने हिन्दू मान्यताओं के अनुसार समुद्र यात्रा का निषेध होते हुए भी सन् १८३० में इंग्लैण्ड की यात्रा कर हिन्दुओं के सामने एक नया उदाहरण प्रस्तुत कर दिया था तथापि उसके लगभग एक शताब्दी बाद पण्डित मदन मोहन मानवीय को भारत की स्वतन्त्रता जैसे महत्वपूर्ण मामले में विचार विमर्श के लिए लन्दन में आयोजित गोल मेज परिषद में भाग लेने जाने पर सनातनी हिन्दुओं ने प्रतिवाद किया जबकि वे अपनी शुद्धि के लिए भारत से मिट्टी तथा गंगाजल आदि की व्यवस्था करके गए बताए जाते हैं और जब वे वापस लौटे तो कहा जाता है कि उन्हें भी शुद्धिकरण कराना पड़ा।

इस प्रकार के अन्तर्विरोधों के बीच भारतीय सामाजिक सुधार का कार्य आगे बढ़ाया गया और यह होना स्वाभाविक भी था। सहसा सहस्त्राब्दियों से चली आ रही किसी मान्यता को तोड़कर केवल विद्रोह किया जा सकता है, विरोध और विध्वंस एवं वैमनस्य बढ़ाया जा सकता है सौमनस्य एवं सामाजिक सुधार सम्भव नहीं है।

भारत के सामाजिक सुधारों के विषय में एक अन्य आश्चर्यजनक तथ्य का उल्लेख डा० चण्डी प्रसाद जोशी ने अपने शोध प्रबन्ध 'हिन्दी उपन्यास : समाज शास्त्रीय विवेचन' में किया है। उनके अनुसार ब्राहमण ही समाज सुधार का कार्य आगे बढ़ा रहे थे और ब्राहमण ही समाज सुधार का विरोध भी कर रहे थे। वे लिखते हैं -

'एक आश्चर्य जनक तथ्य यह है कि १६वीं शताब्दी में रूढ़िवादी हिन्दू समाज का विरोध करने वाले अधिकांश सुधारक संकीर्ण तथा रूढ़िवादी समझी जाने वाली ब्राहमण जाति के ही थे। इन प्रगतिशील सुधारकों का कट्टर विरोध भी रूढ़िवादी ब्राहमण ही करते थे। वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राहमण का कार्य विद्या पढ़ाना था। अतः अपनी सहज प्रवृत्ति के कारण अन्य जातियों की अपेक्षा ब्राहमण जाति अंग्रेजी शिक्षा का अध्ययन पहिले से ही करने लगी। अतः यह स्वाभाविक था कि वह नवीन विचारों का भी नेतृत्व करता।'[1]

किन्तु वास्तव में यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है क्योंकि भारतीय समाज में अत्यन्त अतीत काल से विद्या अध्ययन एवं अध्यापन का कार्य ब्राहमण वर्ग के पास था। उनसे अन्य वर्ण के लोग शिक्षा ग्रहण कर राजकीय कार्यो, व्यवसाय आदि या सेवा कर्म में लगते रहे किन्तु ब्राहमणों का कार्य पढ़ना और पढ़ाना ही बना रहा। अतः समस्त विद्याओं का केन्द्र वे ही रहे। इसलिए पुनर्जागरण काल के समय पाश्चात्य शिक्षा में भी वे अग्रणी रहे, उनसे प्रभाव ग्रहण करने में भी अग्रणी रहे। इतना ही नहीं, अन्य वर्णो को भी पढ़ाने का उत्तरदायित्व उन पर ही था। इसलिए अंग्रेजों को संस्कृत की शिक्षा भी उन्होंने दी और उनसे अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने ही ज्योति बा फुले जैसे समाज सुधारकों को भी आगे बढ़ने की प्रेरणा दी जैसा कि ज्योति (बा फुले) ने अपनी पुस्तक में स्पष्ट लिखा है कि स्वतन्त्रता एवं राष्ट्रीयता के बीज उनके मस्तिष्क में उनके ब्राहमण अध्यापकों तथा ब्राहमण मित्रों ने बोया था।'[2] किन्तु उन्हीं महात्मा फुले को ब्राहमणों द्वारा प्रताड़ित भी किया गया।[3]

नारी को स्वावलम्बी बनाने की दिशा में नारी शिक्षा की ओर भी ब्राहमणों ने ही ध्यान दिया। बंगाल के शशिपाद बनर्जी ने सन् १८६५ में अपनी पत्नी को ही शिक्षिका बनाकर अपने घर में महिला शिक्षा का विद्यालय पड़ोस की स्त्रियों के लिए प्रारम्भ किया। सन् १८७१ में वे अपनी पत्नी के साथ इंग्लैण्ड की यात्रा पर गए। उनकी पत्नी पहली हिन्दू महिला थीं जिन्होंने समुद्र पार की यात्रा की। सन् १८७७ में इस पत्नी की मृत्यु के बाद शशिपाद बनर्जी ने विधवा विवाह किया। इनके द्वारा स्थापित विधवाश्रम सफलतापूर्वक चला। उधर महाराष्ट्र में भी घोण्डो केशव कर्वे ने जो मात्र बीस रूपये वेतन पाने वाले क्लर्क थे अपने वेतन से बचत कर समाज सेवा का कार्य किया। उन्हें भारत के प्रथम महिला विश्वविद्यालय की स्थापना करने का श्रेय प्राप्त है। इस महिला विश्व विद्यालय के प्रथम उपकुलपति उस समय देश के माने हुए संस्कृत के विद्वान सर राम कृष्ण भण्डारकर हुए। मातृ भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर देश का गौरव बढ़ाने वाला यह प्रथम विश्वविद्यालय है। जकारिया का कथन है कि यह भारत वर्ष

१- हिन्दी उपन्यास : समाज शास्त्रीय विवेचन - डा० चण्डी प्रसाद जोशी - पृ० १२

२- महात्मा ज्योति बा फुले - डा० ब्रजलाल वर्मा - पृ० ११-१२

३- वही - पृ० - १३

का प्रथम स्वतन्त्र विश्वविद्यालय है जो बिना किसी सरकारी सहायता के अपना अस्तित्व बनाए रहा।'[1] कर्वे महोदय ने ही गृह विज्ञान की शिक्षा देना आवश्यक समझा जिसके अनुकरण पर देश की अनेक शिक्षण संस्थाओं ने गृह विज्ञाान की शिक्षा देना प्रारम्भ किया है।

नारी मुक्ति आन्दोलन में तीव्र गति से हुई प्रगति को हम डा० चण्डी प्रसाद जोशी के इस कथन में देख सकते हैं - '१६वीं शताब्दी के सभी आन्दोलनों की मुख्य समस्या नारी को समाज में सम्मानित स्थान दिलाने की थी। इन सुधारकों के अथक परिश्रम का ही यह परिणाम है कि जो नारी ६० वर्ष पूर्व सामाजिक समारोह के रूप में सती होकर आत्महत्या करने के लिए बाध्य थी, वही शताब्दी के अन्तिम वर्षो में सामाजिक रंगमंच पर आकर अपनी समस्याओं पर स्वतन्त्रतापूर्वक विचार व्यक्त करने लगी थी।'[2]

इस प्रकार सहस्त्राब्दियों से एक मजबूत सामाजिक व्यवस्था में बंधा हिन्दू समाज धीरे - धीरे किन्तु निश्चित रूप से सामाजिक सुधारों की दिशा में कदम बढाता रहा है और उसी के परिणाम स्वरूप आज हम अत्यन्त परिवर्तित परिस्थितियों में आधुनिक नारी को पाते हैं। नारी जगत की सामाजिक चेतना की स्थायी आधार शिला रखने का श्रेय ऐसे सामाजिक सुधारकों को ही दिया जाना चाहिए।

(ब) हिन्दी कहानियों में सुधारवादी आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रेरित नारी की सामाजिक चेतना की विवेचना :-

डा० गणेशदास ने उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व भारत में नारी की स्थिति और उस पर सुधारवादी आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव की विवेचना करते हुए लिखा है - 'उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व भारत में नारी की स्थिति दयनीय थी। वह अशिक्षित और घर की सीमाओं में जकड़ी हुई थी। इसके साथ ही उसके जीवन में अनेक समस्याओं - दहेज समस्या, बाल विवाह समस्या, अनमेल समस्या, सती प्रथा की समस्या, विधवा के पुनर्विवाह की समस्या आदि ने जन्म ले लिया था और पारिवारिक सामाजिक बन्धन, रीतियॉं, प्रथाएं, मान्यताएं भी उसके जीवन के साथ गहरे स्तर तक जुड़ी हुई थीं।उसके रूप, सेक्स, प्रेम और विवाह तक ही सीमित थे। इसलिए नारी वर्ग को जागरूक करना तथा उसे सामाजिक - राजनीतिक क्षेत्र में भाग लेने के लिए प्रेरित करना अपने समय की अनिवार्यता थी। इसके लिए उसे पारिवारिक सामाजिक बन्धनों से मुक्ति दिलाना तथा पुरुष के साथ समान धरातल पर प्रतिष्ठित करना आवश्यक था। इस सम्बन्ध में नेताओं, समाज सुधारकों का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। महात्मा गान्धी, राजा राम मोहन राय, राम कृष्ण परमहंस, रानी लक्ष्मी बाई, भगत सिंह आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जहॉं एक ओर नारी के लिए सामाजिक जागृति की ओर ध्यान दिया जा रहा था वहीं दूसरी ओर धार्मिक आन्दोलनों के माध्यम से अपने अपने देश की पूर्व प्राचीन परम्परा की प्रासंगिकता को भी नहीं छोड़ा गया।'[3] महात्मा गान्धी ने दोनों के बीच समन्वय किया। उन्होंने नारियों का आहवान करते हुए लिखा है - 'स्त्रियां अवश्य ही यह अपने मन से निकाल दें कि वे पुरुषों की वासना की पात्र हैं। उनकी उन्नति पुरुषों की अपेक्षा उन्हीं के हाथों में है। -------स्त्री पुरुष की सहचरी है, उनमें पुरुष के समान हर प्रकार की बौद्धिक शक्ति होती है और पुरुष के हर छोटे से छोटे कार्य में भाग लेने का और उसी की भांति स्वाधीनता का अधिकार है।'[4]

कहना न होगा कि इस सभी का प्रेमचन्द, प्रसाद एवं यशपाल की कहानियों में प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था और उसे स्पष्ट रूप से देखा भी जा सकता हैं। 'कही वह सतीत्व की भावना का प्रबल समर्थन करती हैं, कहीं वह आक्रोश व्यक्त करती हैं, कहीं मानसिक विद्रोह और कहीं व्यावहारिक धरातल पर विद्रोह कर उठी हैं। पति की क्रूरता और यातना का शिकार भी नारी को होना पड़ा है। प्रेमचन्द की कहानी 'मर्यादा की बेदी' की प्रभा यातनाओं के सहने के बाद भी उसी घर में रहना पसन्द करती

१- रिनेसां इण्डिया - जकारिया - पृ०- ६५
२- हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन - डा० चण्डी प्रसाद जोशी - पृ० १२
३- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूप - डा० गणेश दास - पृ० ६६
४- महिलाओं से - महात्मा गान्धी - पृ० - ३१ से उद्धृत।

है। 'शंखनाद' की स्त्री सीमाओं का अतिक्रमण करती है और 'आभूषण' में वह पुरुषों के आधिपत्य का विरोध करती है। नारी के प्रेमिका रूप में भी वैविध्य मिलता है। कहीं उसे भोगवादी रूप में चित्रित किया गया है (प्रेमचन्द की 'ज्वालामुखी' और 'मिस पद्मा') कहीं एकनिष्ठ प्रेमिका के रूप में जिसमें त्याग और बलिदान की भावना निहित है (प्रसाद की 'आकाश दीप', 'आँधी', प्रेमचन्द की 'एक्ट्रेस', यशपाल की 'आबरू' आदि) नारी को मां के परम्परागत रूप में ही अधिक चित्रित किया गया है जिसमें वात्सल्य की भावना ही प्रबल है। इसके अतिरिक्त वेश्या, विधवा, अनाथ, बहन- बेटी के रूप भी मिलते हैं।[१]

इतना ही नहीं, प्रेमचन्द युग से ही नारी का राष्ट्र सेविका या समाज सेविका का रूप भी मिलने लगता है। डा० लक्ष्मण दत्त गौतम के अनुसार 'प्रेमचन्द की नारी पारिवारिक तथा सामाजिक संघर्षों के बीच निखरी है। प्रेमचन्द नारी की स्वतंन्ता के प्रबल समर्थक होने के साथ ही संयम और मर्यादा के भी समर्थक थे।'[२]

परन्तु यशपाल और इलाचन्द्र जोशी तक आते - आते यह स्थिति बदल गई। यशपाल के सम्बन्ध में तो यहां तक कहा गया है कि यशपाल के नारी पात्र पुरुषों से अधिक सबल हैं। यशपाल ने नारी की आर्थिक स्वाधीनता के प्रति जोर दिया है। इलाचन्द जोशी ने अपने नारी पात्रों के सम्बन्ध में लिखा है -------'सबल और सचेत नारियों की सृष्टि करके मैंने आज के युग की संघर्षशील नारी का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से करने का प्रयास किया है।'[३]

डा० गणेशदास ने स्वातन्त्रतापूर्व नारी की सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना के विषय में यह निष्कर्ष उचित ही निकाला है कि वह घर से बाहर निकलकर संघर्ष के पथ पर पहुंच चुकी थी और सामाजिक - आर्थिक - राजनैतिक क्षेत्रों में पदार्पण करने की ललक के साथ- साथ उसमें वैयक्तिक चेतना ने जन्म ले लिया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात नारी की इन्हीं स्थितियों को और अधिक बढ़ावा मिला है जिसका चित्रण स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में किया गया है।'[४]

स्वतन्त्रता के बाद भारतीय संविधान ने जो अधिकार प्रदत्त किये उससे नारी को संवैधानिक स्तर पर पुरुष के समान धरातल पर कार्य करने का अधिकार मिला। सन् १९७१ - १९७४ से सम्बन्धित भारतीय समाज अनुसंधान परिषद - की भारत में महिलाओं की स्थिति सम्बन्धी राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट में कहा गया था कि - 'भारतीय संविधान में स्त्रियों की राजनीतिक समता को मान्यता दिया जाना न केवल परम्परागत भारतीय समाज से विरासत में प्राप्त प्रतिमानों की तुलना में एक बिल्कुल नया कदम था अपितु उस समय के सर्वाधिक उन्नत देशों के राजनीतिक आदर्शो से बढ़कर था। स्त्रियों की राजनीतिक समता की प्राप्ति में जिन दो प्रमुख शक्तियों ने उत्प्रेरकों का काम किया था, वे थीं - राष्ट्रीय आन्दोलन और महात्मा गान्धी का नेतृत्व।'[५] वहीं राजनीति के प्रति महिलाओं की सजगता के प्रमाण स्वरूप भारतीय संसद में सन् १९५२ में २१२ महिलाओं के प्रवेश का आंकड़ा दिया गया है जिसमें से १२९ लोकसभा में और ८३ राज्यसभा में।[६] सन् १९७५ में विश्व में 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' मनाये जाने से भी महिलाओं में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना जागृत हुई।

सुधारवादी आन्दोलनों और राष्ट्रीय आन्दोलनों से प्रेरणा लेकर स्वतन्त्र भारत की नारी में जो सामाजिक चेतना जागृत हुई उसमें प्रमुख हैं -

(१) विवाह पूर्व पारिवारिक दायित्वों के प्रति संघर्ष शील नारी।
(२) विवाह के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव तथा प्रेम विवाह की स्वतन्त्रता का उपभोग करने के लिए सचेष्ट नारी।

१- महिलाओं से - महात्मा गान्धी - पृ० - ९८ - ९९
२- आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में प्रगति चेतना - डा० लक्ष्मण दत्त गौतम - पृ० - १२०
३- विवेचना - इलाचन्द जोशी - पृ० - १२४
४- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूप - डा० गणेशदास - पृ०- ७३
५- भारतीय समाज अनुसन्धान परिषद- भारत में महिलाओं की स्थिति सम्बन्धी राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट-(१९७१-७४)-पृ० ११४
६- वही - पृ० - १२०

(३) विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों के प्रति दृष्टिकोण में स्वच्छन्दता की दृष्टि रखने में प्रवृत्त नारी।
(४) विवाह पूर्व प्रेम के लिए त्याग एवं बलिदान करने वाली नारी और उसके कारण अतीत एवं वर्तमान के द्वन्द्व में जीवन बिताने वाली नारी।
(५) विवाह पूर्व अस्मिता की तलाश करती नारी।
(६) विवाह, व्यभिचार, बलात्कार, वैधव्य आदि के सम्बन्ध में नारी की चेतना में अभूतपूर्व परिवर्तन।
(७) काम - वासना सम्बन्धी फ्रायड की तथा काम की भूख सम्बन्धी मार्क्स की मान्यताओं से प्रभावित नारी चेतना।

स्वतन्त्रता के साथ जहाँ नारी को कुछ अधिकार प्राप्त हुए वहां उसे उनके अभिशाप भी झेलने के लिए विवश होना पड़ा। देश - विभाजन ने सबसे अधिक नारी को ही प्रभावित एवं प्रताड़ित किया। उसे अपनी जीवन रक्षा के लिए, सतीत्व रक्षा के लिए तथा सन्तानों की रक्षा के लिए अनेक यातनाओं - शारीरिक एवं मानसिक दोनों को ही - झेलना पड़ा। इसलिए विवाह, प्रेम, परिवार और समाज सम्बन्धी मान्यताओं को ध्वस्त होना पड़ा। नारी को जबरन बलात्कार तथा व्यभिचार का शिकार होना पड़ा। उसकी रक्षा न तो समाज कर सका, न परिवार। उसके लिए विवाह संस्था एक तमाशा बन कर रह गयी।

ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक था कि इस बलात् लादी गयी स्थिति से उत्पन्न विषमताओं, कटुताओं, अभावों, कुण्ठाओं और विकृतियों का चित्रण भी हिन्दी कहानी के क्षेत्र में होता। इस प्रकार जो अभूतपूर्व परिवर्तन हिन्दी कहानी के क्षेत्र में आया उसने हिन्दी कहानी को एक नया अभिधान प्रदान किया। यह अभिधान 'नयी कहानी' है। इस का नामकरण अपने आप में सार्थक और स्पष्ट हो या न हो एक बात स्पष्ट रूप से द्योतित हुई कि यह कहानी अब तक की कहानी से सर्वथा भिन्न थी इसलिए 'नयी कहानी' थी। डा० शिव कुमार शर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृतियां' में स्पष्ट लिखा कि' सन् १९५० से नयी कविता के समान कहानी के क्षेत्र में भी सामाजिक भावनाओं, अनास्था, काम, कुण्ठा, सन्त्रास, क्षणवाद, घुटन, निराशा तथा जीवन के प्रति वितृष्णा को अभिव्यक्ति मिलने लगी है।। ऐसी कहानियों को 'नयी कहानी' की संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा।' [1]

डा० नामवरसिंह ने इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली 'कहानी' पत्रिका में सन् १९५२ के आसपास अनेक लेख लिखकर नयी कहानी को प्रतिष्ठित किया और निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' नामक कहानी को हिन्दी की प्रथम 'नयी कहानी' धोषित किया। उन्होंने लिखा-- फकत सात कहानियों का संग्रह 'परिन्दे' निर्मल वर्मा की ही पहली कृति नहीं है, बल्कि जिसे हम 'नयी कहानी' कहना चाहते हैं, उसकी भी पहली कृति है। पढ़ने पर सहसा विश्वास नहीं होता कि ये कहानियां उसी भाषा की हैं जिसमें अभी तक शहर, गांव, कस्वा और तिकोने प्रेम को लेकर कहानीकार जूझ रहे हैं। 'परिन्दे' से यह शिकायत दूर हो जाती है कि हिन्दी कथा साहित्य अभी पुराने सामाजिक संघर्ष के स्थूल घरातल पर ही 'मार्क टाइम' कर रहा है। समकालीनों मे निर्मल पहले कहानीकार हैं जिन्होंने इस दायरे को तोड़ा है - बल्कि छोड़ा है, और आज के मनुष्य की गहन आन्तरिक समास्या को उठाया है। [2]

डा० सुरेश धींगड़ा[3] ने लिखा -

फिर भी यह स्पष्ट है कि इस दशक की कहानी में प्रतिबिम्वित व्यक्ति निश्चिततः अधिक स्वस्थ सामाजिक चेतना का उत्पादन है, क्योंकि इस कहानी की पृष्ठ भूमि में द्वितीय महायुद्ध, समस्त स्वतन्त्रता आन्दोलन, बंगाल का अकाल आदि घटनाएं, स्वतन्त्रता, विभाजन और साम्प्रदायिक दंगे, शरणार्थी समस्या, बाद का भ्रष्टाचार ओर राजनीति आदि की चेतना है। यद्यपि यह

१- हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डा० शिवकुमार शर्मा - पृ० ६०२
२- कहानीः नयी कहानीः डा० नामवरसिंह - पृष्ठ - ६७
३- हिन्दी कहानीः दो दशक - डा० सुरेश धींगड़ा- पृ० - ५१

चेतना साहित्य की प्रत्येक विधा को समान रूप से प्राप्त हुई थी, तथापि इसके स्थरीकरण की प्रक्रिया हिन्दी कहानी के माध्यम से ही हुई। भीष्म साहनी, शिव प्रसाद सिंह, रामकुमार, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, फणीश्वर नाथ 'रेणु', मोहन राकेश, कृष्ण बलदेव वैद, शेखर जोशी, दयानन्द अनन्त, अमृतराय, श्रीमती विजय चौहान, शैलेश मटियानी, हरिशंकर परसाई, नागार्जुन आदि अनेक कहानीकारों को इस सामाजिक चेतना से अनुप्राणित माना जा सकता है।[1]

१- हिन्दी कहानी : दो दशक - डा० सुरेश धींगड़ा - पृ० - ५१

षष्ठ अध्याय

(अ) आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्रिया कलापों में नारी की सक्रियता

आर्थिक क्रिया कलापों में आधुनिक नारी की सक्रियता
राजनीतिक क्रिया कलापों में आधुनिक नारी की सक्रियता
सांस्कृतिक क्रिया कलापों में आधुनिक नारी की सक्रियता

(ब) हिन्दी कहानियों में आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्रिया कलापों में नारी की सामाजिक चेतना

(१) आर्थिक क्रिया कलापों में आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना
आर्थिक आत्म निर्भरता के बाद भी सामाजिक स्वतंत्रता एवं समानता का अभाव
पुरुष की निष्ठा एवं लगाव के अभाव में संत्रास एवं कुण्ठाग्रस्त नारी
समानता की होड़ में नारी का स्वच्छन्द यौनाचार
पारिवारिक सम्बन्धों में पीढ़ियों का संघर्ष
नारी के आर्थिक स्वावलम्बन में पारिवारिक बाधाएं
आर्थिक स्वावलम्बन के कारण नारी का स्वच्छन्द आचरण
आधुनिक नारी की पत्नी के रूप में विभिन्न भूमिकाएं
आधुनिक नारी की पति के प्रति प्रतिक्रिया

(२) राजनीतिक और सांस्कृतिक क्रिया कलापों में आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना

षष्ठ अध्याय

(अ) आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्रिया कलापों में आधुनिक नारी की सक्रियता :-

(१) आर्थिक क्रिया कलापों में आधुनिक नारी की सक्रियता :-

यद्यपि भारत में महिला - शिक्षा का प्रयास भारतीय पुनर्जागरण काल से ही प्रारम्भ हो गया था किन्तु उनको यह शिक्षा उन्हें साक्षर बनाने, सुयोग्य गृहिणी बनने या आवश्यकता पड़ने पर स्वावलम्बी बन सकने के उद्‌देश्य तक ही सीमित थी। वस्तुतः उस समय तक अंग्रेजों की पक्षपात पूर्ण नीति के कारण भारतीय पुरुषों को भी शासकीय सेवाओं मे स्थान नहीं दिया जाता था फिर महिलाओं को इस प्रकार की सेवाओं मे लगाने के लिए न तो परिवार ही प्रस्तुत थे और न परिवेश ही अनुकूल था। इसलिए महिलाओं के लिए विशेष रूप से बने भारत के प्रथम महिला विश्व विद्यालय तक में प्रारम्भ में इस प्रकार की शिक्षा का दृष्टिकोण नहीं रखा गया प्रतीत होता है।

किन्तु विदेशी महिलाओं, राजनेताओं, समाज सुधारकों से प्रेरणा लेकर भारत की महिलाएं भी आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्रिया कलापों में गतिशील हुई।

सन् १८६३ में केशवचन्द्र सेन के दादा दीवान राम कलम सेन बंगाल एशियाटिक सोसायटी के प्रथम भारतीय सेक्रेटरी बने। इस संस्था की स्थापना विलियम जोन्स ने की थी। श्री केशवचन्द्र सेन ब्रह्म समाज के कार्यो से प्रभावित होकर सन् १८६१ से उसमें सक्रिय भाग लेने लगे थे। सन् १८६३ में उन्होंने 'वामा बोधिनी' नामक पत्रिका निकाली जिसके माध्यम से वे जाति-भेद का विरोध करने लगे थे और अन्तर्जातीय विवाह के पक्ष में प्रचार करने लगे थे। किन्तु शीघ्र ही ब्रहम समाज के दो महान नेताओं में मतभेद उत्पन्न हो गए। देवेन्द्र जी धर्म सुधार पर अधिक बल देते थे और केशवचन्द्र सेन समाज सुधार पर अधिक बल देते थे।

सन् १८६५ में बंगाल में शशिपाद बनर्जी ने अपनी पत्नी को ही शिक्षिका बना कर अपने घर में ही महिला शिक्षा का विद्यालय पड़ोस की महिलाओं के लिये प्रारम्भ किया। सन् १८७१ में वे अपनी पत्नी को साथ लेकर इंग्लैण्ड की यात्रा पर गए। उनकी पत्नी पहली हिन्दू महिला थीं जिन्होंने समुद्र पार की यात्रा की। उस समय समुद्र यात्रा की बात तो दूर भारत में भी महिलाएं पति के साथ घर से बाहर नहीं निकलती थीं। प्रायः इसी समय कलकत्ता और बम्बई में स्त्रियों का पुरुषों के साथ - साथ बाहर निकलने का आग्रह चल पड़ा। वे अंग्रेज दम्पत्तियों के अनुकरण पर यह सब करने लगे थे। कलकत्ता में ब्रह्म समाजियों ने तथा बम्बई में पारसी समाज में सबसे पहले यह प्रथा चल पड़ी। बम्बई में एल्फिन्स्टन इन्स्टीट्यूट से शिक्षित होकर निकले समाज ने स्त्री शिक्षा पर जोर दिया। अंग्रेज दम्पत्तियों के अनुकरण पर भारतीय दम्पत्ति भी बाजारों में घूमने लगे।

पारसी लड़कियों के लिए स्कूल खुलवाने में खुरशेद जी नसरवान जी कामा ने बड़ा काम किया। कामा परिवार ने ही दादा भाई नौरोजी द्वारा सन् १८५५ में चलायी गयी 'स्त्री बोध' नामक पत्रिका को आगे बढ़ाया। दादा भाई नौरोजी को पहला

भारतीय माना जाता है जिन्हें आधुनिक भारतीय शिक्षण संस्थाओं में प्रोफेसर का पद मिला। वे बम्बई के एल्फिन्स्टन कालेज में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए। उन्होंने 'रास्त गफ्तार' नामक पारसी पत्र भी प्रारम्भ किया।

मैडम ब्लावात्सकी (१८३१ - १८९१) ने सन् १८७८ में भारत आकर थियोसोफिकल सोसायटी का, जिसकी स्थापना उन्होंने तीन वर्ष पूर्व १८७५ में की थी, कार्य आगे बढ़ाया। अगले वर्ष उन्होंने बम्बई से 'दि थियोसोफिस्ट' नामक पत्रिका निकाली।

एक अन्य आयरिश महिला ऐनी बेसेण्ट (१८४७ - १९३३) ने एक पादरी से विवाह करने के बाद न केवल पति का परित्याग किया बल्कि अपने धर्म का परित्याग कर दिया। वे इंग्लैण्ड में महिलाओं के समान अधिकार के लिए संघर्ष करती रहीं। वे एक मात्र विदेशी महिला थीं जिन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष पद मिला। उनके बाद सरोजिनी नायडू भी कांग्रेस अध्यक्ष बनीं तथा स्वतन्त्र भारत में राज्यपाल बनीं। इसी प्रकार सिस्टर निवेदिता (पूर्व नाम मार्गरेट नोबल) भी स्वामी विवेकानन्द से प्रभावित होकर भारत में नारियों के उत्थान के लिए कार्यरत हुईं।

किन्तु महिलाओं को सम्मानित कार्य दिलाने एवं उन्हें आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम क्लारा ए० स्वैन (१८३४ - १९१०) नामक महिला ने किया। उन्होंने एक छोटी सी डिस्पेन्सरी खोली और १४ महिला विद्यार्थियों को चिकित्सा की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। किन्तु उस युग में इसका विरोध हुआ क्योंकि पुरुष वर्ग यह नहीं चाहता था कि महिलाएं घर- परिवार से बाहर किसी व्यवसाय में लगे। किन्तु दो वर्ष बाद उन महिलाओं ने चिकित्सा परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। भारत में इस प्रकार पहली बार महिलाओं को चिकित्सा की डिग्री मिली। सन् १९०६ में जब वे पुनः भारत आयी तब तक भारत में महिला शिल्प ने कितनी प्रगति कर ली थी इसका आभास मिस लीलावती सिंह के उक्त अवसर पर पढ़े गए निबन्ध से मिलता है - उनके अनुसार तब तक मेथडिस्ट मिशन के एक हजार स्कूल थे तथा उनमें दस हजार लड़कियाँ शिक्षा ले रही थीं। कहना न होगा कि इनमें से अधिकांश बाद में आर्थिक रूप से स्वावलम्बी जीवन जीने के लिए प्रेरित हुईं या प्रवृत्त हुईं।

तथापि भारतीय महिलाओं का विज्ञान की शिक्षा की ओर ध्यान सन् १९२० के पश्चात ही अधिक आकृष्ट हुआ। सन् १९२० से सन् १९४७ के बीच विज्ञान का अध्ययन करने वाली भारतीय महिलाओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई। सन् १९४० में विज्ञान की स्नातक स्तर की शिक्षा लेने वाले कुल ६९१ छात्रों में १०३ महिलाएं थीं जो केवल ३.८ प्रतिशत ही था जवकि परास्नातक स्तर पर यह प्रतिशत १.५ ही था। इसीप्रकार चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में कुल १०५ छात्राये थीं जो १४ प्रतिशत था। किन्तु १९७० तक इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई जब विज्ञान की शिक्षा लेने वाली छात्राओं का प्रतिशत २१.२ था तथा चिकित्सा विज्ञान की छात्राओं का प्रतिशत २२ था। सन् १९७१ के प्रारम्भ में एम० बी० बी० एस० महिलाओं की अनुमानित संख्या १४,२७५ थी और चिकित्सा विज्ञान में ही स्नातकोत्तर महिलाओं की अनुमानित संख्या ५३८५ थी। इसी प्रकार बी० ई० महिलाओं की संख्या १७९० थी और स्नातकोत्तर इंजीनियर महिलाओं की संख्या ३७० थी। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी महिलाएं तेजी से आर्थिक आत्म निर्भरता प्राप्त कर रही थीं।[1]

ऊपर एक महिला (क्लारा ए० स्वैन) द्वारा सर्वप्रथम भारतीय महिलाओं को चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा देने के प्रयास का उल्लेख किया जा चुका है। भारत में महिलाओं को चिकित्सा क्षेत्र में शिक्षा देने के लिए सन् १९१४ में तत्कालीन वायसराय हार्डिंग की पत्नी लेडी हार्डिंग ने हार्डिंग अस्पताल तथा महिलाओं के लिये चिकित्सा कालेज की योजना बनाकर उसे कार्य रूप में परिणत कराया। आज भी देश का एकमात्र महिला चिकित्सा विज्ञान कालेज है। इसे विश्व में सर्वप्रथम महिला चिकित्सा विज्ञान कालेज होने का श्रेय प्राप्त है। विश्व का दूसरा एक मात्र महिला चिकित्सा विज्ञान कालेज फातिमा जिला मेडिकल कालेज, पाकिस्तान में है। देश में सवसे पहले चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा देने वाली संस्था सन् १८३५ में मद्रास में खुली और उसमें प्रवेश लेने वाली प्रथम विद्यार्थी एक ब्रिटिश नागरिक विदेशी महिला थीं वह विशेष रूप से चिकित्सा विज्ञान में शिक्षा ग्रहण करने के लिए भारत आयी थीं क्योंकि तब तक ब्रिटेन के चिकित्सा विज्ञान में लड़कियां प्रवेश नहीं पा सकती थीं। विद्या अध्ययन के बाद वह ब्रिटेन

१- 'विज्ञान प्रगति' पत्रिका का विज्ञान जगत में महिला विशेषांक सन् १९७५ से उद्धृत।

लौट गयी और वहीं अपना चिकित्सालय खोल लिया। सन् १९७० के आस - पास भारत में चिकित्सा विज्ञान के विद्यार्थियों मे ६० प्रतिशत लड़किया थीं। [१]

इस प्रकार महिलाएं सभी क्षेत्रों में न केवल आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन रही थीं बल्कि सम्माननीय पदों पर पहुँच रही थीं। इनमें वैज्ञानिक शोध, सामाजिक शोध, चिकित्सा, प्रशासन, पुलिस , शिक्षा, न्याय, खेलकूद आदि सभी महत्वपूर्ण क्षेत्र गिनाये जा सकते हैं।

(२) राजनीतिक क्रिया कलापों में आधुनिक नारी की सक्रियता :-

राजनीतिक क्रिया कलापों में महिलाओं का आगमन सामाजिक क्रिया कलापों के क्षेत्र की अपेक्षा बहुत बाद में हुआ और यह स्वाभाविक भी था। जिस समाज में नारी को असूर्यम्पश्या की स्थिति में रहना पड़ा हो, शिक्षा से दूर रहना पड़ा हो या शिक्षित होकर भी घर - परिवार में ही अधिकांश समय व्यतीत करना पड़ा हो उससे राजनीतिक क्रिया कलापों में सक्रिय होने की कैसे अपेक्षा की जा सकती है। वैदिक काल में भी उसका समाज में सार्वजनिक रूप से सक्रिय होने का बहुत कम ही अवसर प्राप्त हुआ होगा या उसकी आवश्यकता भी समझी गयी होगी। पौराणिक काल में भी उनका ऐसा कोई रूप नहीं मिलता और जो मिलता भी है वह परिस्थिति जन्य ही है, सहज स्वाभाविक नहीं।

सामाजिक सुधार आन्दोलनों द्वारा भी जब नारी के प्रति उदार या मानवीय दृष्टिकोण अपनाया जाने लगा तब उसे परिवार में प्रतिष्ठा दिलाने, उसे शिक्षित अतएव योग्य गृहिणी बनाने पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया। किन्तु जब उसके बाद भी उसे अपने अधिकार उचित रूप में नहीं प्राप्त हुए तब उसे सामाजिक व्यवहार में भी कूदना पड़ा और समाज का मुकाबला करना पड़ा। राजनीति का क्षेत्र तब भी नारी से दूर ही रहा क्योंकि पुरुष वर्ग स्वयं राजनीतिक क्रिया कलापों में अमानवीय एवं कठोरतम यातनाओं को झेल रहा था। उसमें नारी के कूद पड़ने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। किन्तु यह पुरुष की नारी के प्रति सम्मान उसकी लज्जा एवं मर्यादा की रक्षा की भावना से ही किया जा रहा था इसके पीछे ऐसा कोई भाव सम्भवतः नहीं था कि उसे राजनीतिक क्षेत्र में बढ़ने ही न दिया जाय या उससे दूर रखा जाय।

किन्तु राजनीतिक क्रिया कलापों से जुड़े पुरुषों के परिवार की महिलाओं को चाहे -अनचाहे उन सभी यातनाओं को भुगतना पड़ा। तो फिर उसके मन में यह भाव उठना स्वाभाविक था कि वह भी अपने पति या परिवार जनों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर क्यों न सक्रिय राजनीति में कूद पड़े। ऐसा विचार उस समय विशेष रूप से उठना स्वाभाविक था जब पुरूषों को लम्बी - लम्बी अवधि के कारावास की यातना देना सामान्य बात हो गयी या उन्हें क्षेत्र निकाला या कालापानी की सजा भी दी जाने लगी या पुरुषों को अकारण मृत्यु दण्ड जैसे अमानवीय एवं अत्यधिक कठोर दण्ड दिए जाने लगे।

किन्तु यह स्थिति बनते - बनते लगभग आधी शताब्दीं बीत गयी। सन् १९१४ से १९१८ की अवधि में अनेक महिलाओं ने भारतीय राजनीतिक क्रिया कलापों में सक्रिय भूमिका निभाना प्रारम्भ किया। उस समय सक्रिय राजनीति में भाग लेने वाली महिलाओं में अधिकांश बंगाल से जुड़ी थीं। किन्तु एनी बेसेण्ट के सक्रिय राजनीति में आने के बाद उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष थीं। उसके बाद सरोजिनी नायडू को भी यह गौरव प्राप्त हुआ। किन्तु तब तक एनी बेसेण्ट भारतीय सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में अपनी धाक जमा चुकी थीं। निश्चय ही भारतीय पुरुषों एवं नारियों ने उनसे प्रेरणा प्राप्त की । सरोजिनी नायडू महिलाओं के उत्थान के कार्य से जुड़ीं और इस कार्य के लिए उन्हें सारे देश का भ्रमण करना पड़ा और वे महिलाओं में जागृति फैलाने में अथक परिश्रम करती रहीं। वे अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की अध्यक्ष बनीं। सन् १९२५ में वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष बनीं। उन्हें अपने राजनीतिक क्रिया कलापों के लिए अनेक बार जेल की यातनाएं सहनी पड़ीं। स्वतन्त्रता के बाद वे भारत की प्रथम महिला राज्यपाल के गौरवपूर्ण पद पर भी प्रतिष्ठित हुईं। उनके विषय में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि वे कवयित्री और देशभक्त दोनों ही महत्वपूर्ण भूमिकाओं को साथ -साथ निभा सकीं। उन्हें 'भारत कोकिला' का सम्मान भी मिला। परन्तु उनसे पूर्व सरला देवी, सिस्टर निवेदिता, मैडम कामा, विनोद

१- विज्ञान - प्रगति - पूर्वोक्त अंक के आधार पर।

बाला, मनोरमा मजूमदार, दुखरी बाला देवी, शहीद खुदीराम बोस की 'दीदी' एक बंगाली महिला आदि की सक्रिय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका रही।[१] महिलाओं ने क्रान्तिकारियों को न केवल संरक्षण दिया बल्कि उनके कन्धे से कन्धा मिलाकर क्रान्तिकारी कार्य किए। मैडम कामा को तो भारत के पहले झण्डे की परिकल्पना करने का श्रेय भी दिया जाता है।

सन् १६१७ के कलकत्ता कांग्रेस में यह सर्वसम्मति प्रकट की गई थी कि 'शिक्षा तथा स्थानीय सरकार से सम्बन्ध रखने वाली निर्वाचित संस्थाओं में मत देने तथा उम्मीदवार खड़े होने की, स्त्रियों को, वही शर्तें रखी जायँ जो पुरूषों के लिए हैं।'[२] उन्होंने कलकत्ता कांग्रेस के अध्यक्ष पद से होम रूल आन्दोलन की शक्ति का मुख्य कारण स्त्रियों की वीरता बतलाते हुए कहा था कि 'स्त्रियों के उसमें एक बहुत बड़ी संख्या में भाग लेने, उसके प्रचार में सहायता करने, स्त्रियोचित अद्भुत वीरता दिखाने, कष्ट सहने और त्याग करने के कारण दस गुनी अधिक बढ़ गई थी। हमारी लीग के सबसे अच्छे रंगरूट और सबसे अच्छी रंग रूट बनाने वाली स्त्रियां ही थीं।'[३]

सन् १६१६ में सरोजिनी नायडू, ऐनी बेसेण्ट तथा श्रीमती हीराबाई ने ब्रिटिश सरकार से नारी के लिए राजनीतिक अधिकारों की मांग प्रस्तुत की। ब्रिटिश सरकार जो स्वयं अपने देश में नारी वर्ग को राजनीतिक अधिकारों से कई वर्षो तक वंचित किए थी वह गुलाम तथा पिछड़े देश में नारी वर्ग के लिए समानाधिकार देने की कल्पना कैसे करती। उसने प्रान्तीय धारा सभाओं पर यह प्रश्न छोड़ दिया। लेकिन देश शीघ्र ही नारी वर्ग को समानाधिकार देने के लिए तैयार था अतः सभी प्रान्तीय धारा सभाओं ने शीघ्र ही महिलाओं को भी वोट का अधिकार दे दिया। मद्रास प्रान्त ने सबसे पहले इसे कार्यान्वित किया।[४]

उत्तर प्रदेश (संयुक्त प्रान्त) ने एक मत से (सर्वसम्मति से) नारी को वोट देने का अधिकार दिया था जिसका उदाहरण विश्व में नहीं मिलता।[५]

डा० चण्डी प्रसाद जोशी ने तत्कालीन स्थिति का विवेचन करते हुए लिखा है -'लेकिन वोट देने का अधिकार सम्पत्ति पर आधारित होने के कारण पुरुषों की अपेक्षा केवल पांच प्रतिशत स्त्रियां ही इसका उपयोग कर सकीं। सरकार को अन्य छूटें देनी पड़ीं, फिर कहीं ५ तथा १ का अनुपात आ सका। सन् १६३१ ई० की करांची कांग्रेस ने स्त्री पुरुष के बुनियादी अधिकारों की समानता की घोषणा की थी। वस्तुतः यह नारी के जागरण का युग था। इससे पूर्व नारी पुरुष की करूणा तथा मानवीय दृष्टि पर आश्रित थी। स्वयं अपने अधिकारों के लिए वह आत्म विश्वास न पा सकी थी। राष्ट्रीय आन्दोलन का सामान्य जनता की ओर अभिमुख होने के कारण नारी का घर की चहार दीवारी के अन्दर रहना असम्भव था।'[६]

किन्तु नारियों के इन राजनीतिक क्रिया कलापों के विषय में पं० जवाहर लाल नेहरू का मन्तव्य इस प्रकार है - 'इन स्त्रियों के लिए आजादी की पुकार हमेशा दुहरी माने रखती थी और इस बात में कोई शक नहीं है कि जिस जोश और जिस दृढ़ता के साथ वे आजादी की लड़ाई में कूदीं उनका मूल उस धुंधली और लगभग अज्ञात, लेकिन फिर भी उत्कट आकांक्षा में था, जो उनके मन में घर की गुलामी से अपने को मुक्त करने के लिए बसी हुई थी।'[७] साथ ही उनका यह भी मन्तव्य था कि 'मामूली तौर पर लड़कियों और स्त्रियों ने हमारी लड़ाई में क्रियात्मक भाग अपने पिताओं और भाइयों या पतियों की इच्छा के विरूद्ध ही लिया। किसीं भी हालत मे उन्हें अपने घर के पुरुषों का पूरा सहयोग नहीं मिला।'[८]

१- हिस्ट्री आव् कांग्रेस - प्रथम खण्ड - पृ० - ३६४ -६५
२- कांग्रेस का इतिहास - डा० पट्टाभि सीतारामैय्या - अनु० हरिभाऊ उपाध्याय - पृ० ५६
३- वही - पृ० - १३६
४- हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन - डा० चण्डी प्रसाद जोशी - पृ० - १०६
५- वही - पृ० - १०६ पर 'अवर काज'- सम्पादक एस० के० नेहरू - पृ० - ३५४ के आधार पर उद्धृत।
६- वही - पृ० - १०६
७- मेरी कहानी - पं० जवाहर लाल नेहरू - अनु० हरि भाऊ उपाध्याय - पृ० ४८२
८- वही

हमारा उद्देश्य इन कथनों की विवेचना में नही जाना था बल्कि यह देखना था कि किस प्रकार भारतीय नारी ने राजनीतिक क्रिया कलापों में भाग लेना प्रारम्भ किया जिसने कस्तूरबा गान्धी, इन्दिरा गान्धी, अरूणा आसफ अली, कमला देवी चट्टोपाध्याय, राजकुमारी अमृतकौर, सुचेता कृपलानी आदि सैकड़ों -हजारों महिलाओं को भारतीय राजनीति में अग्रणी भूमिका निभाने का मार्ग प्रशस्त किया।

(३) सांस्कृतिक क्रिया कलापों में आधुनिक नारी की सक्रियता :-

भारतीय पुनर्जागरण युग में सर्वप्रथम नारी पर हो रहे अत्याचारों को दूर करने का श्री गणेश किया गया। फिर उसे सुगृहिणी बनाने के लिए सुशिक्षित करना प्रारम्भ किया गया। इसके साथ ही नारी के विषय में समाज में व्याप्त कुरीतियों और नारी वर्ग में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया गया। धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में पुरुष वर्ग ने परिवर्तन लाने का प्रयास किया किन्तु सम्भवतः उसमें उसे आशानुकूल सफलता नहीं मिली और यह स्वाभाविक भी था। धर्म और संस्कृति से जुड़ी तमाम प्रथाओं, रीतियों आदि का पालन परिवार में स्त्री ही करती थी। इसलिए जब तक स्त्रियों को इस दिशा में अग्रणी भूमिका निभाने का अवसर न दिया जाता तब तक स्थायी परिणाम नहीं प्राप्त किए जा सकते थे।

इस दिशा में राजा राम मोहन राय ने भी, जिन्हें भारतीय पुनर्जागरण का पिता (फादर आव् इण्डियन रिनेसां) कहा जाता है, क्रान्तिकारी कदम उठाये। उन्होंने देव पूजा और धार्मिक अनुष्ठानों के अनावश्यक आडम्बरों को दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने और उनके बाद केशवचन्द्र सेन ने पूजा और कर्मकाण्ड की अपेक्षा प्रार्थना पर जोर दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी मूर्तिपूजा का विरोध किया और स्त्रियों को भी यज्ञादि करने तथा वेदादि पढ़ने का अधिकारी माना। स्वामी विवेकानन्द ने तो एक कदम आगे बढ़कर देश में महिलाओं में सांस्कृतिक जागरण लाने के लिए महिलाओं की ही सेवा लेने का निश्चय किया। उन्होंने सिस्टर निवेदिता (पूर्व नाम नोवल) को इस कार्य के लिए तैयार किया। उनका तो यह स्पष्ट मत था कि यदि देश में सांस्कृतिक चेतना जागृत करने के लिए महिलाओं का अभाव है तो बाहर से भी महिलाओं को लाकर भारत में सांस्कृतिक चेतना जागृत करायी जाय। सिस्टर निवेदिता को इसी दृष्टि से भारत आने और इस प्रकार का उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य करने के लिए स्वामी विवेकानन्द ने चयन किया। उनकी इस दूर दृष्टि के कारण भारतीय नारियों में भी सांस्कृतिक क्रिया कलापों के प्रति आकर्षण बढ़ा।

(ब) हिन्दी कहानियों में आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्रिया कलापों में आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना के स्वरूप की विवेचना :-

(१) आर्थिक क्रिया कलापों में आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना :-

समाज में बढ़ते अर्थ के महत्व के साथ समाज के आर्थिक ढांचे में बदलाव आने लगा। समानता की भावना ने नारी शिक्षा का उपयोग घर के बाहर भी करना प्रारम्भ करा दिया। इसलिए समाज में अब तक उपेक्षित नारी का चित्रण भी नई कहानी में होना स्वाभाविक था। इस दिशा में पुरुष लेखकों ने तथा स्त्री लेखकों ने भी कलम उठायी। इस स्थिति का विश्लेषण करते हुए डा० सन्त वख्श सिंह ने लिखा है -

'नये आर्थिक वर्गों के निर्माण के साथ - साथ परिवार के ढांचे तथा स्वरूप भी परिवर्तित हुए। स्त्री - स्वतन्त्रता के साथ जब स्त्री ने पुरुष के समान विभिन्न सामाजिक कार्यों में प्रत्यक्ष योग देना प्रारम्भ किया तो नौकरी पेशा स्त्री की परिवार में परम्परागत ढंग की स्थिति नहीं रही। विवाहित दम्पत्ति में जब स्त्री और पुरुष दोनों ही नौकरी करने लगे, तो दोनों की मानसिक स्थितियों में व्यापक परिवर्तन आया। आर्थिक स्तर पर स्वयं उत्तरदायित्व सम्हाल लेने के कारण स्त्रियों में अपने अस्तित्व के प्रति

चेतना जागी और उनका अहं भी समर्थित होने लगा। अब वह परम्परागत हिन्दू - परिवार की सास ससुर और पति की सेवा करने वाली तथा सास के इशारों पर नाचने वाली स्त्री नहीं रही। आर्थिक स्तर पर समृद्ध हो जाने के कारण उसने एक स्वतन्त्र व्यक्ति के अधिकारों की मांग की और इस प्रकार अपनी गृहस्थी को उसने अपनी कल्पना के अनुसार ढालने की कोशिश की।'[१]

आधुनिक युग में भारतीय नारी की सामाजिक चेतना में जो बदलाव या परिवर्तन प्रमुख रूप से उभरता है उसकी ओर इंगित करते हुए डा० सन्त बख्श सिंह ने लिखा है -

एक ओर जहां परिवार का परम्परागत स्वरूप टूटा, वहीं दूसरी ओर स्त्री स्वतन्त्रता के कारण नवयुवक स्त्रियों के स्वरूप में परिवर्तन आया। जो स्त्रियां आजीविका के साधन स्वयं जुटाती थीं, उनकी मानसिकता में धीरे - धीरे व्यापक परिवर्तन आया और इस प्रकार उन्होंने जीवन और चिन्तन के स्तर पर पुरूषों के समान ही स्वयं को प्रस्तुत करने की कोशिश की। स्वातन्त्र्योत्तर नारी के इस नये रूप को लेकर नये कहानीकारों ने अनेक कहानियां लिखीं, जिनमें पारिवारिक विघटन से लेकर नारी के इस अहं पोषित स्वरूप तक का चित्रण किया गया।'[२]

डा० भगवान दास वर्मा के अनुसार 'परम्परागत वर्जनाओं से आधुनिक नारी जैसे - जैसे मुक्त हो रही है, नवीन समस्याओं का सामना करने लगी है। आर्थिक स्वावलम्बिता और मानसिक स्वतन्त्रता के कारण वह अपने जीवन को अच्छा या बुरा बनाने के लिए स्वतन्त्र है। किन्तु इस आत्मनिर्भरता का यह मतलब नहीं कि वह बिना पुरुष के सम्पर्क के जीवन व्यतीत कर सकती है। पुरुष के साथ रहना उसकी प्राकृतिक आवश्यकता है, चाहे वह परम्परागत पत्नी धर्म का निर्वाह न करती हो। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये उसे कई विपरीत स्थितियों का समाना करना पड़ता है। विचित्र बात यह है कि आधुनिक स्त्री, चाहे कितनी ही स्वतन्त्र हो अब भी पुरुष संस्कार से आक्रान्त है। इसका कारण शायद यह है कि हजारों वर्षो की परम्परा से पुरुष संस्कार का प्रभाव स्त्री के मानसिक संगठन का हिस्सा बन कर रह गया है। इस मानसिक गुलामी से मुक्ति पाना इतनी जल्दी सम्भव भी नहीं है। दूसरा कारण यह है कि पुरुष अब भी स्त्री के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का हिमायती होकर भी, स्त्री को पुरुष संस्कार से मुक्त नहीं होने देता ।'[३]

पारम्परिक नैतिक बोध का विघटन और पारिवारिक विघटन आज के आधुनिक युग के महत्वपूर्ण परिवर्तन हैं और इन दोनों ने ही नारी की सामाजिक चेतना को प्रभावित किया है। डा० भैरव लाल गर्ग के अनुसार - 'आज नारी स्वतन्त्र है। उस पर किसी प्रकार का पतिव्रत धर्म आदि जैसा नैतिक बन्धन नहीं है। वह पुरुष पर निर्भर न रहकर, उसकी दया पर न जीकर स्वावलम्बी होकर जीना चाहती है। वह पुरुष को छूट देने के पक्ष में नहीं है। लेकिन इसके बावजूद जन्म जन्मान्तर के सम्बन्धों की कोई कल्पना अब उसके मानस में भी नहीं रह गयी है। स्त्री ने अपना व्यक्तित्व प्राप्त किया है और वह इसी जीवन अवधि में सम्मानजनक शर्तों पर रहना चाहती है।'[४]

नारी का अर्थ - प्राप्ति की गतिविधियों में लिप्त होना उसके परावलम्बी न रहने की प्रबल इच्छा के कारण अथवा विवशता के कारण ही मुख्य रूप से पाया जाता है। जीविका के लिए अर्थोपार्जन में संलग्न नारियों की श्रेणी में कुमारी कन्याएं भी हैं, विवाहिता भी और विधवा या परित्यक्ता भी। इन सभी को अपने परावलम्बी न बनने के लिए भी अनेक प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक उलझनों से जूझना पड़ता है। आधुनिक कहानियां नारी की इन्हीं उलझनों का चित्रण करते मिलती हैं। कहा तो यहां तक गया है कि 'स्त्री - पुरुष के बदलते हुए सम्बन्धों को लेकर जितनी कहानियां इस युग में लिखी गयीं उतनी अन्य किसी विषय पर नहीं लिखी गयीं। एक नये कहानीकार के शब्दों में 'तमाम दुनिया की भाषा कुल मिलाकर दो

१- नई कहानी - नये प्रश्न - डा० सन्त बख्श सिंह - पृ० - ५७ - ५८
२- नई कहानी - कथ्य और शिल्प : डा० सन्त बख्श सिंह - पृ० - ४४
३- कहानी की संवेदन शीलता : सिद्धान्त और प्रयोग - डा० भगवान दास वर्मा - पृ० २०२
४- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन - डा० भैरू लाल गर्ग - पृ० - ७६

स्त्री - पुरुषों की बातचीत है, जो उनके सम्बन्धों के मुताबिक बदलती रहती है।'[1]

आर्थिक स्वावलम्बन ने नारी को यद्यपि परम्पराओं, रूढ़ियों, प्रथाओं से मुक्त होने का अवसर दिया है किन्तु नारी अब भी इनसे पूरी तरह मुक्त नहीं हो पायी है। नगरों में तो समयाभाव या साधनाभाव के कारण ही कुछ परम्पराओं, रूढ़ियों और प्रथाओं आदि का निर्वाह कठिन हो गया है अतः इन्हीं मजबूरियों के कारण या उनकी आड़ में इनसे बचने का बहाना ढूढ लिया जाता है ग्रामीण परिवेश में यह भी सम्भव नहीं है.।

इसी प्रकार परिवार में उसकी आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण उसे वह स्थान नहीं प्राप्त है जो पुरुष को सहज ही प्राप्त हो जाता है।

<u>आर्थिक आत्मनिर्भरता के बाद भी सामाजिक स्वतन्त्रता एवं समानता का अभाव :-</u>

मोहन राकेश की 'सुहागिनें' कहानी की मनोरमा पति की इच्छा के कारण पति से दूर रहकर भी नौकरी करती है। दूसरी ओर काशी भी विवाहित है और उसका पति भी दूर रहता है और उसकी दूसरी पत्नी भी है। वह काशी के पास आता भी है उससे पैसे भी ले जाता है और उसे मारता - पीटता भी है क्योंकि वह शराबी भी है फिर भी काशी उसका विरोध नहीं करती। इस प्रकार मनोरमा और काशी दोनों ही स्वावलम्बी होने पर भी पति की पराधीनता से पूर्णतया मुक्त नहीं हैं।

ऐसी भी स्थिति मिलती है जिसमें पति की इच्छा के कारण पत्नी अपनी लगी लगाई नौकरी या आर्थिक स्वालम्बन के साधन का परित्याग करती है और बदले में न तो उसे आर्थिक स्वावलम्बन मिलता है और न सामाजिक स्वतन्त्रता।

विवाह से पूर्व लड़की नौकरी करें या न करे यह द्विविधा समाज में व्याप्त है। कुछ पति नौकरी को जहां आर्थिक आत्मनिर्भरता की दृष्टि से उचित समझते हैं वहीं जो पत्नी को आर्थिक स्वावलम्बन और सामाजिक स्वतन्त्रता देने के विरोधी हैं वे उसका नौकरी करना पसन्द नहीं करते। ऐसे नवयुवक या तो ऐसी लड़की से विवाह ही नहीं करते जिसकी नौकरी लगी हो या फिर विवाह के बाद उसे नौकरी छोड़ने के लिए बाध्य करते हैं। यह केवल नारी की नौकरी के सम्बन्ध में ही लागू नहीं होता बल्कि उसके किसी भी व्यवसाय में व्यस्त रहने पर भी लागू होता है। यह स्थिति उन परिवारों में और अधिक होती है जहाँ पति की आर्थिक स्थिति अच्छी होती है। तब वह पत्नी को पूर्णतया अपने और बच्चों के प्रति समर्पित चाहता है।

लड़का कमाये या न कमाये पर परिवार में उसका रोब रहता है, लड़की कमाए तब भी परिवार के रोव में रहती है। हाँ, यदि परिवार एकमात्र उसी पर आर्थिक दृष्टि से निर्भर हो तो असहाय सी स्थिति में नारी की स्वतन्त्रता को सहन किया जाता है।

गिरिराज किशोर की कहानी 'फ्राक वाला घोड़ा : निकर वाला साईं' में क्लर्क पति डिप्टी सेक्रेटरी पत्नी रीता को प्रताड़ित करना चाहता है पर पत्नी रीता भी पति को प्रताड़ित करती है ------ ' आप पुरुष लोग समझते हैं, जो कुछ कमाकर लाते हैं उसके कारण हम लोग आप लोगों का सम्मान करते हैं और इसी कारण आप लोग अपने आपको स्वतन्त्र रख पाने में समर्थ हैं। लेकिन आज व्यक्तिगत सम्बन्धों का भी आर्थिक महत्व अधिक है। अगर मैं आपसे छह गुना कमाती हूँ तो छह गुना ही बड़ी भी हूँ------।'[2]

वह फिर कहती है - ' मैं दिन भर आपसे बंधी बंधी डोलूं। मेरी सोसायटी में आप फिट नहीं हो पाते और आपकी सोसायटी में ------ मेरा तो कोई सवाल ही नहीं उठता। आप चाहते हैं अन्य क्लर्कों की पत्नियों की तरह मैं भी आपकी

१- हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा - सम्पादक राम दरश मिश्र, नरेन्द्र मोहन - पृ० १२४ - १२५
२- 'पेपर वेट' - गिरिराज किशोर - पृ० १०१

सेवा में हाथ बांधे खड़ी रहूँ।------ पति के रूष्ट हो जाने पर मुझे नरक मिलेगा, इसका मुझे डर नहीं -----।"[1]

जहाँ महीप सिंह की कहानी 'घिरे हुए क्षण' में पत्नी की आर्थिक स्वाधीनता, आत्म निर्भरता और स्वतन्त्रता पति की चिन्ता का कारण बन उठती है वहीं निरूपमा सेवती की 'मां यह नौकरी छोड़ दो' में आर्थिक स्वावलम्बन से उत्पन्न बच्चों की परेशानियों को उद्घाटित किया गया है।

मेहरून्निसा परवेज की 'शनाख्त' में पत्नी और बेटी दोनों पति की क्रूरता की शिकार होती हैं। पति शराब के नशे में बेशर्म होकर पत्नी को अपनी बेटी के सामने ही नंगा करता है - माँ पैसे के लिये बिकती है क्योंकि वह केवल अण्डे बेच कर परिवार चलाने का प्रयास करती है। इतना ही नहीं, एक दिन बेटी को भी शराबी पिता की हवस का शिकार होना पड़ता है। तब पत्नी उग्र रूप धारण कर पति को घर से निकाल देती है और उसके मर जाने पर उसे पहचानने से इन्कार कर देती है।

मन्नू भण्डारी की 'क्षय' कहानी की कुन्ती अपने बूढ़े और बीमार पिता और छोटे भाई का बोझ उठाती है और उसके लिए रात - दिन परिश्रम करती है, कमाती है। यहाँ पिता पुत्री के धन पर आश्रित है और पुत्री अपनी यौवन सुलभ आकांक्षाओं का बलिदान कर उसका बोझ सम्हालती है। जहाँ नारी पति की इच्छाओं के कारण अथवा परिवार की आवश्यकताओं के कारण अपना आर्थिक स्वावलम्बन छोड़कर लगी हुई नौकरी आदि छोड़ती है वहां उसे न तो नौकरी करने में सुख है न नौकरी छोड़ने में। इस प्रकार वह घुटन, पीड़ा और व्यथा की शिकार हो जाती है। 'नई नौकरी' की रमा इसी प्रकार की नारी है।

उषा प्रियम्वदा की कहानी 'दो अंधेरे' की नायिका सुमित्रा स्वाधीन एवं स्वावलम्बी होने में गर्व का अनुभव करती है कि उसे विवाह के लिए उसके पिता को प्रदर्शनी की तरह नही दिखाना पड़ेगा। जहाँ नारी कमाती है वहां उसके माँ- बाप का भी उसके प्रति व्यवहार बदल जाता है और यदि संयोग से वह अकेली ही कमाने वाली हुई तो वह घर के मुखिया की तरह हो जाती है।

उषा प्रियंवदा की 'सुरंग' कहानी में भी बेटियों को पिता के न होने के कारण पारिवारिक संघर्ष में जूझना पड़ता है।

इसी प्रकार मोहन राकेश की 'वासना की छाया में' कहानी में सुधा अपने पिता के वासनामय रूप के कारण अनमेल विवाह तक स्वीकार कर लेती है। विवाह के पूर्व वह भी घर की सारी जिम्मेदारियों को निभाती है। मन्नू भण्डारी की 'क्षय' कहानी में नारी बीमार पिता और छोटे भाई की पूरी जिम्मेदारी सम्हालती है - स्वयं कमा कर सभी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए संघर्ष करती है और अन्त में उसी संघर्ष में टूट भी जाती है। उसी प्रकार निरूपमा सेवती की कहानी 'ठहरी हुई खंरोच' में भी नारी अपने पिता और बहन की जिम्मेदारी निभाती है और उसके लिए नौकरी तक करती है।

इस प्रकार माता- पिता या भाई बहिन की जिम्मेदारी सम्हालते - सम्हालते या तो अपने सुख का बलिदान करती है या विवाह की आयु व्यर्थ बिताती है। वह कोई क्रान्तिकारी कदम भी नहीं उठा पाती और यदि किसी प्रकार ऐसा क्रान्तिकारी कदम उठाने की हिम्मत भी करती है तो कोई न कोई उत्तरदायित्व बोध उसे मुक्त नहीं होने देता। अमरकान्त की कहानी 'असमर्थ हिलता हाथ' की मीना अपने भाई के दोस्त दिलीप से प्रेम करने लगती है किन्तु भाई और मां के प्रताड़ित करने पर वह अधिक हिम्मत नहीं जुटा पाती। वह अपनी सहेलियों से सहयोग एवं सहायती चाहती है। सब कुछ ठीक हो सकता था, वह उस कल्पित लकीर को लांघ सकती थी जो उसके भाई तथा मां ने उसके चारों ओर खींच दी थी किन्तु अन्त में मां की बीमारी के कारण वह विवाह के लिए व्यग्र अपने प्रेमी का साथ नहीं दे पाती। वह सोचती है 'वह जिन्दगी को सिर्फ टालरेट कर रही है या निभा रही है, जी नहीं रही है सही अर्थों में।'

१- 'पेपर वेट' - गिरिराज किशोर - पृ० ६७

इस प्रकार की नारी की दुविधापूर्ण स्थिति और साथ ही सामाजिक चेतना का अन्तर्द्वन्द्व साठोत्तरी हिन्दी कहानी में देखा जा सकता है। स्पष्ट है कि नारी अब तक जिसे नियति मान कर चुपचाप सहती चली आ रही थी उसके प्रति प्रश्न मुद्रा उसमें उत्पन्न हो गयी है और वह उसके औचित्य पर विचार करने में प्रवृत्त हो रही है। किन्तु वह विवाह पूर्व की कुण्ठा, तनाव, द्वन्द्व, भटकाव एवं शोषण की शिकार भी इसी कारण बनती जा रही है। पुरुष वर्ग उसके अज्ञान और असमर्थता आदि का अनुचित लाभ उठाकर उसका शोषण करता है। वह अपने आप किसी को प्रेम भी नहीं कर सकती क्योंकि वही प्रेमी उसे धोखा भी दे सकता है। उस पर यदि वह सुन्दरता में कम हुई तो उसे सभी ओर से उपहास सहना पड़ता है, प्रेमी मिलना तो दूर उसकी सहेलियाँ भी उसका उपहास करती हैं। एक के बाद एक अपनी सभी सहेलियों को प्रेमी एवं पति मिल जाने के बाद भी उसके भाग्य में न तो प्रेमी रहता है न पति।

मोहन राकेश की 'सीमाएं' में उमा और उषा प्रियम्बदा की 'नींद' की नारी भी इसी प्रकार की कुण्ठा की शिकार रहती है। उनमें भटकाव, अशान्ति और टूटन ही मिलती है।

<u>पुरुष की निष्ठा एवं लगाव के अभाव में संत्रास व कुण्ठा ग्रस्त नारी :-</u>

कमलेश्वर की 'मेरी प्रेमिका' की शान्ता अनेक लेखकों के सम्पर्क में आती है और सबसे छली जाती है। वह लेखकों से उदात्त प्रेम की अपेक्षा करती है किन्तु उनमें छिछले वासनात्मक देह - प्रेम के अतिरिक्त कुछ नहीं पाती। उसका मोह भंग हो जाता है और उसको बोध होता है कि '------- आदमी की आंखों में जब नमी आती है तब वह सिर्फ छल करता है क्योंकि आदमी में अडिग रहने की शक्ति नहीं होती -- उसकी आकांक्षाएं हमेशा उसको नयी दिशाओं के सपने दिखाती है ---- और आदमी अपनी आकांक्षाओं का गुलाम है। औरत दूसरों की महत्वाकांक्षाओं के लिए जी सकती है पर पुरुष नहीं।'[1]

वह पुरुष वर्ग से एक प्रश्न करती है जो आज तक अनुत्तरित है। वह पूछती है - 'तुम सबके सब इतने अतृप्त, प्यासे और निरीह क्यों हो ? तुम्हारी यह अतृप्ति और प्यास उस नैसर्गिक प्यास से बहुत अलग है जो जीवन के लिए होती है।'[2]

महीप सिंह के 'ब्लाटिंग पेपर' की प्रीत बहुत अधिक भटकाव ग्रस्त एवं तनाव ग्रस्त हो जाती है और कह उठती है - 'इच्छा होती है कि किसी अन्धे आदमी के साथ शादी कर लूं। दूर नदी के किनारे के एक गांव में झोपड़ी डाल लूँ। फिर उस अन्धे की इतनी सेवा करूं कि उसे लाठी की जरूरत न रहे। बात - बात में मुझे पुकारे -----प्रीती ------प्रीती। और मैं बार -बार अपने हाथ का काम छोड़कर उसके पास दौड़ी चली जाऊँ। उसके लिए मैं सबसे जरूरी चीज बन जाऊँ।'[3]

नारी पुरुष से जिस निष्ठा एवं लगाव की अपेक्षा करती है वह उसे नहीं मिलती। इसलिए वह चाहती है कि उसी की तरह उसका प्रेमी भी सहारा खोजने वाला हो चाहे वह अन्धा ही क्यों न हो। यदि वह अन्धा होगा तो अन्य स्त्रियों के प्रति उसमें आकर्षण नहीं बढ़ेगा -- वह पूर्णतः उसी का होकर रहेगा। तब वह भी उस पर सम्पूर्ण प्रेम निछावर कर सकेगी। हर तरह का कष्ट उसके लिए खुशी- खुशी सह लेगी। आधुनिक नारी अब वह स्त्री नहीं रही जो यह मान कर ही चलती थी कि पुरुषो की तो इधर- उधर छुछुआने की आदत ही होती है। वह अपने प्रेमी या पति का पूर्ण प्रेम चाहती है।

इसी प्रयास में वह धोखा भी खाती है और पछताती भी है। अचला शर्मा की 'बर्दाश्त बाहर' की रति न तो प्रेमिका वन पाती है न पत्नी। वह विवाहित अमित से जिसके बच्चे भी हैं, प्रेम करने लगती है किन्तु शीघ्र ही उसे पता चल जाता है कि अमित ने '----कभी औरत को औरत नहीं समझा। बकरी, भैंस, फूल, शुतुरमुर्ग , बिल्ली वगैरह - वगैरह कुछ भी, लेकिन औरत कभी नहीं।'[4] वह अमित से कहती है - 'क्या नहीं किया मैंने तुम्हारे लिए। फिर भी लगता है, जैसे मैं कोई उधार की

१- बयान तथा अन्य कहानियां - कमलेश्वर - पृ० ८१
२- वही - पृ०- ८५
३- मेरी प्रिय कहानियां - महीप सिंह - पृ० ८७
४- बर्दाश्त बाहर - अचला शर्मा - पृ० १२७

चीज हूँ ----- जैसे मैं तुम्हारी सिर्फ रखैल हूँ।'[1]

<u>समानता की होड़ में नारी का स्वच्छन्द यौनाचार :-</u>

आधुनिक नारी पुरुष से लगातार उपेक्षा पाते - पाते ऊब गयी है। वह कुण्ठा, तनाव, द्वन्द्व, भटकाव और शोषण की शिकार होते - होते अब अपने बचाव के प्रति सतर्क है और पुरुष की बराबरी तक करने को प्रस्तुत है। वह पुरुष की तरह ही स्वयं भी काम सम्बन्ध स्थापित करने की प्रतिक्रिया से या बराबरी की भावना से ग्रस्त होती जा रही है। उसमें यौन सम्बन्धों के प्रति स्वच्छन्द दृष्टि परिलक्षित होती है।

निर्मल वर्मा की 'अमालिया' और उषा प्रियम्बदा की 'पूर्ति' की नारी भी स्वच्छन्द यौन सम्बन्ध स्थापित करती है। निर्मल वर्मा की 'अन्तर' कहानी में तो नारी विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध भी स्थापित करती है, गर्भ धारण करती है और फिर स्वेच्छा से गर्भ गिरवा लेने में भी उसे पश्चात्ताप नहीं होता। शैलेश मटियानी की 'निर्णय' कहानी की मोना एक निष्ठ प्रेमिका न होकर अनेकों के साथ सम्बन्ध रखती है। इतना ही नहीं जब वह पार्क मे प्रेमी के साथ शारीरिक सम्बन्ध जोड़ते हुए चौकीदार द्वारा पकड़ ली जाती है तो वह चौकीदार के साथ भी आधा घण्टा बिताकर उसे खुश कर देती है और प्रेमी से आकर कहती है कि वह उसे (चौकीदार को) समझाने गई थी।

वस्तुतः प्रेमी और प्रेमिका किन्ही - किन्हीं विशेषताओं , आकर्षणों आदि के कारण प्रेम बद्ध होते हैं किन्तु इसके पूर्व कि वे विवाह बन्धन में बंध सकें उनके बीच अन्य अनेक विशेषताएं , आकर्षण आ उपस्थित होते हैं जिनकी ओर उनका झुका हो जाना स्वाभाविक होता है।

मन्नू भण्डारी की 'यही सच है' की दीपा अतीत और वर्तमान के प्रेम सम्बन्ध के द्वन्द्व में जीवन जीती है। कभी वह अतीत के प्रेम से आकर्षित हो कर जीना चाहती है और कभी वर्तमान के प्रेम से। यही स्थिति मन्नू भण्डारी की एक दूसरी कहानी 'एक बार और' की बिन्नी की भी है। वह अतीत और वर्तमान के प्रेम के द्वन्द्व का सामना करती है। वह न तो अतीत को चुन पाती है जो अव उसका रह ही नहीं गया और न उसे पूरी तरह त्याग कर वर्तमान को ग्रहण कर पाती है जिसकी छाया सदा उसके साथ लगी रहती है।

उषा प्रियम्वदा की 'मछलियां' कहानी में भी अतीत और वर्तमान के प्रेम की द्वन्द्वात्मक स्थिति को उभारा गया है। परन्तु यह द्वन्द्व दो जोड़ों के बीच है। विजी और मुकी परस्पर सहेलियां हैं पर परस्पर ऐसे प्रेमी को चाहती हैं जो दोनों के परिचित हैं और एक का प्रेमी दूसरे से जुड़ता है। इसकी परिणति दोनों सहेलियों में ईर्ष्या भाव उत्पन्न होने में होती है। यहाँ तक कि विजी की 'अब मुकी की गर्दन पकड़कर खींचने की इच्छा होती है, मन होता है, उसकी काफी में जहर मिलाकर पिला दे, उसके अपार्टमेंट में आग लगा दे और सिल्क की तहों में लेटी मुकी लपटों में घिर जाय और उसकी चीखें धुएं और चटखती लकड़ियों में खो जाएँ।'[2]

मुकी को जब यह पता चलता है कि नटराजन की उससे सगाई होने पर भी उसके विजी से सम्बन्ध हैं तो वह आक्रामक हो उठती है और नटराजन से कहती है- 'न, अब कुछ नहीं सुनुंगी। मैं बहुत मानिनी हूँ, नटराजन । बहुत दर्प मेरे अन्दर भी है। और मैंने बहुत धीरज रखा, पर मैं अब और नहीं सह सकूंगी। गो अवे। यह विवाह नहीं होगा।'[3]

प्रेम को खिलवाड़ समझने वाले प्रेमियों और प्रेमिकाओं की भावनाओं से खेलने वाले प्रेमियों को वह अब 'गो अवे' कहने की शक्ति जुटाने लगी है। दहेज के लोभी प्रेमी को वह विवाह मण्डप में 'गो अवे' कहने की हिम्मत करती है। इतना ही नहीं वह विवाह पश्चात् भी पतित या भ्रष्ट पति को 'गो अवे' कहने का साहस करने लगी है।

१- बर्दाश्त बाहर - अचला शर्मा - पृ० १२६

२- कितना बड़ा झूठ - उषा प्रियम्बदा ' पृ० ११७

३- वही - पृ० - १३०

आधुनिक नारी भी चाहती है कि पुरुष प्रेम में पहल करे। नारी प्रेम में पहल नहीं कर पाती या फिर करती भी है तो वाणी से नहीं मन से। वे इसी ऊहापोह में कि पहले कौन पहल करे काफी समय बिता देते हैं। सिम्मी हर्षिता की 'उसका मन' की नारी अपने सम्बन्धों की तलाश अपने निजी धरातल पर करती है। वह कहती है - 'मै युवक होती न ! तो अब तक कितने ही अफेयर कर चुकी होती। मै तो दिल फेंक होती। भगवान् ने पता नहीं क्यों मुझे लड़की बना दिया है और उसे लड़का क्यो बनाया है ? कुछ युवकों में बोलने की हिम्मत नहीं होती, चाहे वे चाहते हों। पर उससे कैसे कुछ कह सकती हूँ। मैं बहुत स्वाभिमानी हूँ।'[१] वह चाहती है कि उसका प्रेमी ही पहल करे। यह बात उसे सोचने विचारने पर मजबूर कर देती है -'प्रेम के मामले में अभिव्यक्ति की पहल पुरुष की तरफ से ही होनी चाहिए। -------------ऐसा क्यों है ? यह दोनों तरफ एक प्रतिष्ठा और स्वाभिमान का ही प्रश्न क्यों है ? पुरुष को जब कोई लड़की पसन्द होती है तो वे अक्सर अपनी भावनाएँ प्रकट कर देते हैं और यदि लड़की को कोई पसन्द हो तो?'[२] वह चाहती है कि विवाह आदि के मामले में भी लड़की की राय ली जानी चाहिए।[३]

पारिवारिक सम्बन्धों में पीढ़ियों का संघर्ष :-

हरि प्रकाश की 'वापसी' कहानी में बड़े भैया, राजीव, संजीव और मुन्नी सब शराबी पिता से ऊब कर सम्बन्ध तोड़कर चले जाते हैं। यद्यपि वे चारो साथ ही रहते हैं पर शराबी पिता को साथ नहीं रख पाते क्योंकि शराब पीकर असभ्यता का प्रदर्शन करना उनकी दृष्टि में असामाजिक है। पिता विवश होकर फिर से नौकरी कर लेते हैं और दूसरे शहर में चले जाते हैं। राजीव जब उनसे मिलने जाता है तब फिर उसके मन में उस पिता के प्रति वितृष्णा उत्पन्न होती है - 'नहीं इस व्यक्ति के साथ बिलकुल सहानुभूति नहीं रखी जा सकती----------------- हरगिज हरगिज यह शख्स उसका पिता नहीं हो सकता।'[४]

राजीव आदि को अपने पिता से शिकायत तो ठीक है पर भीष्म साहनी की चीफ की दावत की निरीह मां का क्या अपराध है। पुत्र और पुत्रवधू भी उनकी घोर उपेक्षा करती हैं - उन्हें घर का फालतू सामान सा समझती हैं। वहां मां क्या करे, कहां जाय। उसका कहीं कोई ठिकाना नहीं है।

हरि प्रकाश की 'वापसी' कहानी की ही तरह उषा प्रियम्बदा की 'वापसी' कहानी में भी इसी प्रकार का द्वन्द्व और इसी प्रकार का संघर्ष है। डा० सुरेश धींगड़ा के अनुसार 'दोनों कहानियों में अन्तर केवल इतना है कि जहां हरिप्रकाश की कहानी बूढ़ी- पीढ़ी से युवा पीढ़ी की वापसी की प्रक्रिया का विश्लेषण करती चलती है, वहां प्रियम्बदा की कहानी बूढ़ी पीढ़ी की युवा-पीढ़ी से वापसी की प्रक्रिया का चित्रण करती है। दोनों की पृष्ठभूमि में वही पीढ़ियों का संघर्ष है। दोनों में मतभेद और अन्तर है, जो दोनों को दो ध्रुवों के रूप में परिवर्तित कर देता है, जो टूट तो सकते हैं, पास नहीं आ सकते। हरि प्रकाश की कहानी में भी वृद्ध पिता फिर से नौकरी करने लौट जाते हैं। पहली कहानी युवा- पीढ़ी के संघर्ष का चित्रण करती है और दूसरी कहानी वृद्ध पीढ़ी के संघर्ष की आन्तरिकता की सीवनें उधेड़ती है।'[५]

इसी प्रकार चीफ की दावत के नायक शमनाथ की अपनी मां के प्रति धारणा पर डा० सुरेश धींगड़ा ने लिखा है -'शामनाथ के सामने वड़ी समस्या घर का फालतू सामान छिपाने की नहीं है, बड़ी समस्या है, निरक्षर और बूढ़ी मां। फालतू सामान तो छिपा भी दिए जाए, चाहे तो फेंक भी दिया जाए, परन्तु उस जीवित सामान का क्या किया जाए। विडम्बना तो तब प्रस्तुत होती है, जब मां स्वयं भी अपने को छिपाये जाने में शामनाथ की सहायता करती है। उसे अपनी 'अकिंचनता' का आभास है। वह स्वयं ही संकुचित है। परन्तु समस्त प्राचीनता की प्रतीक वह बूढ़ी मां क्या छिप सकी ? चीफ मां को बुरी हालत में देखते हैं और उससे मिलते हैं। उधर शामनाथ का घबराहट से बुरा हाल है। बड़ी विडम्बना तब उपस्थित होती है जब शामनाथ के समक्ष आशा के विपरीत हितकर परिणाम आते हैं। यहीं कहानीकार प्रतीक को अर्थ गर्भत्व से भर देता है- कि किस प्रकार आधुनिक मनुष्य अपनी आधुनिकता में बहकर प्राचीन से जुड़े रहने में लज्जा का अनुभव करता है और उससे कट जाना चाहता है तथा किस प्रकार

१- कमरे में वन्द आभास- सिम्मी हर्षिता - पृ० १४१

२- वही - पृ०- १४२

३- वही - पृ० १४७

४- कहानी और कहानी - डा० इन्द्र नाथ मदान - पृ० ३८३

५- हिन्दी कहानी : दो दशक - डा० सुरेश धींगड़ा - पृ० ५६

वह आधुनिकता को सतत परिवर्तन शील प्रक्रिया न मानकर कालखण्ड का मूल्य, एक सत्य मान लेता है और उस मूल्य एवं सत्य को प्राप्त करने के लिए बड़े से बड़ा मूल्य भी चुकाने को तत्पर रहता है।'[१]

डा० सुरेश धींगड़ा छठे दशक की कहानियों की विवेचना करने के बाद जिस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं उससे हिन्दी कहानी में सामाजिक चेतना की और विशेषकर नारी की सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का तत्व प्रमुख रूप से उभरता है। वे लिखते हैं -

'छठे दशक की प्रमुख कहानियों के वस्तु वृत्तों के इस विवेचन से इस बात का स्पष्ट संकेत प्राप्त हो जाता है कि इस दशक में हिन्दी कहानी एक तीव्र सामाजिक चेतना से सम्पन्न होकर पाठकों के समक्ष आई और कहानीकार ने समाज व्यवस्था के उन सूत्रों को अभिव्यक्त किया जो उसकी यथास्थिति को समाप्त करने में कार्यरत थे अथवा एक नई व्यवस्था की पृष्ठभूमि तैयार करने में व्यस्त थे । इन्हीं सूत्रों के माध्यम से समाज और व्यक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध, उनका अलगाव, उसके कारण नये व्यक्ति की सम्भावनाएं, समाज व्यवस्था, परिवर्तन की दिशाएं, उसकी विसंगतियां और विस्थितियां आदि भी स्पष्ट हुई हैं। कहानीकार यहीं से उस मोह भंग की स्थिति की ओर चला है जो सातवें दशक की कहानी में पूर्णतः व्यक्त हुई है।'[२]

<u>नारी के आर्थिक स्वावलम्बन में पारिवारिक बाधाएँ :-</u>

गिरिराज किशोर की अनेक कहानियों में कमाने वाली नारी का कमाने वाले पति के प्रति भी बदला हुआ दृष्टिकोण चित्रित किया गया है। पति उससे आर्थिक लाभ भी चाहता है और उसे प्राचीन परम्पराओं में बांधे रखना चाहता है - पत्नी को दासी, सेविका, आज्ञाकारिणी बनाए रखना चाहता है या उसके धन का तो उपभोग करता है किन्तु उस पर सदैव शंका करता है। इन दोनों स्थितियों का आधुनिक नारी दृढ़ता से मुकाबला करती है।

रवीन्द्र कालिया की 'चाल' कहानी की नायिका किरण शिक्षित और आर्थिक रूप से स्वावलम्बी कालेज अध्यापिका है परन्तु पति जब उसके आचरण पर सन्देह करता है तो वह कहती है- ' ---------- हमेशा स्त्री पर हावी रहना चाहते हो। तुम चाहते हो, वह तुम्हारे सामने रोती रहे और तुम उसके आंसू पोछ कर बड़प्पन दिखाते रहो। तुम अपने को मन में कितना ही उदार समझो, स्त्री के बारे में तुम्हारे विचार सदियों पुराने हैं। तुम चाहते हो, वह बिना किसी प्रतिशोध के तुम्हारे इस्तेमाल में आती रहे। यही समझते हो न।'[३] वह आगे कहती है - 'तुम्हें यही घमण्ड है न कि तुम पुरुष हो। मुझसे ताकतवर हो, मुझसे श्रेष्ठ हो। यही समझते हो न। हर पुरुष यही समझता है। मगर मैं तुम्हारे दिमाग में सदियों से बैठी यह गलतफहमी निकाल दूँगी।'[४] किन्तु अन्त में आर्थिक स्वाधीनता के बाद भी वह पति के आगे झुकती है।

केवल पति के कारण ही नारी को अपना आर्थिक स्वावलम्बन नहीं छोड़ना पड़ता बल्कि अपनी सन्तान के कारण भी ऐसा करना पड़ रहा है क्योंकि अब संयुक्त परिवार प्रथा भी समाप्त प्राय हो रही है।

निरूपमा सेवती की 'मां यह नौकरी छोड़ दो' कहानी इसी प्रकार की धारणा का चित्रण करती है जहां पति शराबी है, मां नौकरी करती है और बच्चा अकेला तथा उपेक्षित है। किन्तु आर्थिक अभाव और पति की लापरवाही के कारण वह न तो नौकरी छोड़ पाती है और न बच्चे के बिना रह पाती है।

शिक्षा और स्वालम्वन की उपलब्धि के बाद भी नारी यदि परम्परागत संस्कार और मानसिकता से अलग नहीं हो पायी तथा उसके पति, परिवार तथा समाज के परम्परागत संस्कारों और मानसिकता में बदलाव नहीं आया तो नारी अनेक प्रकार के द्वन्द्व, टकराव तथा विक्षोभ का सामना करते रहना पड़ेगा।

१- हिन्दी कहानी : दो दशक - डा० सुरेश धींगड़ा - पृ० ६१
२- वही - पृ० ६५
३- काला रजिस्टर - रवीन्द्र कालिया - पृ० ११३
४- वही - पृ० - ११४

आधुनिक नारी अपने आर्थिक स्वावलम्बन के लिए अपना स्वतन्त्र रोजगार भी चलाती चित्रित की गई है। वह या तो पति के व्यापार को उसके न रहने पर या उससे तलाक ले लेने पर सम्हालती है या अपनी ओर से ही स्वतन्त्र व्यावसाय करती है। मोहन राकेश की 'रोजगार' और राजेन्द्र यादव की 'लौटते हुए' ऐसी ही कहानियां हैं।

नारी के आर्थिक शोषण में माता- पिता - भाई - बहिन भी कम महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभा रहे। राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' की लक्ष्मी अपने पिता के कारण मानसिक रूप से विक्षिप्त हो गयी है।

निरूपमा सेवती की 'टुच्चा' कहानी साक्षात् जीवन से प्रभावित है जैसा कि लेखिका ने स्वयं लिखा है -'मेरी रचनाएं साक्षात् जीवन से ही प्रभावित रही हैं। वह जीवन जिसमें बहु आयामी दबाव है, जिसका सुख- दुख सब झेल रहे हैं, जो हमारे आस-पास हैं। स्वतन्त्रता के बाद का वह भारत, जिसके जीवन में, जिस तथाकथित स्वतन्त्रता में व्यक्ति ने कितना कुछ खोया है, मूल्य बिखरे हैं और वह व्यक्ति अपने लिए किन्हीं मूल्यों की स्थापना नहीं कर पाया है। दो सभ्यताओं ने मिलकर एक दोगली सभ्यता को जन्म दिया है - बस यही सारे दबाव, बिखराव मजबूर करते हैं, कुछ लिखने के लिए।'[1]

'टुच्चा' एक ऐसी समस्या एवं तनावग्रस्त नारी की कहानी है जो जीवन में अपना मार्ग स्वयं चुनने के लिए बाध्य है। वह जब कालेज के प्रथम वर्ष में ही थीं तभी उसके पिता का आकस्मिक निधन हो गया था - पिता काफी कर्ज छोड़ गए थे। बिजनेस पार्टनर ने मां को धोखा दिया था। भाई - बहन छोटे थे और सारा दायित्व उस पर आ पड़ा था। ऐसी असहाय स्थिति में एक नारी विशेषकर नवयुवती का सिवाय शोषण होने के भला होने से रहा, भाग्य से भले ही कोई सहारा मिले। इसलिए ऐसी शोषित स्त्री टूट जाती है। वह या तो मन मसोस कर परिस्थितियों की दास बन जाती है या विद्रोह कर उसी में बुरी तरह उलझ जाती है।

'टुच्चा' की नायिका के साथ भी यही घटित होता है। वह एक के बाद एक अनेक धूर्तों के जाल में फंसती है, उनका अच्छा- खासा 'अल्फाबेट' उसके पास तैयार हो जाता है। विक्टोरिया युग के अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स के 'ओलिवर ट्विस्ट' नामक उपन्यास में बाल - अपराध में जबरन फंसाये गए बच्चों का भी नामकरण अल्फाबेट पर रखा गया है। यहां नायिका अपने धूर्त पुरुष सम्पर्कियों का नामकरण अल्फाबेट में स्मरण करती हैं।

पहला व्यक्ति जो उसे आश्रय देता है वह 'बी' है किन्तु उसने भी जवान लड़की के मन- शरीर का सच्चा प्यार पाया - नायिका को उसी फैक्टरी में टाइपिस्ट की नौकरी मिली। बहुत बाद में वह स्थिति समझ पायी। तब 'एफ' मिला- वह उससे जुड़ गयी और 'बी' से कभी न मिलने का मुंह तोड़ जबाब दिया। पर 'एफ' भी उसे छोड़ यू० एस० ए० जाना चाहता है। 'ये पुरुष उसे सेन्टिमेण्टल फूल' कहकर उसके जीवन का सारा रस ब्लाटिंग पेपर की तरह सोख गए। उसे भय हो जाता है कि यदि वह वीमार हो गयी तो कोई उसके लिए कुछ नहीं कर पायेगा। छोटे भाई बहन भी अब समर्थ हो गए हैं और उन्हें भी अव उसकी आवश्यकता नहीं रही। इसलिए अब वह अपने नये प्रेमी को 'इमोशनली इन्वाल्व' करके एक स्थाई आश्रय चाहती है। वह बॉस की उपपत्नी बनना चाहती है पर बॉस उसे पैसे पर ही रखना चाहता है। वह रविवार अपनी पत्नी के लिए आरक्षित रखता है इसलिए शनिवार उसके साथ बिताता है पर उपपत्नी बनाने से बचना चाहता है। आज जब वह बेसब्री से बॉस का इन्तजार कर रही है तब उसे लगता है -'वह एक उपकरण मात्र बन कर रह गयी है। राशन से लेकर आफिस, तनाव से लेकर तृप्त हुए जानवरों जैसे जिस्म। बस इन्हीं के बीच हाथ - पॉव पटकते जिन्दगी जैसे ठहर सी गई है। घर के लिए समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति, 'के' के लिए शारीरिक पूर्ति, बास के लिए एक मानसिक पूर्ति। स्वयं के लिए कुछ भी नहीं, इतनी अस्तित्वहीन ----- लैम्प पोस्ट के आस -पास जो मच्छर मंडरा रहे हैं, शायद उनसे भी हल्की।'[2]

उसके शोषण के दो स्पष्ट कारण हैं- आर्थिक विवशता और अन्दर छिपे प्रेमिका वनने के कटाणु। इस संक्रामक रोग को उसने वहुत पहले 'किल' कर दिया था। फिर भी बीच - बीच में एकाध बार यह बिना किसी सूचना के उभरा और धोखा देकर

१- साठोत्तर महिला कहानीकार - डा० मधु सन्धु - पृ० ६६

२- टुच्चा - निरूपमा सेवती ।

चलता बना। अब उसे हर शक्ल में धोखा दिखाई देता है। उसे लगता है हर मोड़ पर एक विश्वासघात उसकी ताक में बैठा है। अब वह हर किसी पर अविश्वास किया करती है।'[1]

यह बॉस भी उससे मात्र एक 'उत्तेजना' प्राप्त करना चाहता है जिसे वह रात को अपनी पत्नी पर इस्तेमाल कर सके। बॉस आता है- आधी रात तक वह उसके साथ सुरक्षित कमरे में रहता है और सौ का नोट देकर अकेले छोड़कर चला जाता है। वह चाहकर भी उस नोट को फेंक नहीं पाती। वह इन कागज के टुकड़ों से इस तरह जुड़ी हुई है। जिन्दगी उसके लिए एक लम्बी प्रार्थना के सिवाय कुछ नहीं।'[2]

नायिका इस शोषण के खिलाफ लड़ना भी चाहती है पर अन्ततः स्वयं को ही टूटा हुआ महसूस करती है और ऐसी भ्रम पूर्ण मानसिकता का शिकार हो जाती है कि जब नारी के शरीर को एक्स्प्लाइट किया जाता है तो स्वयं ही क्यों न खुल जाय, यहाँ तक कि बांस की उपपत्नी बनने में क्या हर्ज है। यह अनुभूति विद्रोह के लिए एक ठोस रास्ता तलाश न कर पाने की जगह मुक्ति के लिए मानसिक विद्रोह की सी है।[3]

'वह नौकरी पेशा नारी है, सेक्स उसके लिए नियति है और समर्पण उसकी विवशता है।'[4]

कृष्णा सोबती की बहुचर्चित कहानी 'यारों के यार' में शारीरिक और आर्थिक भ्रष्टाचार के केन्द्र आधुनिक कार्यालय और उनमें कार्यरत लोगों के चारित्रिक पतन का सटीक चित्रण है। स्वयं लेखिका के अनुसार - 'यारो के यार' का यथार्थ आज के यथार्थ से इतना ही निकट या दूर है जितना किसी एक दफ्तर के इस ओर से झांकता दूसरे दफ्तर के उस ओर का साया।'

'यह साया, यह 'अक्स' क्योंकि हमारे 'आज' का चेहरा है - इसे हर कोई यहां - वहां- कहीं भी देख सकता है।'[5]

'यारों के यार' का कथानक कार्यालय के कर्मचारियों की मनोवृत्ति, आर्थिक एवं शारीरिक भ्रष्टाचार आदि द्वारा पदोन्नति एवं अधिकारियों का कृपापात्र बनने, ठेके, टेण्डर एवं लाईसेन्स के लिए सुर से सुन्दरी तक सब तरह की 'सप्लाइ' करने मे सम्बन्धित है। इससे सबका सारा जीवन ही दो रूपों में विभक्त हो गया है - एक वीभत्स रूप और एक सफेद पोशी का मुखौटा। इसमें भी काली करतूतों और काले कारनामों का काला चेहरा नब्बे प्रतिशत और वही वास्तविक चेहरा बन गया है - सफेदी का मुखौटा तो दिखावा भर के लिए थोड़ी देर किसी तरह अभिनय करने वाले पात्र की तरह बस ओढ़े भर रहा जाता है।

<u>आर्थिक स्वावलम्बन के कारण नारी का स्वच्छन्द आचरण :-</u>

अधिक धन कमाने वाली स्त्री पति की आड़ में किसी समाज को धोखा देकर किसी भी व्यक्ति के साथ सम्बन्ध रख सकती है जो उनमें दूरी बढ़ाने का कारण बनता है। पति भी पत्नी के कमरे में नॉक करके प्रवेश करता है। विशेषकर तब जब पत्नी का प्रेमी उसके कमरे में होता है। आधुनिक पति - पत्नी 'चेंज' की तलाश में रहते हैं और सेक्स की मजबूती की कामना से प्रभावित होते हैं। इसी प्रकार 'शीर्षकहीन' कहानी मित्र पत्नी से मित्र की प्रीमिक्सिंग की कहानी है।

रवीन्द्र कालिया की 'एक डरी हुई औरत' में पत्नी तुलना की नजरों में उसका पति एक 'लेजी हस्बैण्ड' है। वह रविवार को भी पति का घर पर रहना सहन नहीं कर पाती क्योंकि उसे प्रेमी से मिलने में बाधा होती है। पति स्वयं अपनी पत्नी को प्रेमी से मिलने - उसके साथ घूमने -फिरने जाने देता है - पत्नी उससे साथ चलने का आग्रह भी नहीं करती और उसे जिन्दा भी रखना चाहती है।

१- साठोत्तर महिला कहानीकार - डा० मधु सन्धु - पृ० ६७
२- वही - पृ० - ६८
३- वही - पृ० - ६६
४- वही - पृ० - ७१
५- वही - पृ० - ४४

इस तरह के सम्बन्धों के प्रति निर्मम और तटस्थ हो जाना आज के पति की नियति है क्योंकि वह जानता है कि तटस्थ हो जाना ही बेहतर स्थिति है।

आधुनिक नारी की पत्नी के रूप में विभिन्न भूमिकाएं :-

आधुनिक नारी को पत्नी रूप में अनेक भूमिकाएं निभानी पड़ती हैं। वह भारतीय परम्परा की नारी के स्वरूप का सर्वथा परित्याग नहीं कर पाती। मन्नू भण्डारी की 'नशा' की आनन्दी तो शराबी और निकम्मे पति की न केवल यन्त्रणा सहती है बल्कि उसे कमा कर खिलाती भी है। पति उससे रुपये छीन कर शराब पिया करता है। यहाँ तक कि उसकी बुरी आदतों के कारण उसका बेटा घर से भाग जाता है। बारह वर्ष बाद भी जब बेटा घर वापस लौटता है तो बाप निरपेक्ष भाव से केवल आनन्दी को उसके आने की सूचना भर देता है और स्वयं आनन्दी से पैसे लेकर शराब पीने चला जाता है। आनन्दी को यह बात बहुत बुरी लगती है कि पति को इतने दिन बाद लौट रहे पुत्र के लिए भी कोई प्रसन्नता नहीं है। पिता के पूर्ववत् आचरण से दुखी पुत्र अपनी मां को जहां से वह आया था वहां अपने साथ ले जाता है पर वहां जाकर भी आनन्दी अपने पति के लिए पुत्र और पुत्रवधु से छिपाकर पैसे कमाती है और अपने पति के पास भेजती है। पति के इतने पतित आचरण के उपरांत भी वह उसका परित्याग नहीं कर पाती। वह सोचती है -'यह सामने बैठकर जो पी रहा है, उससे वह नफरत नहीं कर सकती, वह उसका पति है, उसका सर्वस्व है।'[1]

'गुलकी बन्नो' में पति पत्नी को घर से निकाल देता है, दूसरा विवाह कर लेता है। पति के मारने से पहली पत्नी की रीढ़ की हड्डी भी टूट जाती है, उसे मायके में गांव में परिवार के लोगों का भी आश्रय नहीं मिलता, वह घोघा बुआ के आश्रय में रहती है। वहीं पति दूसरी पत्नी के सन्तान- प्रसव की सेवा - सुश्रुषा के लिए गुलकी बन्नो को लेने आता है और स्पष्ट शब्दों में कहता है कि उसे दासी की तरह रहना हो तो चलकर रहे और गुलकी बन्नो चुपचाप उसके साथ चली जाती है। 'संकट' का राघो अपनी पत्नी को इसलिए मारता है कि उसने बच्चे को जन्म उस समय क्यों दिया जब वह छुट्टियों पर घर आया है क्योंकि वह उन्हीं दिनों में पत्नी के साथ संभोग कर सकता है। फिर भी पत्नी सब कुछ सहन करती है। वह सोचती है मर्दों की तो यह आदत ही होती है।

पति को न छोड़ पाने की अनेकानेक कहानियां हैं जो नारी के उदात्त चरित्र की पुष्टि करती हैं।

मंजुल भगत की 'नालायक बहू' की कामिनी पति की नौकरी छूट जाने पर स्वयं नौकरी करती और पति तथा सास दोनों की प्रताड़ना सहती है। वह अपनी सास से कहती है- 'तुम मां हो न ! इसी से एक बेटे की शेखी न बघार पाने पर दूसरे की बखान कर सकती हो। मैं पत्नी हूँ न ! और पति तो दो -चार होते नहीं, इसी से इकलौते पति की कमियों को लेकर भी जीने का प्रयत्न कर रही हूँ।'[2]

दूसरी ओर ऐसी आधुनिक नारियां भी हैं जो पति द्वारा दी गई यातनाओं के प्रति आक्रोश व्यक्त करते मिलती हैं - यह आक्रोश मानसिक भी है और व्यक्त भी। यहां तक कि मंजुल भगत के 'नागपाश' की नारी तो पति की बुरी आदतों से दुखी होने के कारण अपने गर्भ को भी गिरवा देती है क्योंकि वह नहीं चाहती कि उसका (बच्चे का) भविष्य खराब हो।

आधुनिक नारी की पति के प्रति प्रतिक्रिया :-

आधुनिक नारी के समक्ष सम्बन्धों के त्रिकोण (पति - पत्नी - प्रेमी या पति - पत्नी - प्रेमिका) का संघर्प भी उभरा है। दोनों के शिक्षित होने, स्वतन्त्र होने, स्वावलम्बी होने या बनने की सामर्थ्य या लालसा तथा दहेज की विभीषिका, अनुकूल जीवन साथी के चयन में उपस्थित होने वाली कठिनाइयां विवाह सम्बन्ध में बाधक बनती हैं। यहां तक कि आजकी सरकार द्वारा निर्धारित आयु सीमा कन्या के लिए १८ वर्ष और पुरुष के लिए २१ वर्ष से बहुत बाद क्रमशः २५ और ३० वर्ष की आयु में विवाह होना सामान्य बात बन गयी है। ऐसी स्थिति में विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध या विवाहेत्तर यौन सम्बन्ध की समस्या उग्र रूप में उपस्थित है। आधुनिक भारतीय समाज पाश्चात्य जीवन पद्धति से बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। सिनेमा, टेलीविजन, फिल्मों

१- तीन निगाहों की एक तस्वीर - मन्नू भण्डारी - पृ० ४८
२- गुलमोहर के गुच्छे - मंजुल भगत - पृ० ३१

पत्र -पत्रिकाएं और सबसे अधिक देश - विदेश के व्यक्तिगत अनुभवों ने भारतीय समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है। इसके कारण जीवन पद्धति में, जीवन के प्रति दृष्टिकोण में, सेक्स के प्रति दृष्टिकोण में आमूल चूल परिवर्तन हुआ है। पाश्चात्य देशों में उसका समय - समय पर आकलन भी किया जाता रहा है और उसके चौंकाने वाले परिणाम भी सामने आते रहे हैं जैसा कि अमेरिका में अल्फ्रेड किन्से की रिपोर्ट, जिसका अन्यत्र उल्लेख किया गया है, से स्पष्ट भी हुआ था। परन्तु भारत जैसे साधन हीन एवं विविधताओं वाले देश में यह दुःसाध्य एवं दुष्कर भी है।

एक कामकाजी महिला की मर्मान्तक पीड़ा को सुरेश सेठी की कहानी 'कैंसर' की नायिका निम्मी भोगती है। एम० ए० फर्स्ट क्लास एवं हिन्दी की उदीयमान लेखिका होने पर भी उसे एम० फिल० की रिसर्च स्कालरशिप से वंचित रहना पड़ जाता है जबकि 'सर' को सब्जी लाकर देने वाला उसका एक घोंचू सा साथी स्कालरशिप पा जाता है। लाचार वह रिकार्ड्स की एक दुकान पर नौकरी करती है। शादी शुदा अमर, दुकान का मालिक, यूनिवर्सिटी के सर सभी की ललचाई नजरें निम्मी पर लगी हैं और निम्मी है कि लगातार महसूस करती है कि इस देश में कामकाजी लड़कियां और कुछ नहीं- कसाई की दुकान पर छिले हुए बकरे की सी नुमाइश की तरह हैं, जो आता है पहले पुट्ठे में उंगली कोंच कर ही देखता है।'[१]

सुमति अय्यर के दूसरे कहानी संग्रह 'शेष सम्वाद में संकलित उनकी कहानी' 'स्पर्श' की नायिका अपने बेकार प्रेमी के लिए चिन्तित एवं व्यग्र है क्योंकि उसकी प्रतिज्ञा है कि वह नौकरी मिल जाने पर ही विवाह करेगा यद्यपि उसकी प्रेमिका नौकरी कर रही है। किन्तु अपनी बेरोजगारी से आजिज होने पर भी उसका आक्रोश अपनी बेकारी से हटकर नायिका की बारोजगारी से हो जाता है। वह नायिका से कहता है कि वह अब और उसकी प्रतीक्षा में अपना समय और यौवन व्यर्थ न गवांये।[३]

अपनी नौकरी लगते ही नायिका चाहती है कि नायक उससे विवाह कर ले और फिर नौकरी ढूंढता रहे पर नायक चाहता है या सम्भवतः समाज भी चाहता है कि इस पुरुष प्रधान समाज में पुरुष और स्त्री में से पहले पुरुष कमाऊ बने।

किन्तु नौकरी लगते ही दोनों के बीच दूरी बढ़ने लगती है- नायिका की व्यस्तता के कारण, कार्यालय के उसके खट्टे -मीठे अनुभवों के कारण और नायक के बेकार रहने के कारण। और यह दूरी बढ़ती ही जाती है। अब वह न केवल उससे कुछ बातें छिपाने लगी है बल्कि उस पर कुछ खर्च करने की भी हिम्मत करती है। उसे जब एक साथ सौ रुपयों का 'इन्क्रीमेण्ट' मिलता है तो वह यह बात छिपा जाती है और उस उपलक्ष्य की जो मिठाई घर ले जाती है उसे अपनी सहेली की सगाई की मिठाई बताती है। लेकिन नायक वरुण को उसके एक मित्र से नायिका दिशा के कार्यालय की सारी बातें पता लगती रहती हैं यहॉ तक कि कार्यालय के एम० डी० आलोक के चंचलतापूर्ण चरित्र की जानकारी भी उसे मिल जाती है और वह यह सब बातें दिशा की मां को भी इसलिए बता देता है कि वे दिशा को सावधान कर दें।

दिशा के कार्यालय के एम० डी० मि० आलोक का वैवाहिक जीवन पत्नी की बीमारी से कम किन्तु उसके संस्कारों के कारण अधिक असफल एवं असन्तोषप्रद बन गया है। इस कमी को वह 'उत्तरदायित्व विहीन' किसी भी विवाहेत्तर सम्बन्ध से पूरा करता है। किन्तु वह साफ और सहज है और अपनी कमी को जानता तथा स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है। इतना ही नहीं, वह दिशा को समझाता है कि वह जरा - जरा सी बात पर वरूण से सम्बन्ध तोड़ने की बात न सोचे और कहता है कि वरूण को नौकरी मिल जाय तो सब ठीक हो जायेगा।

फिर वरुण की नौकरी लगने के लिए पांच हजार रुपयों की आवश्यकता आ पड़ती है और मां तथा वरुण भी आलोक से रुपये मांगने का आग्रह दिशा से करते हैं। दिशा विचलित हो उठती है - जिसे मां और वरुण अब तक छंटा बदमाश मान रहे थे उससे ही पांच हजार रुपये लाने के लिए दिशा को वे दोनों प्रेरित कर रहे हैं - सामाज कितना स्वार्थ परायण है। साथ

१- नई कहानी : नये प्रश्न - डा० सन्त बख्श सिंह - पृ० १५६

२- शेष सम्वाद - सुमति अय्यर - पृ०

३- वही - पृ० - १३५

ही कितनी संकुचित दृष्टि। वरुण ने कहा था -'जरा सतर्क रहना कहीं इसकी कीमत------।' दिशा को बहुत बुरा लगा-

'पर शील की रक्षा की शर्त पर। वह मानसिक व्यभिचार जितना चाहे कर सकती है, वहाँ किसी को, किसी कौमार्य भंग की चिन्ता नहीं होगी। पर शरीर सुरक्षित रहे।'[१]

उसे लगा-

'तो यही है वरुण की मानसिकता ! उसे अपने ऊपर ही क्रोध आया। और अम्मा भी शामिल हैं इसमें । ---------उसके तन्नाये चेहरे के पीछे मुग्धा नायिकाओं की तरह वह प्यार की कशिश ढूंढा करती है। पर आज, अपनी होने वाली पत्नी को इतनी हलकी छूट, इतना अधिकार सिर्फ इसलिए देना चाहता है कि उसकी जरूरत पूरी हो। उसके आकर्षण से मानसिक व्यभिचार वह करवा सकता है, पर उसके शरीर की चिन्ता उसे है। वह चाहता है कि आलोक जैसे किसी के भी स्पर्श से वह अछूती रहे।'[२]

दिशा को इस घटना से आत्मिक आघात लगा। उसे लगा वरुण उसका प्रेमी भले हो पर पुरुष नहीं है, पुरुष तो आलोक है जो साफ एवं निष्कपट है। वह रुपया मांगती है और आलोक उसे रुपया लोन के रूप में देने को प्रस्तुत है भी पर वह स्वयं ताकत बटोर कर बोलती है -

'सर क्या आप मेरे साथ उत्तरदायित्वहीन सम्बन्ध निभाने को तैयार हैं, सिर्फ एक दिन के लिए।' और उसकी आवाज कांप गयी। ---------नहीं सर, रुपयों की सख्त जरूरत है और मैं लौटाऊंगी भी, यह सही है। पर मैं चाहती हूँ पहला स्पर्श किसी पुरुष का हो। हां, पुरुष का।'[३]

नारी स्वयं चाहे जितना टूट जाय पर पुरुष को वह कमजोर देखना नहीं चाहती। पुरुष भी यदि उसी की तरह परिस्थितियों का दास बन जाये तो उसका आश्रय लेने की आवश्यकता ही कहां रह जाती है। आधुनिक युग की यह दुखद त्रासदी है कि नारी जितना सबल होती जा रही है पुरुष उतना ही दुर्बल होता जा रहा है।

सन् १९८० की सर्वश्रेष्ठ कहानियों के डा० महीप सिंह के संकलन में राजेन्द्र कौर की 'लुंज' नामक कहानी संकलित है। इसमें एक विकलांग व्यक्ति के चार बेटियों वाले परिवार की करुण कहानी चित्रित है। पिता की कैंसर के कारण दो वर्ष पूर्व बाजू कटवानी पड़ी थी और 'बाबू जी के साथ- साथ ही सारा घर ही अधमरा सा हो गया था।'

उनके परिवार के लिए यह पहली घोर विपत्ति भले हो, पर वे स्वयं तो जन्म से ही अभावों में जीते रहे हैं - मां जन्म देते ही चल बसी- पिता ने झट दूसरा ब्याह रचा लिया - मौसी के सहारे पले और अब जब अपने बच्चों के पालन -पोषण का समय आया तब दायीं बाजू ही कटा देनी पड़ी। चार बच्चे हैं वे भी लड़कियां ही - इसलिए उनके प्रति चिन्तित होना स्वाभाविक ही है। उनमें भी बड़ी लड़की से वे बड़ी अपेक्षा कर रहे हैं - चाहते हैं जल्दी पढ़लिखकर उनके दफ्तर में ही नौकरी पा जाये। इसीलिए तो उसकी परीक्षा के प्रश्नपत्रों के विषय में पूछ तांछ करते हैं और बेटी के यह बताने पर कि गणित के प्रश्नपत्र के अतिरिक्त सभी पेपर अच्छे गए हैं- वे सहसा उत्तेजित हो जाते हैं - तड़ातड़ दो -चार थप्पड़ मार भी देते हैं और इस उत्तेजना में उनका 'लुंज' कांपने लगता है। डाक्टरों ने विशेष हिदायत कर रखी है कि उन्हें क्रोध न दिलाया जाय, उनकी खुराक और आराम का ख्याल रखा जाय, भीड़ भरी बसों में यात्रा न करें। पर कुछ भी नहीं हो पाता। दिल्ली की दौड़ती बसों से दौड़ते हुए पकड़ना पड़ता है- वह भी एक हाथ से। दफ्तर की मेहनत के बाद शाम को घर लौटने पर घर में कर्फ्यू आर्डर लग जाता है- कोई फालतू बात नहीं- कोई शोर गुल नहीं।

१- शेष सम्वाद - सुमति अय्यर - पृ० १३५
२- वही - पृ० १३६
३- वही - पृ० १३७

पर इतने से ही अन्त नहीं है। मां स्वयं घर का बोझ उठा रही हैं - सिलाई सीखकर घर में सिलाई का काम करती हैं। वे बच्चों के लिए भी चिन्तित हैं और बाबू जी के लिए भी। जब जब बाबू जी बच्चों पर खासकर बड़ी बेटी इन्दू पर नाराज होते हैं तो सदा वे कहती हैं -'इन्दु ! तेरे बाबू जी का इसमें कोई दोष नहीं। उनका स्वयं पर कोई वश नहीं रहता। तुम यह बात भूल जाया करो। दिल पर न लगाया करो।'

आज भी जब पिता ने बड़ी बहन को उसकी परीक्षा के विषय में पूछ कर मारा तो सारी बहनें और मां सहम गयी हैं। मां दया और ममता भरी आंखों से उसकी ओर देखती हैं। बहनें भी सहम जाती हैं और तरस भरी निगाह से देखती हैं।

'ऐसा हर बार ही होता है। जिस दिन मुझे मार पड़ती है- मेरी तीनों बहनें और मम्मी सबकी आंखों में मेरे लिए कुछ पिघलता सा भाव होता है। तब मैं सभी की सहानुभूति की पात्र होती हूँ। तीनों बहनें मेरे लिए कुछ भी करने को तत्पर रहती हैं। मुझे अधिक से अधिक सुख पहुँचाने का यत्न करती हैं। उनकी सहानुभूति पाकर मुझे सकून नहीं मिलता। मेरा दिल अपनी तरस भरी स्थिति पर रोने को हो जाता है'[१]

पर इतना ही नहीं है। तरस भरी नजरों से मकान मालकिन और उनके बच्चे भी देखते हैं। इन्दु को उनकी भी इतनी चिन्ता नहीं है पर जब उनका बड़ा लड़का अशोक भी उसकी ओर बड़ी दया और करुणा से देखता है तो सचमुच इन्दु के धैर्य का बांध टूट जाता हैं -

'अचानक मेरी नजर उनके बड़े लड़के अशोक की ओर चली गयी थी। वह मेरी ओर बड़ी दया और करुणा से देख रहा था। बस उसे देखते ही मेरा आंसुओं का बांध टूट गया। मकान मालकिन, उनके छोटे बच्चे लाख झांक कर चले जायं पर मुझे कुछ परवाह नहीं। परन्तु जब अशोक, उनका बी० ए० में पढ़ता लड़का कभी यूं झांक कर देखता है तो मैं दुखी हो उठती हूँ। मुझे आत्मग्लानि और अपमान की भावना घेर लेती है। कई बार दिल में आता है कि मर ही जाऊँ, ऐसे अपमान से तो बच जाऊँगी, ---------।'[२]

वह अशोक के अपने प्रति आकर्षण को भी समझती हैं - 'जब कभी उसका प्यार भींच लेने को दिल उछलता है तो बाबू जी का लुंज मुझे रोकता है। यह लुंज मुझे मेरे सिर पर लटकती जिम्मेदारियों का अहसास करा देता है।'[३]

वह क्या करे ? अपने बाबू जी को भी वह सान्त्वना देना चाहती है - पर बोल नहीं पाती। वह इतनी छोटी उम्र में कितनी संवेदनशील बन गयी है -

'----------मुझे लगता है, मैं सारी आयु इन छोटी बहनों की जिम्मेदारियों के नीचे ही दबी रहूँगी। और शायद मैं मरूस्थल में उगे एक कैकटस की तरह ही रहूँगी जिस पर कोई फूल नहीं खिलता।'[४]

पर आज बाबू जी को न जाने क्यों अपने आप पर क्षोभ हो रहा है। वे आज बेटी इन्दु से स्वयं क्षमा मांगते हैं - उसे दुलराते हैं। इस प्रसंग से समाप्त होती कहानी इस नवयुवती नायिका की मनोदशा का चित्रण इस प्रकार करती है -

'परन्तु अब कोई नहीं देख रहा, बाहर से भी कोई झांक नहीं रहा। मेरा मन करता है, यह अनकहा प्यार दिखाने के

१- १९८० की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियां - सं० महीप सिंह - पृ० -१४३
२- वही - पृ० -१४४- ४५
३- वही - पृ० -१४५
४- वही - पृ० -१४६

लिए मैं सब को आवाज दूँ, मां को, बहनों को, मकान मालकिन को और विशेषकर अशोक को - आओ देखो, बाबू जी मुझे कितना प्यार करते हैं। परन्तु मैं किसी को पुकार नहीं पाती। बाबूजी का लुंज मुझे घूरता सा प्रतीत होता है और मैं कांप जाती हूँ।''

इन्दु में यह सामाजिक चेतना कोई नयी नहीं है। शिक्षा, स्वावलम्बन की भावना एवं स्वतन्त्रता ने जहां नारी के मुक्ति के द्वार खोले हैं, वहां उसे अधिक संवेदनशील एवं उत्तरदायित्व की भावना से पूर्ण बना दिया है। विवाह के पूर्व एवं विवाह के बाद भी वह इससे बुरी तरह जुड़ी और जकड़ी रहती है।

परिवार की परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होने वाली उत्तरदायित्व बोध की चेतना के अतिरिक्त अपने प्रेम -प्रसंगों के कारण भी नारी को अनेक विषम स्थितियों से गुजरना पड़ता है। अमरकान्त की कहानी 'असमर्थ हिलता हाथ' की मीना अपने प्रेमी दिलीप और अपने परिवार के बीच खड़ी की गई प्रतिबन्धों की लकीर को पहले ही तोड़ देती है किन्तु मां की बीमारी का हाल सुनकर वह पुनः परिवार के पिंजड़े में फंस जाती है। यही स्थिति अचला शर्मा की कहानी 'धुंधले अन्धेरे में' में भी देखी जा सकती है।

इस प्रकार आधुनिकतम कहानियों में नारी के आर्थिक क्षेत्र में संघर्ष का चित्रण प्रचुरता से हुआ है और होता जा रहा है। अब तक कामकाजी महिलाओं के समक्ष अनेकानेक समस्याएं उत्पन्न हो रही थीं जिन पर विजय पायी जा रही है। इसका यह आशय नहीं कि उनको अब उस प्रकार की समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ेगा। समस्याएं तो बनती ही रहेंगी और अपना रूप भी बदलती रहेंगी और उनके बदले रूप या तौर -तरीकों से भी नारी को जूझना पड़ेगा। पर इससे क्या ? समस्याओं से घबड़ा कर,उनसे मुंह मोड़ लेने से भी तो कोई काम नहीं बनेगा बल्कि वे उलटे सुरसा के मुख की तरह विकराल ही होती जायेंगी। आधुनिक नारी इसे पूरी तरह समझ चुकी है और इसी में उसका कल्याण निहित है कि वह इन समस्याओं को समझे और उनको सुलझाने के लिए सदा सन्नद्ध रहे।

(२) राजनीतिक और सांस्कृतिक क्रिया कलापों में आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना :-

वस्तुतः नारी की सामाजिक चेतना और राजनीतिक चेतना साथ -साथ जागृत हुई क्योंकि सामाजिक चिन्तकों और राजनीतिक चिन्तकों ने भी यह अनुभव किया कि एक के बिना दूसरे क्षेत्र में प्रगति कर सकना सम्भव नहीं था। इसलिए भारतीय सामाजिक सुधारों के लिए राजनीतिक अधिकारों की मांग भी तेजी से उठायी गयी जिसका कि उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है और जिसके कारण भारत में महिला मताधिकार तथा राजनीतिक चुनावों में उनके चयन की मांग सफल हो सकी।

किन्तु हिन्दी कहानियों में नारी के इस पक्ष का चित्रण उस रूप में नहीं हुआ जिस रूप में होना चाहिए था। हिन्दी के कहानीकार नारी को परिवार और समाज तथा काम सम्बन्धों और अर्थ सम्बन्धों तक ही सीमित रखकर सन्तुष्ट बने रहे। यही स्थिति सांस्कृतिक क्रिया कलापों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। इसका भी जितना चित्रण हिन्दी की कहानियों में हुआ है उसे बहुत सन्तोषप्रद नहीं कहा जा सकता। आगे इस पर दृष्टिपात करते हुए विभिन्न विद्वानों के विचार प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

डा० महेशचन्द्र 'दिवाकर' ने डा० सुरेश सिन्हा को उद्धृत करते हुए लिखा है - 'बींसवी शताब्दी उत्तरार्द्ध की कहानी में भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों के कारण विशाल परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। नये कहानीकारों ने जीवन के बहु विर्धीय पक्षों को अपने चित्रण का आधार बनाया। जहां तक नई कहानियों के माध्यम से आदर्श परिवार एवं आदर्श समाज की स्थापना का प्रश्न है, इस दृष्टि से नई कहानी व्यक्ति और सामाजिकता दोनों ही सीमाओं के बीच गतिशील होती है। वह यदि व्यक्ति के अहम् को चित्रित करती है, तो वह सामाजिक क्रूरता के सन्दर्भ में ही, और जब सामाजिक

१- १६८० की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियां - सं० महीप सिंह - पृ० -१४६

शोषण , वैषम्य एवं अनास्था का चित्रण करती है, तो व्यक्ति के अहम् के ही सन्दर्भ में। (डा० सुरेश सिन्हा- 'हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास -पृ० ५५१) वस्तुतः यह कहानियां व्यक्ति और समाज दोनों को लेकर चलती हैं।'[१]

डा० रघुवीर सिन्हा ने भी लिखा है कि 'परिवर्तित हो रहे पुरुष -नारी सम्बन्धों, विभिन्न पारिवारिक भूमिकाओं में विघटन अथवा मूलभूत अन्तर उजागर करतीं, पारस्परिक मूल्यों में ह्रास या अवमूल्यन प्रतिबिम्बित करती ऐसी अनेक सशक्त रचनाएं पचास से प्रारम्भ होने वाले दशक में पहली बार लिखी गईं। इन्होंने उन नए कथाकारों को जन्म दिया जो अपनी सामाजिक चेतना के प्रति सचेत थे, अपने बदलते सामाजिक परिवेश के प्रति जागरूक थे तथा अपने अनुभव से तराशी हुई अनुभूति के प्रति ईमानदार थे।'[२]

डा० सत्यदेव त्रिपाठी ने सामाजिक विघटन के अनेक कारण गिनाए हैं इनमें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक कारणों को प्रमुख माना है। इतना ही नहीं, उन्होंने आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक कारणों के उन शीर्षकों की भी चर्चा की है जो महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने भारत में सामाजिक विघटन के लिए सांस्कृतिक कारण को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार भारतीय समाज में संस्कृति का सर्वाधिक महत्व रहा है। उनके अनुसार - 'भारत के समाजिक विघटन के लिए सांस्कृतिक कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। भारतीय जीवन में संस्कृति का अधिक मह़त्व रहा है। सामाजिक मूल्यों में संघर्ष, नये मूल्यों का उदय और मूल्यों में व्यक्ति के विश्वास में परिवर्तन, नैतिकता में परिवर्तन, त्रुटिपूर्ण शिक्षा पद्धति तथा नई मनोवृत्तियों और प्राचीन मूल्यों में संघर्ष की स्थिति , भाषा का संघर्ष तथा धार्मिक विश्वास में कमी और धार्मिक मान्यताओं में परिवर्तन तथा मनोरंजन के सिनेमा आदि साधन तथा साहित्य सामाजिक विघटन उत्पन्न करते हैं।'[३]

डा० महेश चन्द्र 'दिवाकर' के अनुसार - भारतीय संस्कृति के अनुरूप स्थापित आदर्श एवं परिवार के विघटित एवं विखंडित स्वरूप का ही यथार्थ चित्रण अनेक कहानीकारों ने किया है और उसमें उन्हें अनूठी सफलता भी मिली है। 'नये कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों, परम्परागत मूल्यों एवं धार्मिक आडम्बरों के प्रति विद्रोह करते हुए एक नवीन समाज रचना की आवश्यकता पर बल दिया है।'[४]

उनके अनुसार यह प्रवृत्ति हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों से ही देखने को मिलती है। 'इन्दुमती' में वे स्वजाति प्रेम और राष्ट्रीयता की सच्ची भावना पाते हैं, तो 'दुलाई वाली'को राष्ट्रीय भावना से ओत -प्रोत। इसी प्रकार जय शंकार प्रसाद की कहानियों में भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रीयता का उत्कृष्ट रूप पाया है। डा० सुरेश सिन्हा के अनुसार भी 'आर्य संस्कृति के प्रति उनकी गहन आस्था थी। उन्होंने संस्कृति का वह चरण चुना है, जिसमें ब्राह्मण और बौद्ध संस्कृतियों के संघर्ष से उसका स्वरूप प्रखर हो उठा था और भारतीय संस्कृति अपने पूर्ण वैभव पर थी। उन्होंने भारतीय संस्कृति के बिखरे अवयवों को जोड़कर अपनी भावुकता, चिन्ता एवं कल्पना द्वारा उसमें प्राण संचार किया है।'[५]

डा० महेश चंद्र 'दिवाकर' के अनुसार यही स्थिति प्रेमचन्द में भी पायी जाती हैं।वे भी भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीयता की भावना के प्रबल समर्थक हैं। यह भावना इन कथाकारों से होती हुई सुदर्शन, उग्र, गुलेरी, चतुर सेन शास्त्री, वृन्दावन लाल वर्मा आदि में तथा जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, विष्णु प्रभाकर, भगवती प्रसाद बाजपेई, चन्द्र गुप्त विद्यालंकार, अमृतलाल नागर, भगवती चरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, रांगेय राघव आदि कहानीकारों में भी मिलती है।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में व्यक्ति स्वार्थो के कारण अवसरवाद, भाई -भतीजावाद, दलबन्दी, गुटबन्दी,क्षेत्रीयतावाद,

---

१- बीसवीं शती की हिन्दी कहानी का समाज मनोवैज्ञानिक अध्ययन - डा० महेशचन्द्र 'दिवाकर' - पृ० १५६

२- आधुनिक हिन्दी कहानी : समाज शास्त्रीय दृष्टि - डा० रघुवीर सिन्हा - पृ० १२

३- सामाजिक विघटन - डा० सत्येन्द्र त्रिपाठी - पृ० ४२-४३

४- बीसवीं शती की हिन्दी कहानी का समाज मनोवैज्ञानिक अध्ययन - डा० महेशचन्द्र 'दिवाकर' - पृ० १६१

५- हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास - डा० सुरेश सिन्हा - पृ० ३४६

प्रान्तीयतावाद आदि ने राजनैतिक राष्ट्रीय भावना को गहरी ठेस पहुँचायी। इसका चित्रण भी मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, कृष्ण सोबती, कृष्ण बलदेव वैद, रेणु,मार्कण्डेय, अमरकान्त, ज्ञानरंजन, महेन्द्र भल्ला, गिरिराज किशोर, नरेश मेहता, महीप सिंह, सुधा अरोड़ा, मृदुला गर्ग, रमेश बक्षी आदि ने गहराई से किया है।

नरेन्द्र कोहली की कहानी 'हिन्दुस्तानी' का एक पात्र नीलिमा कहती है -'मैं जिन्दगी भर अपनी राष्ट्रीयता के कारण लज्जित रही, पर मैंने अपनी अगली पीढ़ी को उससे उबार लिया है।'

इसी प्रकार हिमांशु जोशी की कहानी 'समुद्र और सूर्य के बीच' राष्ट्रीयता एवं स्वजाति प्रेम को इस प्रकार व्यक्त किया गया है - 'देश सेवा एक तप है। जब तक सबको पहनने के लिए पूरे कपड़े नहीं मिलेंगे, मै पूरे कपड़े नहीं पहनूँगा। जब तक सबके रहने के लिए मकान की व्यवस्था नहीं होगी, मै मकान में नहीं रहूँगा। मै वही खाना खाऊंगा जो मेरे देश का आम आदमी खाता है। उसे लगा था, यह गान्धी जी ने नहीं, उसने कहा था। केवल उसी ने'।

इसी प्रकार 'व्यक्ति की आर्थिक, पारिवारिक एवं सामाजिक विषमताओं का यथार्थ चित्रण करते हुए स्वजाति प्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावनाओं को विभिन्न प्रकार से उदीप्त करने का कार्य शती के उत्तरार्द्ध की कहानियों में भी हुआ है।'[१]

इतना ही नहीं, भारतीय संस्कृति की विश्व बन्धुत्व की भावना एवं विश्व कल्याण की कामना बीसवीं शताब्दी की उत्तरार्द्ध की कहानियों में देखने को मिलती है।

हाँ, यह अवश्य है कि पाश्चात्य दर्शनों के प्रभाव से विशेषकर मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद जैसे दर्शनों के प्रभाव से ईश्वर और धर्म में आस्था घटी है अतः अनास्था का स्वर भी गुंजता मिलता है। मन्नू भण्डारी की 'सजा' कहानी में नायिका भगवान् से प्रार्थना करती मिलती है कि वह उसके पापा को पहले जैसा कर दे -------मैं सब कुछ सह लूंगी' और बाबा भी कहता है -'मैं कहता था न बेटे, भगवान् के घर में देर है, पर अन्धेर नहीं, देखा।'[२] लेकिन उन्हीं की दूसरी कहानी 'ईसा के घर इन्सान' में लूसी कहती है 'मैं अपनी जिन्दगीको, अपने इस रूप को चर्च की दीवारों के बीच नष्ट नहीं होने दूंगी। मैं जिन्दा रहना चाहती हूँ।-------- मैं इस चर्च में घुट -घुट कर नहीं मरुँगी। --------- मै भाग जाऊँगी, मैं भाग जाऊँगी।'[३]

डा० महेशचन्द्र 'दिवाकर' के अनुसार - '----------- सम्पूर्ण हिन्दी कहानी भारतीय संस्कृति की कहानी है, सम्पूर्ण भारतीय समाज की कहानी है, भारतीय मानव जाति और उसके समूह की कहानी है।'[४]

तथापि सांस्कृतिक और राजनैतिक क्रिया कलापों में आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना का वह रूप नहीं उभरा जो कि बदली हुई राजनैतिक एवं सांस्कृतिक क्रिया कलापों में आये क्रान्तिकारी परिवर्तन के चित्रण के लिए अपेक्षित था। इतना ही नहीं, अभी दूर -दूर तक इस बात की सम्भावना नहीं है कि आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना राजनैतिक और सांस्कृतिक क्रिया कलापों के क्षेत्र में अभिव्यक्ति पा सकेगी क्योंकि उन दोनों ही क्षेत्रों में नैतिक पतन का दौर - दौरा चल रहा है।

१- बीसवीं शती की हिन्दी कहानी का समाज मनोवैज्ञानिक अध्ययन - डा० महेशचन्द्र 'दिवाकर' - पृ० १६६
२- मेरी प्रिय कहानियां (सजा) - मन्नू भण्डारी - पृ० -११६
३- ईसा के घर इन्सान, मैं हार गई - मन्नू भण्डारी - पृ० - २३
४- बीसवीं शती की हिन्दी कहानी का समाज मनोवैज्ञानिक अध्ययन - डा० महेशचन्द्र 'दिवाकर' - पृ० १८७

सप्तम अध्याय

(अ) नारी के निजी अस्तित्व का अद्यतन स्वरूप

स्त्री पुरुष के सम्बन्धों की आधुनिक अवधारणा के प्रति भारतीय नारी
की नव - मानसिकता

(ब) नारी की सामाजिक चेतना के वास्तविक स्वरूप की विवेचना

पीढ़ियों के बीच अन्तर एवं द्वन्द्व
सामाजिक सम्बन्धों का चित्रण

(स) नारी के निजी अस्तित्व के अद्यतन स्वरूप, उसके पुरुष वर्ग, परिवार तथा समाज के साथ रिश्तों का हिन्दी कहानियों में चित्रण

नारी के विविध रूप
यौन सम्बन्धों का खुला चित्रण
विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त नारी की सामाजिक चेतना

सप्तम अध्याय

(अ) नारी के निजी अस्तित्व का औद्यतन स्वरुप :–

नारी स्वावलम्बन, समानता एवं शिक्षा का प्रभाव बढ़ने के साथ ही नारी को घर से बाहर निकल कर जीवन वृत्ति या जीविकोपार्जन में भी चाहे–अनचाहे लगना पड़ा। नारी ने परिवार, पति या पुत्रों आदि की आर्थिक सहायता के लिए या अपना आर्थिक भार उठाने के लिए या अपनी शिक्षा आदि का सदुपयोग करने या अपने तथा अपने परिवार के लिए सुख सुविधाएं एवं विलासिता के साधन जुटाने के लिए नौकरी करना प्रारम्भ किया और उससे उत्पन्न अनेक प्रकार के दुष्चक्रों को परिवार में या कार्यस्थल पर झेला। उसके लिए पढ़ने जाना भी मुश्किलें पैदा करता है और न पढ़ना भी, नौकरी करना भी मुश्किलें पैदा करता है, और न करना भी। शारीरिक, मानसिक एवं भावात्मक सभी प्रकार से टूट जाना उसकी नियति बन गयी है या नियति बनते देर नहीं लगती। पग–पग पर उसके लिए बाधाएं मुंह बाये खड़ी हैं। विधवा या निराश्रित होने पर तो उसे नौकरी करना बाध्यता बन जाती है और उसी के साथ जुड़े यौन शोषण की भी वह शिकार बनती है। उसे कई प्रकार के उत्तरदायित्व निभाने पड़ते हैं – उसे अपने वृद्ध या असहाय माता – पिता की सहायता के लिए या विधवा मां की सहायता के लिए या अनाथ भाई – बहिनों के लिए या स्वयं अनाथ होने पर मजबूरन अर्थिक समस्याओं से जूझना पड़ता है और उसके लिए उचित – अनुचित सभी प्रकार के व्यवसाय चुनने पड़ते हैं और हर प्रकार का शोषण स्वीकार करना पड़ता है। पति गृह में भी उसे पति के लिए, पुत्रों के लिए, वृद्ध सास – श्वसुर के लिए या अपने वैधव्य आदि विपत्तियों के कारण भी चाहे – अनचाहे सभी प्रकार के शोषण का शिकार होना पड़ता है। मध्य वर्ग की कुछ नारियां उदरपूर्ति के लिए नहीं बल्कि समय व्यतीत करने या अधिक अर्जित कर अधिक भौतिक सुख – साधन जुटाने के लिये भी नौकरी करती मिलती हैं। किन्तु परित्यक्ता पत्नी, विधवा स्त्री, या उत्तरदायित्व वहन करने वाली स्त्री के लिए तो नौकरी करना बाध्यता ही है।

वस्तुतः शिक्षा के प्रसार के साथ ही साथ आधुनिक ज्ञान एवं विज्ञान की प्रगति ने, औद्योगीकरण एवं मशीनीकरण ने भारतीय सामाजिक स्थिति को जड़ से ही हिला दिया है। संयुक्त परिवार अब स्वप्न की बात बन गए हैं। औद्योगीकरण एवं मशीनीकरण ने जहां एक ओर लघु उद्योग धन्धों को चौपट किया है वहीं गांवों की संस्कृति को नष्ट कर नगरीकरण को भी बढ़ावा दिया है। इससे सामाजिक प्रगति ने एक ओर मानव जीवन को अधिक सुखमय बनाने का प्रयास किया है वहीं दूसरी ओर उसके उपभोग की इतनी वस्तुओं को प्रस्तुत कर दिया है कि उनके प्रति आकर्षण तो बढ़ता ही है बाध्यता भी बढ़ती ही जाती है। इसलिए इन सभी साधन सामग्रियों को जुटाने के लिए या शीघ्रता से प्राप्त कर लेने के लिए परिवार के सभी सदस्यों को कमाने लगना अनिवार्य सा बनता रहा है। इससे संयुक्त परिवार अब एकाकी परिवार बनते जा रहे हैं। संयुक्त परिवार में कुछ सदस्य ही अर्जन करते थे और शेष सदस्य उन्हीं पर निर्भर रहते थे परन्तु तब संयुक्त परिवार की आवश्यकताएं अत्यन्त सीमित थीं किन्तु अब हर व्यक्ति की आवश्यकताएं बहुत बढ़ गयी हैं और दिन प्रतिदिन वैज्ञानिक प्रगति के साथ बढ़ती भी जा रही हैं। इसलिए भी प्रत्येक व्यक्ति को अर्जन करने में लगना नितान्त अनिवार्य बन गया है।

अब कोई भी किसी का भार उठाने का न तो इच्छुक रह गया है न समर्थ। कोई चाहे भी तो किसी को पूर्णतया अपने ऊपर अवलम्बित या आश्रित बना कर नहीं रख सकता।

ऐसी स्थिति में नारी का निजी अस्तित्व ही सबसे अधिक संकट में पड़ता है क्योंकि वह अब तक सामाजिक बन्धनों के कारण, शिक्षा के अभाव के कारण तथा अन्य इसी प्रकार के कारणों से परावलम्बी रही है। अब वह शिक्षित होकर न केवल आत्मनिर्भर बनती है बल्कि अपने माता–पिता को, चाहे वे वृद्ध या असमर्थ हों या न हों, कुछ न कुछ अर्जित करके सहायता करती हैं। कभी–कभी तो उसे अपने वृद्ध या बीमार माता–पिता या छोटे–भाई बहिनों का पूरा भार भी उठाना पड़ता हैं। यही नहीं, उसे अपने विवाह के लिए भी पर्याप्त धन संग्रह करना पड़ जाता है। कभी–कभी तो विशेषकर उसके अधिक धन अर्जित करने की स्थिति में, उसका विवाह भी माँ–बाप इसलिए शीघ्र नहीं करना चाहते क्योंकि वह उनके परिवार के लिए आय का अच्छा स्रोत बन जाती है। इस प्रकार विवाह पूर्व नारी यदि कम अर्जित कर पाती है या कुछ भी अर्जित नहीं कर पाती तो भी उसे कष्ट मिलता है। इस पर यदि माता–पिता वृद्ध या असमर्थ या असहाय हों या उनमें से एक विशेषकर पिता दिवंगत हो गया हो तो अपनी असहाय मां को छोड़कर मां को छोड़कर नारी अपने पति का चयन नहीं कर पाती। कई बार इस प्रकार परिस्थितिवश

असहाय या असमर्थ बने पारिवारिक जनों (चाहे वह मां हो या छोटे भाई -बहिन) का जब तक बोझ नहीं उतर जाता तब तक नारी को अपने कर्तव्य बोध के कारण परिवार के बोझ को ढोते रहना पड़ता है और उसकी अपनी विवाह की आयु यों ही बीत जाती या बर्बाद हो जाती है।

इसी प्रकार पति गृह में भी उसे इसी प्रकार के उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना पड़ सकता है जहां माता -पिता का स्थान सास- श्वसुर तथा भाई -बहिन का स्थान देवर ननद ले लेते हैं और उन सबसे ऊपर अपने पति का भी भार उसे ढोना पड़ता है यदि दैवयोग से वह बीमार, असमर्थ या अर्थोपार्जन में असमर्थ हो या फिर दुष्ट, पतित, दुर्व्यसनी या कामचोर हो।

इस प्रकार आधुनिक नारी को अनेक प्रकार के व्यथा -भोग का शिकार होना पड़ता है -इसमें उसकी स्वतन्त्रता, स्वावलम्बन या शिक्षा कोई बहुत सहायता नही कर पाते। परिवार से बाहर भी उसे अनेक व्यथाओं का सामना करना पड़ता है विशेषकर अर्थोपार्जन के क्षेत्र में। उसे परिवार एवं समाज दोनों क्षेत्रों में सामंजस्य बनाये रखना पड़ता है क्योंकि परिवार उसके सामाजिक आचरण को सदा शंका की दृष्टि से देखता है और समाज उसकी पारिवारिक स्थिति के आधार पर उसका शोषण करने की अतिरिक्त ऊर्जा प्राप्त करता मिलता है।

वह पारिवारिक दायित्वों का भी निर्वाह करती है, सामाजिक रिश्तों के नये सन्दर्भों से भी सामंजस्य करने की तथा पुरुष -स्त्री के नये सम्बन्धों का भी निर्वाह करने के लिए प्रतिबद्ध होती है। इसमें उसकी नव -मानसिकता कहीं उसका साथ देती है और कहीं उसे बिलकुल ही विद्रोही या संकुचित एवं स्वार्थी तथा आत्म केन्द्रित बनाती है। इन सब अन्तर्सम्बन्धों से तरह -तरह की स्थितियां उपस्थित होती हैं। नारी उनका कहाँ तक निर्वाह करती है और कहा उनसे टकराती है -इनसे उत्पन्न सभी प्रकार की स्थितियों का विवेचन हिन्दी के आधुनिक कथाकारों ने विशेषकर साठोत्तरी कहानीकारों ने किया है जिसका विवेचन अगले अनुच्छेदों में किया गया है।

स्त्री -पुरुष के सम्बन्धों की आधुनिक अवधारणा के प्रति भारतीय नारी की नव -मानसिकता :-

स्त्री -पुरुष के सम्बन्धों की आधुनिक अवधारणा बिलकुल ही बदल गयी है। इसके लिए स्त्री और पुरुष दोनों ही समान रूप से उत्तरदायी हैं। पुरुष ने स्त्री को अधिक स्वतन्त्रता, अधिक समानता और अधिक स्वावलम्बन देने के नाम पर यदि उसके लिए मार्ग प्रशस्त करने में सहायता दी तो उसके शोषण की दिशा में भी कदम उठाने से संकोच नहीं किया। इसी प्रकार नारी ने भी जहां स्वतन्त्रता, समानता एवं स्वावलम्बन का संबल पाया वहीं उसका दुरूपयोग करने में पीछे नहीं रहीं।

स्त्री- पुरुष सम्बन्धों की आधुनिक अवधारणा के प्रति भारतीय नारी की नव-मानसिकता पर पुरुषों ने ही नहीं स्वयं नारियों ने भी विचार व्यक्त किए हैं। पुरुषों की नव मानसिकता में कुछ पक्षपात या अभिनिवेश का तत्व हो सकता है जाने -अनजाने आ गया हो किन्तु नारी की नव मानसिकता में पक्षपात एवं अभिनिवेश का तत्व होने की सम्भावना अत्यन्त क्षीण रहती है।

तो नारी की नव-मानसिकता पर विचार करने से पूर्व एक विदुषी नारी के विचारों पर दृष्टिपात कर लें।

महिला शोधकर्त्री (डा० शील प्रभा वर्मा) ने 'आधुनिक महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक सन्दर्भों' शीर्षक अपने शोध प्रबन्ध में 'प्रेम- बदलते रंग ढंग -बदलते सन्दर्भ' शीर्षक अध्याय में प्रेम के बदलते रंग -ढंग पर चर्चा करने के पूर्व एक कहानी का उल्लेख कर कहा है कि आज हम जहां एक ओर भौतिक समृद्धि कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर हमसे नैतिकता दूर होती जा रही है। प्रेम के क्षेत्र में भी हम उसी अनैतिकता के शिकार हो रहे है। उनके द्वारा उद्धृत उस कहानी का सारांश यह है -

एक आधुनिक छोटे से राज्य में किसी बात की कमी न थी। आधुनिक वैज्ञानिक साधन राज्य तक पहुँच चुके थे नव युवक राजा को इस बात का गर्व था कि उसकी प्रजा उसके पिता तथा पितामह के राज्य काल से अधिक सुखी थी। एक दिन

राजसभा में उसने यही बात गर्व से कही और मन्त्री से उसकी पुष्टि की अपेक्षा की । मन्त्री ने कहा यह तो वही व्यक्ति बता सकता है जिसने आपके पितामह और पिता तथा आप तीनों का राज्यकाल देखा हो। राजा ने मन्त्री को ही एक माह में ऐसे व्यक्ति को उपस्थित करने का आदेश जारी कर दिया। एक माह बाद मन्त्री एक अत्यन्त वृद्ध व्यक्ति को लेकर राजा के समक्ष उपस्थित हुआ। वृद्ध व्यक्ति ने कहा कि महाराज यदि अभयदान दें तो वह अपने जीवन की एक घटना सुना सकता है जिससे महाराज स्वयं निष्कर्ष निकाल ले। राजा ने उसे अभयदान दिया और निर्भय होकर अपनी बात कहने को कहा। तब उस वृद्ध ने कहा जब आपके पितामह का राज्य था तब लोगों के मिटटी के बने कच्चे घर थे, सड़कें भी कच्ची थीं किन्तु फसल भरपूर होती थी, दूध होता था,लोग सत्यवादी थे, नैतिकता उनमें भरी पड़ी थी, जो कहते थे, करते थे। बात एक बरसात की है। आकाश में काले-काले बादल उमड़ घुमड़ रहे थे, रिमझिम वर्षा हो रही थी। सध्या के समय मेरे द्वार पर गहनों से लदी एक अनुपम सुन्दर नारी सिर पर गठरी लिए पहुँची। उसने मुझसे आगे के गाँव का मार्ग पूछा। मैंने कहा - बहन गाँव दूर है, बीच में नदी है,रात हो रही है। वर्षा और भी बढ़ेगी। मार्ग जगंली है। अतः तुम रात यहीं बिता लो। सुबह चली जाना। मेरी पत्नी ने उसे ननद का सम्मान दिया। दूसरे दिन पाँच रुपये और एक साड़ी देकर अपना एक नौकर उसके साथ लगा कर मैंने उसे विदा किया।

आपके पिता का राज्य आया। राज्य सम्पन्न हुआ। सुख साधन बढ़े, वैज्ञानिक प्रगति हुई। पर एक बरसात के दिन मुझे उसी सुन्दर युवती का स्मरण आया। मेरे मन के किसी कोने ने कहा "मुझे उस नारी को साड़ी और रुपये देने की क्या आवश्यकता थी? उसे खाना खिलाने की क्या आवश्यकता थी?

आपके पिता की मृत्यु के बाद आपका राज्य आया। मैं सम्पन्न हूँ, मेरे बच्चे व्यवसाय में उन्नति कर रहे हैं राज्य भी भौतिक सम्पन्ता से परिपूर्ण है। इसी बीच एक बरसात की समय को मुझे उस घटना का पुनः स्मरण हो आया। मैने सोचा मैं कितना मूर्ख था, जो मैंने उस स्त्री को रुपये और साड़ी दी थी। उचित तो यह होता कि मैं उसकी गठरी और गहने छीन लेता और उसे अपनी उपपत्नी बना लेता। [1]

डा० शीला प्रभा वर्मा के अनुसार 'महिला लेखिकाओं ने प्रेम के विभिन्न रूप रंगं अपनी औपन्यासिक कृतियों में व्यक्त किए हैं। इनमें कुछ आकर्षक हैं, कुछ वितृष्णा उत्पन्न करते हैं और कुछ हमें सोचने विचारने के लिए विवश करते हैं।'[2]

उन्होने 'प्रेम' को स्त्री पुरूष के लैंगिक सम्बन्धों तक सीमित रखते हुए बड़ी तीखी टिप्पणी की है। वे लिखती हैं -

'आज परिवर्तित समय में प्रेम का स्वरूप भी बदल चुका है, चातक वत प्रेम आज अतीत की कहानी बन चुका है,वासना के देश ने प्रेम को विषमय बना दिया है, व्यक्ति के स्वार्थ की वृति इतनी बढ़ चुकी है, कि मानव प्रेम की भावना भी विलुप्त होती जा रही है। प्रेम को साधने के लिए व्यक्ति आज छल,कपट,प्रपंच,षड़यन्त्र आदि का सहारा ले रहा है। रहा होगा कोई युग जब प्रेम का सौदा होता है,प्रेम 'हाट' में न बिकता रहा होगा किन्तु आज प्रेम का सौदा होता है, प्रेम बिकता है, प्रेम खरीदा जाता है, नारी के प्रति व्यक्ति की उदात्त भावनाएं बीते युग की कहानी बन चुकी हैं। आज वह नारी को अपनी वासना की पूर्ति का साधन मान रहा है।'[3]

ततपश्चात उन्होंने स्त्री पुरूष के लैगिंक सम्बधों को ही ध्यान में रख कर जिन उप शीर्षकों के अर्न्तगत आधुनिक काम - सम्बन्धों को विभाजित कर एक समग्र चित्र उपस्थित करने का प्रयास किया है वह समग्र चित्र तो नहीं कहा जा सकता क्योंकि काम के विशेष कर विकृत काम के न जाने कितने रूप होते हैं, किन्तु उससे उस चित्र की कल्पना तो की ही जा सकती है ऐसा नही हैं कि यह भारत में ही हो रहा है। स्वच्छन्दता ने विशेषकर काम सम्बधों और काम - क्रियाओं की स्वच्छन्दता ने पश्चिमी देशों को, जो इस स्वच्छन्दताके प्रबल समर्थक हैं क्योंकि वे उसे प्रकृतिमय एवं स्वाभाविक प्रवृति मानते हैं और उसके दमन को और अधिक भयंकर मानते हैं, बुरी तरह चौंका दिया और चिन्तित कर दिया है। अल्फ्रेड किन्से आदि के 'सेक्सुअल बिहेवियर इन ह्यूमन मेल' एवं 'सेक्सुअल बिहेवियर इन ह्यूमन फिमेल' नामक सर्वेक्षणों ने पाश्चात्य देशों को चौंका दिया था। तब से अब तक अनेक ऐसे सर्वेक्षण किये गयें हैं औरउनके परिणाम भी कम चौंकाने वाले नहीं हैं।

१- महिला उपन्यासकार की रचनाओं में बदलते सामाजिक सन्दर्भ -डा० शीला प्रभा वर्मा - पृष्ठ - १४५-१४६

२- वही पृष्ठ - १४६

३- वही पृष्ठ - १४५

भारत में भी साहित्यकारों ने काम - संवेग के जिन विचित्र, वीभत्स एवं विचलनमुक्त व्यवहारों का वर्णन किया है उनकी एक झलक डा० शीला प्रभा वर्मा द्वारा दिए गए उनके शीर्षकों से ही मिल जायेगी जो इस प्रकार है -

१- विभिन्न प्रेम पात्र - विभिन्न प्रेमानुभूतियां
२- प्रेम बनाम बलात्कार
३- व्यक्ति से प्रेम - धन से विवाह
४- वीरोचित प्रेम
५- प्रेम की तुलना में अर्थ को महत्व देने वाली पत्नी
६- प्रेम और विश्वास
७- अपयश प्रेम की राह में बाधक
८- एक ही सिक्के के दो पहलू - प्रेम का दर्द - दाँत का दर्द
६- वासना विहीन प्रेम
१०- पुत्री के प्रति वासनात्मक दृष्टि
११- जीजा और साली का प्रेम
१२- राखी से बधें हाथ - वासना के साथ
१३- प्रेम के विचित्र ढंग - प्रेमियों के संग
१४- प्रेमी का गर्भ - पति का नाम
१५- जेठ का गर्भ - पति का नाम
१६- और भी गम हैं जमाने में
१७- पूर्व प्रेमी से विरक्ति - उसकी पत्नी के प्रति सहानुभूति
१८- पूर्व पत्नी से प्रेम
१६- प्रेम और यौन स्वच्छन्दता
२०- यौन वर्जनाओं की मारी - बेचारी नारी
२१- प्रेम और समर्पण
२२- दो पुरूष - एक नारी
२३- दो नारियां - एक पुरूष
२४- पर पुरूष एवं परस्त्री प्रेम सम्बन्ध
२५- एक पुरूष अनेक नारियां
२६- उपपत्नी[1]

अव एक मन्तव्य एक अन्य महिला डा० विजया वारद (रागा) के शोध प्रवन्ध 'साठोत्तरी हिन्दी कहानी और महिला लेखिकाएं' से लें। उनके अनुसार सन् १६१० से १६५० के कालखण्ड में महिला लेखिकाओं की सख्यां उगंलियों पर गिनने योग्य थी परन्तु सन् १६६० के बाद दर्जनों नहीं सैकड़ों लेखिकाएं इस क्षेत्र में आ गयी है।' उन्होंने इनमें से ३७ लेखिकाओं की १२६ कहानियों का अध्ययन अपने शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार 'सारी आधुनिकता के बावजूद यह वास्तविकता है कि स्त्री और पुरूष के जीवन की सार्थकता परिवार के भीतर ही है। परिवार विवाह के कारण बनता है। महानगरों और नगरों में उच्च और मध्यमवर्गीय युवतियां विवाह पूर्व या तो किसी युवक के सम्पर्क में आ जाती हैं अथवा मन ही मन किसी को चाहने लगती हैं। 'विवाह पूर्व प्रेम' उसके भावजगत पर एक महत्वपूर्ण लक्षण बनता जा रहा है। परन्तु प्रत्येक युवती के जीवन का यह सच नहीं है। नब्बे प्रतिशत युवतियां एक विशिष्ट आयु के बाद विवाह की प्रतीक्षा में जीने लगती हैं। दहेज प्रथा के कारण यह प्रतीक्षा जानलेवा साबित हो जाती है। इन युवतियों मे कुछ पढ़ती रहती हैं। कुछ घरेलू कामों में लग जाती हैं और कुछ कामकाजी बन कर प्रतीक्षा रत हो जाती हैं। इनमें से कुछ पर आर्थिक जिम्मेदारियां आ जाती हैं।'[2]

१- महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक सन्दर्भ - डा० शील प्रभा वर्मा - पृष्ठ - १४६-१७२
२- साठोत्तरी हिन्दी कहानी और महिला लेखिकाएं - डा० विजया वारद (रागा) - पृ० - २०

वहीं वे विवेचनाधीन ३७ कहानियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से करती हैं-

१- विवाह की प्रतीक्षा में बैठी युवतियों से सम्बन्धित कहानियां
२- विवाह पूर्व प्रेम से सम्बन्धित कहानियां
३- विवाहोत्तर प्रेम से सम्बन्धित कहानियां
४- पत्नी रूप से सम्बन्धित कहानियां
५- परिवार के अन्य सदस्यों से सम्बन्धित कहानियां
६- मातृत्व से सम्बन्धित कहानियां
७- विधवा से सम्बन्धित कहानियां
८- अकेलेपन से सम्बन्धित कहानियां'[1]

इस प्रकार वे अधिकांश में स्त्री - पुरूष के सम्बन्ध का ही विश्लेषण करती मिलती हैं।

विज्ञान प्रगति और शिक्षा के प्रसार आदि से भी स्त्री पुरूष सम्बन्धों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। शिक्षित और जागरूक नारी अपनी संवेदनशीलता को गोपनीय नहीं रख पाती। पारिवारिक बंधनों से मुक्त हो जाने पर भी वह आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक दबावों से ग्रस्त है।

डा० विजया वारद ने लिखा है -

'शिक्षा की सुविधाएं, विज्ञान की प्रगति और स्त्री शिक्षा के प्रति बढ़ती हुई जागृति के कारण पिछले बीस-पच्चीस वर्षों से विवाह की उम्र में मूलभूत परिवर्तन हुआ है। सरकारी प्रचार तन्त्र भी लड़की का विवाह अट्ठारह वर्ष बाद करने का आग्रह कर रहे हैं। शहरी मध्यवर्ग में लड़कियों का विवाह पूर्ण युवती होने के बाद अर्थात् इक्कीस वर्ष बाद किया जा रहा है। धीरे-धीरे इस आयु में होने वाले विवाहो की संख्या बढ़ रही है। देरी से विवाह के कारण जनसंख्या पर नियन्त्रण होता होगा अथवा उसके और भी कई फायदे होते होंगे। परन्तु इससे कुछ सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक प्रश्न उभर रहे हैं। इन प्रश्नों से जूझती युवतियों की मानसिकता उस परिवार के लिए एक चुनौती बन रही हैं। इससे उत्पन्न विविध समस्याओं में सबसे भयावह समस्या यौन आकांक्षा की है। संभोग और सृजन का सम्बन्ध विज्ञान ने तोड़ दिया है। इस कारण कभी जिज्ञासावश और कभी असहर्नीय इच्छाओं के सम्मुख पराभूत होकर विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध स्थापित हो रहे हैं। समझदार युवती को अब कुमारी माता बनने का भय भी नहीं है।

कभी अर्थाभाव के कारण विवाह की समस्या जटिल होती जा रही है तो कभी सन्तान की अधिकता के कारण लड़की का विवाह समय पर नहीं हो पा रहा है और इस कारण यौन अतृप्ति की छटपटाहट में वह जी रही है।

कुरूपता वास्तव में प्रकृति द्वारा दिया गया एक शाप है। कुरूप स्त्री का तो इसमें कोई दोष नहीं होता। परन्तु प्रकृति के इस अभिशाप की यातना को लेकर उसे जिन्दगी भर जीना पडता है। कुरूप स्त्री की भयावह समस्या यौनेच्छा पूर्ति की होती है।'[2]

इसी प्रकार आर्थिक विपन्नता, जातीय भेदभाव, खानदान की प्रतिष्ठा आदि अनेक तत्व स्त्री -पुरुष सम्वन्ध में कड़ुवाहट उत्पन्न कर रहे हैं। और इन सबके ऊपर स्त्री और पुरुष दोनों का ही कल्पना लोक में विचरण, बड़ी कल्पित आशाओं, कामनाओं का स्वप्निल संसार उन्हें चूर -चूर कर देता है। नाटको, फिल्मों, टेलीविजन और रोमाण्टिक साहित्य से भरा पड़ा पत्र -पत्रिकाओं और पुस्तकों का संसार नवयुवकों और नवयुवतियों के सुकोमल मन में सुनहरे संसार की सृष्टि करता है जो एक झटके में ही

१- साठोत्तरी हिन्दी कहानी और महिला लेखिकाएं - डा० विजया वारद (रागा) - पृ० - २०- २१
२- वही - पृ० -२२

टूट जाता है। उसके भयंकर दुष्परिणाम उतने ही घातक होते हैं जितना उनके प्रति संवेगात्मक लगाव होता है।

पुरुष नारी सम्बन्ध में केवल पुरुष की अहंमन्यता ही बाधक नहीं होती युवतियों का अहंकार भी बाधक बनता है। पुरुष यह नहीं समझता कि नारी को नकारना उसके लिए न केवल दुख का कारण बनता है बल्कि उसे जड़ से हिला देता है। इस यातना का अनुभव वही कर सकता है जिसे यह यातना भोगनी पड़ती है इस प्रकार वह विवाह बन्धन को ही अस्वीकार करने लगती है किन्तु उसे अन्य अनेक विषम परिस्थितियों में फंस जाना पड़ता है। वह दैहिक आवश्यकता की तो उचित -अनुचित का विचार किए बिना पूर्ति कर सकती है किन्तु मातृत्व की प्यास एवं अकेलेपन से उत्पन्न अभाव की पूर्ति नहीं कर सकती जो उसके शेष सारे जीवन मे खलती रहती है। स्वावलम्बन की प्राप्ति और स्वाभिमान की रक्षा के लिए यदि वह अर्थोपार्जन में प्रवृत्त होती है तो भी उसे अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कामकाजी महिलाओं से कुछ पुरुष विवाह करने को तत्पर तो होते है किन्तु उनके मन में शंका भी उत्पन्न होती रहती है। ऐसी स्थिति में नारी धनोपार्जन में प्रवृत्त हो तो मुश्किल और न प्रवृत्त हो तो मुश्किल। विवाह पूर्व अर्थोपार्जन करने लगने पर कई बार घर के लोग ही उसका विवाह इस लिए नहीं होते देते कि उनकी आय का स्रोत समाप्त हो जायेगा। विवाह के बाद पति आय तो चाहता है किन्तु नारी को प्रतिबन्धों में रखना चाहता है या उस पर शंका करता रहता है।

इस प्रकार की परिस्थितियों में नारी विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध भी स्थापित करने लगती है या काम -भावना को दमित या कुण्ठित करती रहती है। इतना ही नहीं, वह विवाहोत्तर काम सम्बन्ध भी स्थापित करने में प्रवृत्त हो जाती है। कई बार यह पति की उच्छृंखलता के प्रतिवाद में प्रतिक्रिया स्वरूप होता है और कई बार पति की नपुंसकता, कुरूपता, असमर्थता, आर्थिक विपन्नता आदि के कारण। इस प्रकार वह पति के कारण या परिवार के कारण या समाज के कारण विषम स्थितियों में फंसती रहती है। पुरुष भी स्त्री को केवल भोग की वस्तु मानकर उसे अर्थ के बल पर अपने लिए सुलभ करना चाहता है और उपभोग के बाद उसको तिरस्कार या उपेक्षा ही देता है।

समानता की भावना विकसित होने के कारण नारी अब पुरुष की दासी नहीं रहना चाहती, न उसका संरक्षण चाहती है वह वराबरी या समानता का व्यवहार चाहती है। पुरुष उसे अकारण या सकारण भी पीड़ित नहीं कर सकता। वह एक पुरुष से वंधे रहने के लिए भी बाध्य नहीं होना चाहती। विवाह पूर्व या विवाहेत्तर सम्बन्ध बनाने में उसे किसी प्रकार का प्रतिबन्ध अर्थहीन लगता है। काम सम्बन्ध के विषय में वह पुराने प्रतिबन्धों से बधे रहना निरर्थक समझती है। ऐसी ही मानसिकता पुरुषों की भी बन रही है। वे काम सम्बन्धों में पहले भी अपनी निरंकुशता के लिए बदनाम रहे है, अब उनकी नैतिकता की कोई सीमा नहीं रह जायेगी, ऐसा लगने लगा है।

चन्द्रकान्ता बंसल ने सातवें दशक की हिन्दी कहानी में मानवीय सम्बन्ध पर विचार करते हुए लिखा है :

'पति -पत्नी के सम्बन्धों में श्रेणी विभाजन दोनों के बीच तीसरे व्यक्ति के आगमन से होता है। कभी पत्नी के प्रेमी के आ जाने से तो कभी पति की प्रेमिका के आ जाने से। साथ ही पत्नी में अपनी सत्ता के प्रति अपने व्यक्तित्व के प्रति जागरुकता उत्पन्न हो गई है। उसकी सीमाएं घर के बन्धनों में ही नहीं रही हैं। पति से पृथक उसकी स्वतन्त्र रूचियां, महत्वाकांक्षाएं और आवश्यकताएं हैं अतः धर्म की धारणा एक सीमा तक विघटित हो गई है।'[1]

वे आगे लिखती हैं - 'स्पष्ट है कि जीवन दृष्टि के बदलने के साथ - साथ मानवीय सम्बन्धों की सार्थकता व निरर्थकता की व्याख्याएं बदल जाती हैं।' घटनाएं नयी नहीं होतीं, मानवीय सम्बन्ध भी बहुत नये नहीं होते, भावावेग और आन्तरिक उद्वेग भी अछूते नहीं होते, पर इन सब की एक नयी दृष्टि से अन्विति ही एक नया प्रभाव छोड़ती है।' (नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर -पृ०- ३०) फलतः मानवीय सम्बन्ध के नित -नये स्वरूप उद्घाटित होते हैं। हम मानवीय सम्बन्धों की निश्चित या सीमित श्रेणियां नहीं वना सकते क्योंकि परस्पर भावना में परिवर्तन भी सम्बन्धों की नयी श्रेणी की परिधि सृजित कर सकता है।'[2]

१- सातवें दशक की हिन्दी कहानी में मानवीय सम्बन्ध - चन्द्रकान्ता वंसल - पृ०- २२- २३
२- वही - पृ० - २३

राजेन्द्र यादव के अनुसार - 'व्यक्ति - व्यक्ति के सम्बन्धों में सबसे अधिक जटिल, नाटकीय और अनिवार्य सम्बन्ध स्त्री -पुरुष का आपसी सम्बन्ध है।'[1] और यदि इनमें व्यवहार की खुली छूट दे दी जाय तो फिर उनकी विसंगतियों की गणना करना ही कठिन है। हिन्दी कहानियों में विशेषकर साठोत्तरी कहानियों में इनके विविध रूप चित्रित किये गये है। इनमें से कुछ व्यवहार तो बहुत ही अस्वाभाविक तथा विचित्र लगते हैं पर वे वास्तविक जगत से ही लिए गए हैं।

(ब) नारी की सामाजिक चेतना के वास्तविक स्वरूप की विवेचना :-

पिछले कुछ ही दशकों में भारतीय समाज और परिवार में जितने व्यापक एवं क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। उतने अनेक शताब्दियों में भी नहीं हुए। सही मायने में भारतीय समाज और परिवार की रूपरेखा अब बिलकुल भिन्न हो गयी है। इसका कारण धार्मिक नैतिक सांस्कृतिक एवं पारम्परिक मान्यताओं में आमूल-चूल परिवर्तन है। उनके प्रति चल रही पूर्व धारणाओं से मोह भंग हुआ है। धार्मिक,नैतिक,सामाजिक एवं पारम्परिक मूल्यों का विघटन हुआ है। इससे व्यक्ति चेतना को आघात लगा है और उसको प्रत्येक बात पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य होना पड़ा है और चाहे अनचाहे अनेक बदलावों और परिवर्तनों को अंगीकार करना पड़ा है। यह परिर्वतन बड़ी तेजी से हो रहा है और नये नये रूप ग्रहण कर रहा है। यह परिवर्तन बाह्य और आन्तरिक दोनों रूपों में हुआ है। बाह्य परिर्वतन जहां रहन-सहन और खान-पान पहनावा आदि में हुआ है वहीं आन्तरिक परिर्वतन सोच और सम्बन्धों आदि में हुआ है। इसलिए आज के युग की सबसे बड़ी समस्या सामंजस्य की है- असामंजस्य (नान एडजस्टमेण्ट) और दुर्सामंजस्य (माल एडजस्टमेण्ट) का सामना कदम कदम पर करना पड़ रहा है।

परिवार के सदस्यों के बदलते हुए अन्तर्पारिवारिक सम्बन्धों (इन्टर पर्सनल रिलेशन्स), परिवार में उनके पद (स्टेटस) और भूमिका (रोल), पारिवारिक सदस्यों के प्रति बदलते दृष्टिकोण (चेंजिग एटीटयूडस आफ फेमिली मेम्बर्स) मूल्यों में बदलाव(चेंजिग वैल्यूज), व्यक्ति की आकांक्षाओं(एस्पिरेशन्स),का व्यापक विस्तार और उनकी प्राप्ति के लिए प्रयुक्त साधनों एवं उपायों में आमूल चूल परिवर्तन (मीन्स एण्ड मेथड्स आफ फुलफिलमेण्ट) ने समाज एवं परिवार की रूप रेखा ही बदल दी है। मूल्यहीनता की स्थिति और औपचारिकता या दिखावा की प्रवृत्ति इतने उग्र रूप में बढ़ी है कि उसने सम्बन्धों को बनावटीपन, छल - छदम, दुराव-छिपाव आदि से जकड़ लिया है। अब मूल्यों के पुराने या नए होने का प्रश्न ही नहीं रह गया - मूल्य नित्य-प्रति ही वदल रहें है इसलिए प्रत्येक मूल्य हर क्षण पुराना पड़ता जा रहा है। इसलिए मूल्यों को परिगणित कर सकना और उनका परीक्षण कर सकना सम्भव नहीं रह गया है।

मूल्यों में परिवर्तन पारिवरिक जीवन और सामाजिक जीवन दोनों ही क्षेत्रों में समान रूप से हुआ है और इसकी सबसे सशक्त अभिव्यक्ति साहित्य की उस विधा में हुई है जिसे कहानी के नाम से अभिहित किया जाता है।

जहाँ तक हिन्दी कहानी का प्रश्न है उसमें यह परिवर्तन अत्यन्त तीव्रता से साठोत्तरी कहानी में ही दृष्टिगत होता है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि उससे पूर्व यह परिवर्तन नहीं दिखता। तात्पर्य मात्र इतना है कि पूर्ववर्ती कहानियों में उसके सूत्र ही मिलते हैं। वस्तुतः साठोत्तरी कहानी से पूर्व के अनेक कहानी लेखक बाद में (साठोत्तरी काल में) भी कहानी लिखते रहे बल्कि सत्यता यह है कि उनकी अत्यन्त पुष्ट रचनाएं साठोत्तरी काल में ही लिखी गई हैं। साठोत्तरी कहानी का इस दृष्टि से अध्ययन करने के पूर्व पूर्ववर्ती कहानियों में मिलने वाले परिवर्तनों पर दृष्टिपात कर लेना समीचीन होगा।

डा० रघुवीर सिन्हा ने साठवें दशक के पूर्व की कहानियों का विवेचन जिन सदंर्भो में किया है उनका उल्लेख करना यहां समीचीन प्रतीत हो रहा है। उन्होंने यह विवेचन तीन प्रमुख सदंर्भो मे किया है -

१- नये परिवेश और आधुनिक परिवार के सदंर्भ में भूमिका और मूल्यों में परिवर्तन
२- आधुनिक परिवार में बढ़ता हुआ पीढ़ियों का अन्तर(जेनरेशन गैप) और पीढियों का सघंर्ष (कान्फ्लिक्ट आव् जेनरेशन्स)
३- पुराने मूल्यों (ओल्ड वैल्यूज) से कटाव और पलायन, और नये मूल्यों, प्रतिमानों की तलाश[2]

१- कहानी : स्वरूप और सम्वेदना - राजेन्द्र यादव - पृ० २०७
२- हिन्दी कहानी : समाज शास्त्रीय दृष्टि - डा० रघुवीर सिन्हा - भूमिका भाग

इसके लिए उन्होंने जिन छह प्रतिनिधि कहानीकारों की प्रतिनिधि कहाँनिया चुनी हैं वे हैं - राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर,मोहन राकेश, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा और मन्नू भण्डारी। कहना न होगा कि ये सभी कहानीकार सामाजिक चेतना के प्रति अधिक यचेत थे तथा बदलते सामाजिक परिवेश के प्रति जागरूक थे।

सामाजिक परिवर्तन के और सामाजिक चेतना के इस पक्ष को उजागर करने के पूर्व यह ध्यान कर लेना भी अत्यन्त आवश्यक है कि 'कोई भी सामाजिक परिवर्तन अपनी परम्परा से कटकर नहीं आता, उससे जुड़ा होता है और उसका परम्परा से विच्छेद क्रमिक विकास की एक कड़ी भर होता है, अपने आप में कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं। वह परिवर्तन इसलिए है कि वह अपनी पृष्ठभूमि और आगे की प्रक्रिया दोनों से जुड़ा हुआ है। यह विकास की प्रक्रिया के एक अंग के रूप में आता है--- वह घटनाओं का सिल सिला हो सकता है, अपने आप में घटना नहीं।'[1]

साठोत्तरी कहानियों के पूर्व की कहानियों में बदलाव का स्वर बदला परिवेश, बदली कथा- स्थितियों की जो झलक मिलती है, उस पर ही यहाँ दृष्टि पात करना अभिप्रेत है।

राजेन्द्र यादव की कहानी 'जहां लक्ष्मी कैद है' में नारी चेतना का दिग्दर्शन कराते हुए डा० रघुवीर सिन्हा ने लिखा है'जहाँ लक्ष्मी कैद है' के पहले ऐसा नहीं था कि लक्ष्मी कैद नहीं थी, या उस कैद से उसकी मुक्ति हो गयी थी जिस दिन यह कहानी लिखी गई थी। वरसों से यह कैद उसे घेरे हुए थी। पहले केवल यह चेतना नहीं थी, अपने आपसे असंतोष नहीं था और न सायास विद्रोह करने की भावना थी, उन संस्कारो के प्रति जो उसे सब ओर से घेरे हुए या बन्दी बनाए हुए थे। 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' से उस नयी चेतना की शुरुआत मानी जा सकती है जहाँ नारी ने यह महासूस करना शुरू किया कि ये सारे मूल्यों के नाम पर लगाए बन्धन और वर्जनाएं व्यर्थ या अर्थहीन हैं, कि नारी व्यक्तित्व को भी अपने विकास का उतना ही अधिकार है जितना पुरुष को।' '

डा० रघुवीर सिन्हा का नयी कहानी की चेतना के सम्बध में अभिमत इस प्रकार है-- ' नयी कहानी की चेतना को मैं पूर्व मूल्य संस्कार जगत से अलगाव (डिपार्चर फ्राम एन ओल्ड सिस्टम)मानता हूँ। नयी कहानी ने यह भावभूमि तैयार की जिस पर नये-नये आयाम खड़े किये जा सके, और नये-नये भाव-बोध नए सचांर वाली रचनाओं का सृजन हो सका।'[२]

नर-नारी के पारस्परिक विचारों में, उनके पारस्परिक सम्बन्धों में जो परिवर्तन दिन प्रति दिन व्यापक होते जाना था उसकी झलक सन ५० के बाद की कहानियों में मिलनें लगी थी। डा० रघुवीर सिन्हा के अनुसार- '------- रूमानी आदर्शों से मुक्त, खुले, उन्मुक्त, मांसल प्रेम की कहानियां पचास के आसपास न सिर्फ पहली बार आई स्वयं इस नयी चेतना की नारी कथाकारों विशेषतः मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा , कृष्णा सोबती ने प्रेम के परिवर्तित स्वरूप, बदलते सम्बन्धों और नये नैतिक मानदण्डों और नये प्रतिमानों की अनेक कहानियां लिखीं। इस तरह प्रत्यक्ष रूप से प्रेम की नयी आधुनिक परिभाषा निर्धारित करने में विशिष्ट योगदान प्रदान किया। नयी चेतना और अपने समय की नयी भूमिकाएं लिए नारी के नये-नये रूप उभरे। मन्नू भण्डारी (तीसरा आदमी) धर्मवीर भारती (गुलकी बन्नो) कुछ बहुत तीखे और चौकाने वाले भी - कृष्णा सोबती(मित्रो मरजानी) (यारों के यार) आदि। इनसे कुछ हटकर नारी के कुछ और अभिनव व्यक्तित्व : उषा प्रियंवदा (एक कोई दूसरा) उभरे। विवाहित जीवन के सत्य को झुठलाती हुई यों एक विरोधाभास को प्रकट करती हुई, नारी की तस्वीरें: मोहन राकेश (सुहागिनें), और नारी की नयी रोमांटिक भूमिका और दो ध्रुवों के बीच डोलती मनः स्थिति को उजागर करती कहानियां(यही सच है) भी सामने आईं। इनके माध्यम से पुरुष - नारी सम्बन्धों के सर्वथा नये प्रतिमान रेखांकित हुए।[३]

१- आधुनिक हिन्दी कहानी : समाजशास्त्रीय दृष्टि - डा० रघुवीर सिन्हा - पृष्ठ - २३

२- वही पृष्ठ - २४

३- वही पृष्ठ - २४

डा० रघुवीर सिन्हा का अभिमत है कि राजेन्द्र यादव की मान्यता है कि आज की पीढ़ी का दृष्टिकोण अपने बुजुर्ग पीढ़ी के प्रति बदलता जा रहा है। श्रद्धा आदर की भावना धीरे धीरे दया में परिवर्तित होती दिखाई देती है, और दया क्रमशः उपेक्षा उदासीनता में बदलती जाती है।'[1]

यद्यपि पुरुष और महिला दोनों ही कथाकारों ने पारिवारिक एवं दाम्पत्य जीवन पर आधारित कहानियां लिखीं किन्तु पुरुष और नारी सम्बन्धों में अब तक व्याप्त पर्याप्त दूरी, लुकाव-छिपाव और उपेक्षा तथा उदासीनता आदिके कारण पुरुष कहानीकार महिलाओं की सामाजिक चेतना का सर्वांग में सही चित्रण नहीं कर सके। निश्चय ही महिला कहानीकार इस दिशा में उनसे अधिक सशक्त लेखन करने में समर्थ हो सकी हैं। आगे कुछ उदाहरणों से इस अभिमत को पुष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है।

डा० रघुवीर सिन्हा ने जिन पुरुष - नारी कहानीकारों का उल्लेख विशेष रूप से किया है उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। उनकी कुछ रचनाओं में वर्णित मूलभाव पर विचार करते हुए डा० रघुवीर सिन्हा ने लिखा है -

' एक और जिन्दगी (मोहन राकेश) पति पत्नी के बीच बढ़ते आज के फैलते जाते तनावों, आपसी मतभेद और असामंजस्य (माल एडजस्टमेण्ट) की कहानी है। 'तलाश' (कमलेश्वर) में एक आधुनिक लड़की मां के प्रति अपनी नयी दायित्व भूमिका अपनाती है, मां के प्रति बराबरी और सखी सहेली जैसा मैत्री-भाव पूर्ण व्यवहार करते हुए पिता द्वारा मां के प्रति छोड़े हुये दायित्व निर्वाह के लिए अतिरिक्त संकेत है। एक ओर वह दिवगंत पापा से भावात्मक लीक में बधीं हुई है, तो दूसरी ओर मम्मी के प्रति अपने गहरे दायित्व बोध से। और इन दोनों के बीच कोई विरोधाभास नहीं महसूस करती।

'जिन्दगी और गुलाब के फूल (उषा प्रियंवदा) में घर के आर्थिक - निर्वाह की जिम्मेदारी बेटे से उठकर बेटी पर जा पड़ती है और वह घर के लड़के की जगह अपनी आर्थिक भूमिका सहज अपना ही नहीं लेती, वरन उसे बखूबी निभाए भी लिए जाती है। पर साथ ही उससे व्युत्पन्न और सम्बद्ध गर्वोक्ति को भी नकार नहीं पाती। आत्मिक गौरव का इतना अनुभव या अभिव्यक्तिकरण तो स्वाभाविक ही है।

'तीसरा आदमी (मन्नू भण्डारी) तीसरे आदमी की उपस्थिति में पति -पत्नी के विचलित होते सम्बन्धों की सटीक कहानी बन जाती है तो 'सुहागिनें' (मोहन राकेश) एक शादी-शुदा और ऊपर से सामान्य दिखायी देने वाली सुहागिन नारी की अन्तर्व्यथा और अकेलेपन की यातना को भोगती हुई और अन्दर से टूटती जा रही नारी की ट्रेजडी को अभिव्यक्त करती है।

'परिन्दे' (निर्मला वर्मा) प्रेम की अनवरत अन - अभिव्यक्ति चाह और अप्राप्य प्रेम में बिखरी हुई क्रमशः अकेली पड़ती जा रही नारी के दर्द को अभिव्यक्त करती एक अनुपम रचना है। 'मिस पाल' (मोहन राकेश) इसी तरह अकेलेपन में नौकरी की यातना को झेलती हुई नारी की दूसरी सशक्त कहानी है। 'अकेली' (मन्नू भण्डारी), 'एक कोई दूसरा' (उषा प्रियंवदा), 'गुल की वन्नो' (धर्मवीर भारती), 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'एक कमजोर लड़की की कहानी' (राजेन्द्र यादव) नारी की आन्तरिक घुटन और अवशता की तस्वीरें है। 'सजा' (मन्नू भण्डारी) दो पीढ़ियों के बीच बढ़ते अन्तर और हल्की सी उदासीनता को प्रतिध्वनित करती है।'[2]

कमलेश्वर की कहानी 'खोयी हुई दिशाएं' प्रेम जैसे शाश्वत सम्बन्धों में भी हल्के परिवर्तन की ओर संकेत करती है। महानगरीय वातावरण में डूब गए प्रेम सम्बन्धों में अजनबीपन घुस आया है। इसी प्रकार निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' भी अकेलेपन और टूटन की अन्तर्व्यथा की कहानी है। इसकी नायिका लतिका में आधुनिक नारी और परम्परागत नारी का भावात्मक दुर्बलता का द्वन्द्व चित्रित है।

१- आधुनिक हिन्दी कहानी : समाजशास्त्रीय दृष्टि - डा० रघुवीर सिन्हा - पृष्ठ - २६

२- वही - पृ० -२६-२७

डा० रघुवीर सिन्हा के अनुसार - 'लतिका एक भावात्मक सम्बन्ध से इतनी गहरी बंधी है कि वह उससे कभी उबर नहीं पाती- उसके व्यतीत हो चुकने पर भी उसे मन से अलग नहीं कर पाती है। वरन्, शायद उससे जुड़े रहने में ही अपनी सार्थकता का अनुभव करती है। वर्तमानजीवन की सहजता और आकर्षणों से कहीं महत्वपूर्ण उसके लिए शायद विगत की ये स्मृतियां हैं। इस रूप में भारतीय संस्कारों के गहरे प्रभाव का वह अनायास बोध कराती है - शायद रागात्मक सम्बन्धों की शाश्वतता ही भारतीय संस्कृति का मूल स्वर रहा है। इसीलिए, शायद वह प्रथम प्रणय से अपने आपको मुक्त नहीं कर पाती। विवेक संगत विकल्प को नहीं स्वीकार कर पाती।'[1]

नारी को जिन नई परिस्थितियां और नयी समस्याओं से सामंजस्य स्थापित करना है उनकी विवेचना करते हुए डा० रघुवीर सिन्हा ने लिखा है -

'शिक्षा ने नौकरियों के साधन खोले और नयी नौकरी ने नयी -नयी जगह जाने की मजबूरियां पैदा कीं। अनिवार्य विवाह के स्थान पर एक विकल्प पहली बार भारतीय लड़की को मिला, और इनमें से कई ने इसे ही अधिक सुगम मार्ग समझा। लड़कियों के बाहर जाने और अकेले रहने पर जो प्रतिबन्ध समाज और परिवार ने कालातीत से लगा रखे थे, वे क्रमशः टूटने लगे - पहले शिक्षा के प्रसार से, फिर आर्थिक - दबावों के कारण और देर तक शादी न हो पाने जैसी व्यावहारिक परिस्थितियों में उदार हो आने के मिले -जुले प्रभाव से। पचास तक आकर वे वर्जनाएं टूट चुकी थीं, जो लड़की की नौकरी, उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता या उसके अकेले रहने को संशय की दृष्टि से देखती थीं। इस तरह नारी के प्रेम को शायद पहली बार एक नयी उदार अभिव्यक्ति मिली। और बातों के अलावा, आर्थिक परिस्थितियों और मजबूरियों ने ही ये बन्धन टूटने में सबसे ज्यादा योगदान प्रदान किया। कितने ही माता -पिता ने कभी लड़की की शिक्षा का समुचित उपयोग करने की दृष्टि से तो कभी लड़की के व्यक्तित्व के विकास की बात सोचकर या उसके विवाह का इन्तजार करते हुए, अपनी लड़की को अर्थोपार्जन के खुले अवसर प्रदान किए और इस तरह परिस्थिति के साथ समझौता कर लिया। और, जब दायरे बढ़े तो परिचयों के नये दायरे भी अप्रत्यक्ष रूप से, या उदासीन होकर स्वीकार कर लिए गए।'[2]

स्पष्टतः इसी नारी स्वतन्त्रता और नारी शिक्षा ने नारी को स्वतन्त्र निर्णय लेने या निर्णयों में सम्मिलित होने का अवसर प्रदान किया। बाहर आते जाते - शिक्षा काल में या उसके बाद नौकरी आदि में उसने अपने लिए उपयुक्त प्रेम सम्बन्ध स्थापित करना प्रारम्भ किया। इसमें माता - पिता का प्रतिबन्ध या हस्तक्षेप धीरे - धीरे घटता चला गया। माता - पिता का वह अधिकार अब पुत्रों - पुत्रियों के पास पहुंच गया। पहले जो प्रेम सम्बन्ध निकट के रिश्तेदारों, हितैषियों से प्रायः लुके छिपे बनते थे वे अब खुले वातावरण में अधिक व्यापक चुनाव का अवसर उपलब्ध कराने लगे।

परन्तु इनके जो दुष्परिणाम हो सकते थे वह भी खुलकर सामने आने लगे। अकेलेपन या एकाकी जीवन की समस्या एक ऐसी ही समस्या है। डा० रघुवीर सिन्हा के शब्दों में -

'पर, यहीं से उस अकेलेपन और एकाकी यन्त्रणा का आरम्भ भी हुआ जो नए परिवेश में , परिवार या निकट के आत्मीय सम्बन्धों से कटकर रहने में निहित रहती है। सम्बन्धों की तलाश में, या सम्बन्धों से कटकर, अथवा सम्बन्धों के परिणामों को भोगती हुई नारी अपने आप में नितान्त अकेली पड़ गई ---------अवान्तर में यही उस पीड़ा का भी जन्म हुआ जो बरबस सम्बन्धों को नकारने लगती है, अपने आपको जिद और आन्तरिक संकल्पों के कटघरे में कैद कर लेती है और इस तरह एक 'निगेटिव' जिन्दगी जीने को मजबूर करती है।'[3]

अमरकान्त की 'निर्वासित' कहानी में तो पति -पत्नी दोनों एक दूसरे के कारण 'निर्वासित' होते है। पत्नी के उलाहना को चुनौती मानकर पति परिवार से निर्वासित होता है और पत्नी पति के निर्वासन में स्वयं को जिम्मेदार मानकर सदा के लिए

१- आधुनिक हिन्दी कहानी : समाजशास्त्रीय दृष्टि - डा० रघुवीर सिन्हा - पृष्ठ - ३९

२- वही - पृ० -४०- ४१

३- वही - पृ० -४१

स्वयं को निर्वासित कर लेती है। स्वाभावतः नारी को यहां भी कठोर यातना सहन करनी पड़ती है।

राजेन्द्र यादव की कहानी 'जहां लक्ष्मी कैद है' में लक्ष्मी से पिता का पल्ला इसलिए नहीं छूट पाता कि पिता समझता है कि उसकी पुत्री लक्ष्मी है और उसके चले जाने के बाद वह श्रीविहीन (लक्ष्मी विहीन) हो जायेगा। इस कहानी में लक्ष्मी मनोरोग से पीड़ित हो जाती है क्योंकि दमित काम वेग का उस पर दुष्प्रभाव पड़ता है। इस कथा द्वारा कहानीकार ने उस नारी स्वतंत्रता की मांग सामने रखी है जिसकें अभाव में आज की नारी घुट - घुट कर मर रही है। तो क्या इससे पूर्व की नारी इस व्यथा को नहीं झेल रही थीं ? इसका उत्तर यह है कि तब उसकी व्यथाएं भिन्न प्रकार की थीं। आज नारी शिक्षा का सुअवसर देकर, नारी स्वतन्त्रता एवं समानता का नारा देकर जब उसे परतन्त्र रखा जाता है तो स्थिति अत्यन्त विस्फोटक वन जाती है। लक्ष्मी का पिता यदि लक्ष्मी का विवाह किसी वहम के कारण नहीं करता तो आधुनिक नारी का विवाह शिक्षा पूरी होने के नाम पर या शिक्षित एवं स्वतन्त्र आजीविका वाले पति की खोज में विलम्ब से होता है। आधुनिक नारी को अपनी स्वतन्त्र रुचियों की पूर्ति के लिए भिन्न प्रकार की परिस्थितियों, परिवार एवं पति की आवश्यकता हो रही है। यद्यपि पुरुष पहले की अपेक्षा पर्याप्त रूप में सहिष्णु तथा संवेदनशील है किन्तु उतने से ही आधुनिक नारी की आकांक्षाएं पूरी नहीं हो पातीं। दूसरी ओर पुरुष भी अपने व्यक्तित्व को कुछ न कर पाने के कारण कुण्ठित पाता है।

कमलेश्वर की 'तलाश' कहानी में शिक्षिता युवती लड़की और उसकी मां के पारस्परिक सम्बन्धों को उभारा गया है। कहानी में बेटी 'सुभी' अपने से उन्नीस वर्ष बड़ी मां के साथ बराबरी वाला, सखी- सहेली वाला व्यवहार करती है। बीस वर्ष की अवस्था में ही वह शिक्षित होकर नौकरी में लग गयी है और लगभग एक तरह से आत्मनिर्भर हो गयी है परन्तु मां के प्रति एक नया कर्तव्य बोध उसे बांध लेता है। वह अपनी जीविका भी अर्जित कर रही है और मां के प्रति अत्यधिक संवेदनशील भी है। वह जानती है कि मां अभी उसकी सहेली सी लगती है और फिर भी वह पति (सुभी के पिता के असमय अवसान के कारण) के अभाव से ग्रस्त है और किसी अन्य के प्रति आकर्षित हो रही है। सुभी अपनी विधवा मां के दाम्पत्य जीवन के अभाव के प्रति तो सचेत है ही, उनके किसी अन्य पुरुष से उभरते सम्बन्धों के प्रति भी सचेत है। पापा की डायरी पढ़कर जिसमें उन्होंने मां को जीवन भर खुशियां देते रहने का वायदा किया था वह अभिभूत हो जाती है और अब जब कि पिता अपना वह वायदा पूरा किए बिना ही असमय चले गए हैं, वह उस जिम्मेदारी को स्वयं अपने ऊपर आया मानती है। इसलिए जब उसे लगता है कि मां के अन्य पुरुष से उभरते सम्बन्धों के बीच उसकी स्वयं की उपस्थिति बाधक है तो वह अपना घर छोड़ कर अपना सामान लेकर होस्टल में रहने चली जाती है।

यह तो उस भावुक लड़की की ओर से होता है पर उसकी विधवा मां को यह सब अच्छा लगता है या सहन हो जाता है। इतना ही नहीं, धीरे -धीरे वे अपनी नयी बसाई दुनिया में रम जाती हैं और होस्टल में नवयुवती पुत्री असहाय और एक दम अकेली पड़ जाती है। जब कभी वह होस्टल से घर मां से मिलने आती है तो सब कुछ औपचारिक सा लगता है। डा० रघुवीर सिन्हा के अनुसार -

'और, होस्टल से इतने दिनों बाद जब वह मम्मी के घर आती है, तो उसको लगता है इस बीच बहुत बदल गया है। पहले की तरह मम्मी अब उससे खुल नहीं पाती - सहज होने के बजाय, वे एक दूसरे के प्रति अति सहिष्णु और औपचारिक हो आती हैं। सारा कुछ एक ठण्डी औपचारिकता में ढलने लगता है। लगता है जैसे वे दोनों धीरे -धीरे अकेलेपन में घिरती चली गयी हैं।'[1]

इस पर अपनी निष्कर्षात्मक टिप्पणी करते हुए डा० रघुवीर सिन्हा ने आधुनिक युग की नारी और नारी के बीच संवादहीनता और ठण्डी औपचारिकता को उनकी नियति बताया है। वे लिखते हैं -

---

१- आधुनिक हिन्दी कहानी : समाजशास्त्रीय दृष्टि - डा० रघुवीर सिन्हा - पृष्ठ - ६०

'यह विलुप्त होता संवाद' शायद दो पीढ़ियों के बीच समाते जा रहे ठण्डेपन का ही उद्बोधक है, जो सन् पचास के बाद क्रमशः भारतीय परिवार में प्रमुख रूप से दिखाई देने लगा है ------------परिवार के बीच अपनी - अपनी भूमिका का निर्वाह करते हुए अपने पारस्परिक सम्बन्धों में हम शायद ऐसा ही सर्द अनुभव करते आ रहे हैं। पीढ़ियों के बीच की यही ठण्डी औपचारिकता मन्नू भण्डारी की 'सजा', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', राजेन्द्र यादव की 'बिरादरी बाहर', उषा प्रियंवदा की 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', शानी की 'एक नाव के यात्री' आदि कहानियों मे भी क्रमशः अभिव्यक्त होती गई है। कमलेश्वर की 'तलाश' ने इसे तो अभिव्यक्त किया ही है, इससे हटकर, आधुनिक सन्दर्भो में मां - बेटी के बदलते सम्बन्धों और एक नयी भूमिका के उभरते जाने के यथार्थ को भी मुखर किया है। 'तलाश' न केवल नयी पीढ़ी की नयी चेतना और आधुनिक भूमिका के आविर्भाव की कहानी है, वरन् बदलते सन्दर्भो में आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व और मूल्यों के टकराहट की सांकेतिक कहानी भी बन गई है।'[1]

इससे भिन्न धरातल पर रची गई मोहन राकेश की कहानी 'सुहागिनें' में नारी वर्ग की उस अन्तर्व्यथा का चित्रण है जो केवल नाम मात्र को सुहाग का टीका माथे पर लगाए हैं और चाहे - अनचाहे अकेलेपन और घनघोर व्यथा की जिन्दगी जीने को अभिशप्त हैं। इसमें लेखक ने पति - पत्नी के बीच खिंच रही दीवार और गहरा रही खाई का चित्रण किया है। उसकी मान्यता है कि पति -पत्नी के बीच उभरता वैमनस्य, आर्थिक, वैचारिक स्वतन्त्रता की मांग, विषम सन्तुलन और सामंजस्य का अभाव ही पति - पत्नी में अनचाही दूरी पैदा कर रहा है।

शिक्षित पति - पत्नी, अर्थोपार्जन में लगे दम्पत्ति अपना - अपना अहं पालने लगते हैं और उनमें टकराव पैदा होता है। ऐसा नहीं है कि पहले इस प्रकार का टकराव नहीं होता था। होता था - पर बहुत कम। तब परम्पराप्राप्त संस्कारों, मान्यताओं, रीति- रिवाजों आदि के कारण पति का तो अहंवादी होना सामान्य बात थी किन्तु पत्नी अपने सहनशीलता के गुण की शिक्षा के कारण उससे सामंजस्य स्थापित रखने का भरसक प्रयास करती थी। आधुनिक युग में समानता का अधिकार, अपने - अपने ज्ञान का अहंकार उन्हें झुकने, सामंजस्य करने नहीं देता।

'सुहागिनें' कहानी की नायिका मनोरमा सुशिक्षित और स्वतन्त्र अर्थोपार्जन कराने वाली नारी है यद्यपि उसका यह अर्थोपार्जन स्वयं की इच्छा से नही बल्कि पति के दबाव के कारण है। मनोरमा अपनी सहज सहयोग की भावना से न चाहते हुए भी, नौकरी करना इसलिए स्वीकार करती है जिससे कि वह अपनी छोटी ननद के विवाह के लिए धन जुटाने में पति का साथ दे सके। परन्तु ऐसा करने में उसे अपनी मातृत्व भावना का दमन भी करना पड़ जाता है क्योंकि पति चाहता है कि जब तक वह अपने परिवार के उत्तरदायित्व से मुक्त न हो ले, बच्चे के पालन -पोषण का उत्तरदायित्व किस प्रकार निभा पायेगा। यह सुहागिन मनोरमा चाहने पर भी अपने अकेलेपन को मारने के लिए अपना बच्चा नहीं पैदा कर सकती। आधुनिक नारी को इस प्रकार के बन्धन बांधे हुए हैं।

इसके विपरीत इसी कहानी की दूसरी सुहागिन काशी है जो मनोरमा की नौकरानी है और उसी के 'आउट हाउस' में रहती है और नौकरानी का काम करके अपने बच्चों का पालन पोषण करती है क्योंकि उसका पति उसे छोड़कर न केवल पठानकोट चला गया है बल्कि वहां दूसरी स्त्री से भी सम्बन्ध बना बैठा है। तब भी काशी पति से जुड़ी रहती है कहीं कोई अलगाव या टूटन महसूस नहीं करती। और साल दो साल में जब भी उसका पति पठानकोट से मिलने उसके पास आता है, वह उसी उत्साह, साज श्रृंगार एवं समर्पण भाव से उसका स्वागत करती है यद्यपि वह आकर उसे कठोर डॉट - फटकार तथा पिटाई का उपहार उसे देता है या कोई अनचाहा बच्चा। पर काशी सब कुछ सह लेती है। गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिए उसे मालकिन के रसोई घर से घी चुराकर खाना पड़ता है। पति के आगमन पर वह मालकिन के ड्रेसिंग टेवल से अपने श्रृंगार के लिए क्रीम पावडर भी चुराती है।

१- आधुनिक हिन्दी कहानी : समाजशास्त्रीय दृष्टि - डा० रघुवीर सिन्हा - पृष्ठ - ६१

एक ओर मनोरमा हैरान है कि काशी यह सब कष्ट क्यों सहती है जब कि उसका पति इस प्रकार का है दूसरी ओर काशी हैरान है कि इतना धन होने पर भी मनोरमा पति से दूर रहकर नौकरी क्यों करती है। वे दोनों एक -दूसरे में अपने प्रश्न का हल ढूंढते हैं।

डा० रघुवीर सिन्हा के अनुसार - 'सुहागिनें' एक रूप में टूटते परिवार की प्रतीक कहानी है। ---------समयान्तर में पति की भूमिका बदलती चली गयी है -------पूर्ण स्वामित्व और आधार प्रदान करने के स्थान पर वह अब अपनी पत्नी से आर्थिक भार वहन करने में हाथ बंटाने की अपेक्षा करने लगा है। पत्नी की भूमिका भी बदलती जा रही है। पूर्ण आश्रित होने के स्थान पर अब वह संगी -साथी के रूप में पति के साथ बराबरी का दर्जा रखने लगी है। आर्थिक सहयोग के कारण उसका सामाजिक दर्जा भी ऊंचा उठ गया है। पर साथ ही अन्तर्मन की समस्याएं जटिल होती चली गई हैं ---------कहीं -कहीं वे पारस्परिक अन्तर्विरोध का रूप लेती हैं तो कहीं दमित भावनाओं का।'[1]

मोहन राकेश की कहानी 'एक और जिन्दगी' का नायक प्रकाश पहले 'प्रेम विवाह' में बंधता है किन्तु दोनों बराबरी के दर्जे के होने के बावजूद पत्नी ही सामाजिक आर्थिक दर्जे में भारी पड़ती है इसलिए उनमें आवश्यक आपसी समझ का अभाव ही रहता है। एक छोटा सा तनाव भी उनके लिए भारी पड़ जाता है और उनका प्यारा बच्चा भी उनके सम्बन्ध को नहीं जोड़ पाता है यद्यपि वे बच्चे के माध्यम से ही बराबर मिलते रहते हैं पर उनके दिलों की दूरी बढ़ती ही जाती है। परिणाम स्वरूप प्रकाश नये सिरे से जिन्दगी बसाने का विचार बनाता है। पर इस बार वह और भी भयंकर स्थिति में फंस जाता है। उसका एक तथाकथित दोस्त अपनी 'हिस्टारिक' बहन को उसके गले मढ़ देता है। डा० रघुवीर सिन्हा के अनुसार मोहन राकेश इस कहानी से यह सन्देश देना चाहते हैं कि 'आने वाले कुछ सालों में विवाह नाम की संस्था का रूप बदल कर मात्र एक तर का 'कम्पार्टमेण्टल रिलेशनशिप (केवल कुछ हिस्सों में सम्बन्ध) का रूप लेगा। कोई किसी के सीमित अधिकार क्षेत्र में दखल नहीं करेगा। पति -पत्नी अपने-अपने कार्यक्षेत्र में एक तरह की स्वायत्तता प्राप्त कर लेंगे।'[2]

मन्नू भण्डारी की बहुचर्चित कहानी 'यही सच है' छठवें दशक के लगभग अन्त में इलाहाबाद की 'कहानी' पत्रिका में प्रकाशित हुई। प्रकाशित होते ही यह कहानी विवादों में घिर गयी क्योंकि इसमें पहली बार एक नारी मन में उठने वाले द्विविधापूर्ण संकल्प - विकल्पों का उन्मुक्त विवरण दिया गया है और वह भी एक महिला कहानीकार द्वारा।

पढ़ी लिखी दीपा बहुत दिनों तक प्रेमानुभव में डूबी रहती है फिर समयान्तर के प्रभाव से उसे भूल भी जाती है। संजय से परिचय होने पर वह पूर्व प्रेम सम्बन्धों को भुला बैठती है पर क्या वह सच्चे मन से यह कर सकी है। उसका पूर्व प्रेमी निशीथ जब उसके सामने आता है तो वह पुनः उसके ही प्रेम को सच्चा प्रेम समझने लगती है। सुषुप्त प्रेम फिर जाग उठता है। परन्तु जैसे ही वह संजय के सम्पर्क में पुनः आती है उसे लगता है संजय का प्रेम ही सच्चा प्रेम है।

दीपा भावुक लड़की है किन्तु उसमें आधुनिकता का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। डा० रघुवीर सिन्हा ने उसे 'आज की यथार्थवादी लड़की' माना है और कहा है कि 'चूंकि वह लड़की है और भारतीय भी, इसलिए उसमें लड़कीपन की और भारतीय लड़कीपन की सारी भावात्मक कमजोरियां मौजूद हैं।'[3] किन्तु उनका यह निष्कर्ष बहुत सटीक नहीं प्रतीत होता। वह भारतीय से अधिक आधुनिक है और आधुनिक नारी की द्विविधापूर्ण स्थिति उसमें स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। इसीलिए 'स्थिति के गुजर जाने के बाद वह व्यर्थ ही उसके पीछे छूटे हुए अवसाद से देर तक नहीं चिपकी रहती उससे उबर कर दूसरे विकल्प को अपनाने की भी क्षमता रखती है।

भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' में नायक शामनाथ अपनी भौतिक उन्नति में अपनी बूढ़ी मां को बाधक समझते हैं

दृष्टि :

१- आधुनिक हिन्दी कहानी : समाजशास्त्रीय, डा० रघुवीर सिन्हा - पृष्ठ - ६५

२- वही - पृ० - ६७

३- वही - पृ० - ७५

और उसे घर के अन्य अशोभनीय सामान की तरह कहीं कोने - किनारे में छिपा देना चाहते हैं ताकि अपनी पदोन्नति की आशा से अपने घर पर चीफ को दावत पर निमन्त्रित करने पर उनकी नजर उनकी अशोभनीय (या असभ्य) मां पर न पड़ जाये। झूठी आधुनिकता में वे आकण्ठ निमग्न हैं जबकि उनका आधुनिक अंग्रेज चीफ उनकी मां के सहज स्वाभाविक आचरण पर मुग्ध हो जाता है। उसे बनावट से चिढ़ है और शामनाथ की दिखावटी व्यवस्था के प्रति उसमें रंच मात्र भी उत्सुकता नहीं है। उधर मां बेटे के लिए सब तरह का त्याग करने को प्रस्तुत है। यहां झूठी आधुनिकता में पला शामनाथ अपनी मां को त्यागना चाहता है और बूढ़ी एवं अशक्त मां अपने कलेजे के टुकड़े के लिए सब कुछ त्यागने को सहर्ष प्रस्तुत दिखती है।

राजेन्द्र यादव की 'प्रतीक्षा' कहानी में ऐसी दो लड़कियों का चित्रण किया गया है जो अधिक वय तक विपरीत लिंगी प्रेम सम्बन्ध स्थापित न कर सकने के कारण समलिंगी प्रेम में फंस जाती हैं। बड़ें नगरों में आधुनिक उन्मुक्त वातावरण में पली आधुनिक भारतीय लड़की की बदलती भूमिकाओं का चित्रण राजेन्द्र यादव की इस कहानी में मिलता है। किन्तु उसे ही सामान्य प्रवृत्ति, आधुनिक परिवेश में बदली हुई प्रवृत्ति भी मान लेना उचित न होगा। यह एक असामान्य स्थिति है और असामान्य मनोविकृति। हां यह अवश्य है कि ऐसी प्रवृत्ति या असामान्य मनोविकृति के प्रसार के लिए उपस्थित होने वाली सभी परिस्थितियों पर प्रभावी नियन्त्रण की दिशा में समय रहते समुचित कदम उठाये जायें।

कहानी के क्षेत्र में पांचवे दशक के जबर्दस्त मोहभंग के बाद आठवें दशक तक किसी न किसी रूप में मोहभंग की प्रक्रिया निरन्तर चलती रही। आठवें दशक में उसमें जो नया मोड़ आया उसकी विवेचना करते हुए डा० रघुवीर सिन्हा ने लिखा है -

'आधुनिक हिन्दी कहानी ने इधर आठवें दशक में यह नया मोड़ और लिया है और यह नया आधुनिक भावबोध लिए हुए यथार्थवादी मोड़ है। पचास से सत्तर तक, बीस वर्षों में जो कहानिया लिखी गई थीं, उनमें जीवन की यथार्थता के प्रति आग्रह तो था ही, और बढ़ता रहा था। पचास के आसपास हुए मोहभंग के बाद हिन्दी कहानी ने कच्ची भावुकता और रोमांटिक दृष्टिकोण से मुक्ति पा ली थी। इसकी जगह उसने निर्वैयक्तिकता, तटस्थ अवलोकन और प्रतिबद्धता के प्रति आग्रह रखा था। साथ ही उसने बौद्धिक प्रतिमान अपनाना शुरू कर दिया। सापेक्षता से निर्वैयक्तिकता के प्रति आग्रह तो नयी कहानी ही आरम्भ कर चुकी थी, अब धीरे -धीरे इधर यह दृष्टिकोण दृढ़ होता गया है कि कहानी को मूल्यपरक भी होना चाहिए या नहीं । नितान्त निर्वैयक्तिक आग्रहों ने कहानी को ठोस यथार्थवादी बनाया है।'[1]

वे आगे लिखते हैं -'आठवें दशक में कुछ नये कथाकारों ने अपनी इन समय -सापेक्ष और आधारभूत रूप से यथार्थवादी दृष्टि लेकर आधुनिक भावबोध ली हुई रचनाएं लिखी हैं, जिसके कारण थोड़े ही समय में आधुनिक हिन्दी कहानी में उन्होंने अपना विशेष स्थान बना लिया है। इनमें सूर्यबाला, मृदुला गर्ग, बल्लभ सिद्धार्थ, मणि मधुकर, मधुकर सिंह, देवकी अग्रवाल, मृणाल पाण्डे, निरूपमा सेवती, गोविन्द मिश्र, राकेश वत्स, आशीष सिन्हा, जितेन्द्र भाटिया, मालती जोशी, रघुवीर सिन्हा आदि प्रमुख हैं। इन कथाकारों ने या तो मूल्यों के द्वन्द्व, मूल्यों के प्रति अरूचि अथवा प्रश्नवाचक भाव की कहानियां लिखी हैं, अथवा इनकी कहानियों की 'थीम' में मूल्यों की संक्रान्ति का भाव रहा है। इनमें अनेक ने लगभग उसी सामर्थ्य से पीढ़ियों के बढ़ते हुए अन्तर, और नई और पुरानी पीढ़ी के बीच उभर रहे संघर्ष पर भी पैनी दृष्टि वाली शक्तिशाली रचनाएं दी हैं।'[2]

सूर्यबाला की कहानी 'रेस' में बम्बई जैसे अत्याधुनिक महानगर में अपनी महत्वाकांक्षाओं से अनेक मंजिलें पार कर लेने वाले किन्तु फिर भी असन्तुष्ट रहने वाले नायक सुधीर शुक्ल का चित्रण किया गया है। उसने अपने अवचेतन मन में पोषित 'अहम' की सन्तुष्टि की अभिलाषा को ही अपने जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य बना लिया है। इसलिए वह अपने जीवन की तेज रफ्तार को और भी अधिक तेज बनाने में जुटा रहता है। एक लक्ष्य की प्राप्ति के बाद वह तेजी से दूसरे लक्ष्य की ओर लपकने लगता है। उसकी इन्हीं आकांक्षाओं से प्रभावित होकर शिक्षित एवं सुसंस्कृत 'राशी' उससे प्रेम विवाह करती है

१- आधुनिक हिन्दी कहानी : समाजशास्त्रीय दृष्टि : डा० रघुवीर सिन्हा - पृष्ठ - ६१
२- वही - पृ० -६३

किन्तु वहीं शीघ्र ही मोहभंग की स्थिति प्राप्त कर लेती है। सुधीर अपनी महत्वाकांक्षाओं में डूबा अपने स्वास्थ्य को ही चौपट कर लेता है और एक दिन कार्यालय की काम की टेबल पर ही लुढ़का पाया जाता है।

इस प्रकार इस कहानी में 'महानगर के तनाव भरे, इस अभिशप्त वातावरण में वह न पत्नी के प्रति ईमानदार रह पाता है, न संवेदनशील। यह कहानी महानगरीय वातावरण में पुरुष नारी की बदलती हुई भूमिका को चित्रित करती है।

पीढ़ियों के बीच अन्तर एवं द्वन्द्व :-

मृदुला गर्ग की कहानी 'अलग -अलग कमरे' दो कमरों की ही कहानी नहीं है बल्कि प्रतीकात्मक रूप में दो पीढ़ियों की ओर भी संकेत करती है। आठवें दशक की यह एक क्रान्तिकारी कहानी है क्योंकि यह मूल्य संक्रान्ति को भी अभिव्यक्त करती है। डा० रघुवीर सिन्हा के अनुसार 'पीढ़ियों के बढ़ते हुए अन्तर पर पहले भी अनेक सशक्त रचनाएं लिखी जा चुकी हैं, छठवें दशक में भी और सातवें दशक में भी। पर, मृदुला गर्ग की कहानी 'अलग -अलग कमरे' का विशेष महत्व इसलिए है कि वह पारिवारिक केनवास पर एक स्थिति विशेष लेकर पिता और पुत्र के पारस्परिक सम्बन्धों के बढ़ते हुए वैचारिक दृष्टिकोण और मूल्यगत परिवर्तन और पीढ़ियों के बढ़ते हुए अन्तर को मुखर करती है।'[१]

पेशे से डाक्टर पिता पुत्र भी एक ही मेडिकल ऐथिक्स कोड से बंधे नहीं रह पाते। पुरानी पीढ़ी के पिता तो उस कोड को महत्व देते हैं पर पुत्र उसे व्यर्थ का समझता है। पिता- पुत्र में टकराव का यही कारण बनता है। चिकित्सा के क्षेत्र में भी पिता अपने मरीजो के साथ उसी कोड का पालन करता है और पुत्र उस कोड की धज्जियां उड़ाता है। आज उस कोड की क्या दुर्गति हो गयी है इसे सहज ही देखा समझा और अनुभव किया जा सकता है।

सूर्यबाला की एक अन्य कहानी 'रक्षा कवच' पारम्परिक मूल्यों के संसार में पली हुई एक लड़की के नये भौतिक मूल्यों से 'एडजस्ट' न कर पाने की असमर्थता को प्रतिध्वनित करती है, साथ ही पारम्परिक और भौतिक मूल्यों के बीच के एक द्वन्द्व को उभारती है ---------यह द्वन्द्व दो पीढ़ियों के बीच का द्वन्द्व उतना नही है। एक ओर यह विभिन्न पारम्परिक मूल्यों के प्रभाव में पली हुई लड़की, और दूसरी ओर मूल्यों से उदासीन, सम्भवतः सम्पूर्ण मूल्य चेतना के प्रति आस्थाहीन पुरुष के वीच टकराव की कहानी है।'[२]

इस कहानी में पति अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अपनी पत्नी का भी इस्तेमाल करने से नहीं चूकता यद्यपि वह स्वयं एक जिम्मेदार अफसर है। वह पद और प्रतिष्ठा को ही सब कुछ मानता है, शेष सब को साधन मात्र समझता है। उसके लिए व्यावहारिक जीवन में किसी चीज का कोई महत्व नहीं है, यहां तक पत्नी की मनोभावनाओं का भी नहीं। परन्तु मर्यादाओं, और नैतिक चरित्र के प्रभाव में पली पत्नी के लिए यह सब सम्भव नहीं होता। वह तो स्वयं नौकरी करती थी पर नौकरी करते हुए भी अपनी मर्यादा और नैतिक आचरण पर आंच आते देख उसने एक पति का आश्रय लिया था। पर पति ही उसको उसी नरक में ढकेल रहा था। एक दिन बॉस को खुश करने के लिऐ वह एक पार्टी में पत्नी को ऐसी पतली पोशाक में पेश करता है कि जिसमें उसके सौन्दर्य को भी वह अपने लाभ के लिए दूसरों को सौंप सके। इसके लिए वह स्वयं अपनी पत्नी को शराब पिलाता है और पार्टी समाप्त होने पर चीफ गेस्ट को अकेला अपनी पत्नी के साथ छोड़कर अन्य मेहमानों को घर तक पहुँचाने के बहाने कार की चाभी लेकर नीचे उतर जाता है और बहुत देर में लौटता है। इस बीच नशे में डूबी पत्नी स्वयं को न सम्हाल पाने के कारण मिस्टर तनेजा को समर्पित हो जाती है। उसका 'रक्षा कवच' व्यर्थ सिद्ध होता है।

डा० रघुवीर सिन्हा ने इसे शार्टकट वाला दर्शन की संज्ञा दी है और इस पर एक प्रश्न उठाया है - 'एक और प्रश्न कहानी के समाप्त होते होते मन में उद्वेलित होने लगता है, क्या रवि खन्ना (पति) का चरित्र या व्यवहार वास्तव में किसी आधुनिक व्यावहारिक मूल्य की कसौटी पर परखा जा सकता है अथवा मूल्यों से कटाव की कसौटी पर।'[३]

१- आधुनिक हिन्दी कहानी : समाजशास्त्रीय दृष्टि - डा० रघुवीर सिन्हा - पृष्ठ - १०२

२- वही - पृ० - १०६

३- वही - पृ० - ११३

परन्तु इसे निर्वाध परिवर्तन कहें या शारीरिक, आर्थिक या विलासिता की पूर्ति की पराकाष्ठा की स्थिति, आधुनिक भारतीय समाज में यह सवक़सम्भव नहीं रह गया है।

अब इसी परिप्रेक्ष्य में रूसी कथाकार चेरबन की एक कहानी 'आन्ना आन द नेक' पर विचार करें। इस कहानी का वावन वर्षीय अफसर कम उम्र की अन्ना से इसलिए शादी करता है कि वह अपनी पत्नी को दूसरे अफसरों की तरह गले का ढोल बना कर नहीं रखना चाहता था बल्कि उसकी सुन्दरता का उपयोग अपनी उन्नति के लिए करना चाहता था। परन्तु परिणाम कुछ भिन्न ही होता है। पत्नी स्वयं 'पति के औजार को ही उसके विरुद्ध प्रयोग करती है और एक धनी पति -मित्र को प्रेमी बना लेती है। इस तरह जो अन्ना अपने पति की उन्नति का साधन हो सकती थी वही उसके जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना बन जाती है। किन्तु इस कहानी की आलोचना करते हुए 'बर्गम महोदय इस बिन्दु को कहानी का लक्ष्य नहीं मानते, बल्कि कहते हैं कि कहानी का इतना ही साधारण और घिसा पिटा मतलब नहीं है। कहानी का मन्तव्य उन दो लड़कों में है जो अन्ना के भाई हैं। कहानी में उनकी भूमिका अत्यन्त संक्षिप्त है। एक बार वे तब आते हैं जब पिता शराब पीता होता है। वे उसे रोकते हैं। दूसरी बार भी वे पिता को रोकते हैं, शराब पीने से नहीं। अपने धनिक प्रेमी के साथ जाती हुई अन्ना को पैदल जाता हुआ पिता हैट उतार कर अभिवादन करता है और जब उसे रोकना चाहता है तब भी वे बच्चे उसे मना करते हैं। वास्तव में कहानी का मूल केन्द्र बिन्दु यही है -यही उसकी संवेदना का शीर्ष बिन्दु है - वहां वह गरीब है इसलिए कि वह पीकर गरीब हो चुका है और उसकी लड़की धनी प्रेमी के साथ है। आज की संवेदना का मूल बिन्दु ऐसा ही है-------१"

डा० सन्त बख्श सिंह के अनुसार 'नई कहानी की संवेदना मात्र वैयक्तिक नहीं है, बल्कि उसकी अर्थवत्ता युग व्यापी है।'[२] डा० नामवर सिंह ने निर्मल वर्मा की कहानियों में यही युग व्यापी प्रभाव पाया है। उनके अनुसार 'निर्मल वर्मा की कहानियों का मामूली सा वाक्य युगव्यापी प्रश्न बन जाता है।'[३] इसलिए आज के सजग कहानीकार में एक नई बात पायी जाती है। उसनें 'दर्द से छटपटाते हुए आज के ऐसे व्यक्ति और समाज की दुखती रग पर हाथ रखने की कोशिश की है जिसे यह भी पता नहीं कि दर्द कहां है और क्या है।'[४]

डा० सन्त बख्श सिंह के अनुसार 'आज की बहिनें 'काला रोजगार' (मोहन राकेश) कराकर भी निकम्मे भाई के लिए पैसे जुटाने के लिए अभिशप्त हैं क्योंकि वह तो बीमार है। उसे बीमार भाई की सुख सुविधाओं के लिए खुद ही चाहे बीमार की तरह अस्पताल में आपरेशन के लिए भर्ती भले ही होना पड़े, होटल मालकिन की डांटे खानी पड़े, लेकिन वह सब करने के लिए मजबूर सी है। यही मजबूरी उसकी संवेदना का केन्द्र बिन्दु है। इसीप्रकार की मजबूरी 'रानी मां का चबूतरा' (मन्नू भण्डारी) 'सेलर' (राजकुमार), कुलटा (धर्मवीर भारती), मुरदा सराय (शिव प्रसाद सिंह), भूदान (मार्कण्डेय), चेहरे (गिरिराज किशोर) तथा वापसी (उषा प्रियंवदा) आदि कहानियों में देखी जा सकती है।

संवेदना का यह परिवर्तित स्वरूप अनेक कारणों से है। शिक्षा और स्वतन्त्रता, असहिष्णुता और असन्तोष, आकांक्षा और आशा आदि ऐसे ही कारणों की कोटि में आते हैं जिनसेनकेवल पारिवारिक बिखराव बढ़ा है बल्कि दाम्पत्य जीवन (पति -पत्नी- के सम्बन्धों) में भी दरार पैदा हुई है।

पति -पत्नी सम्बन्धों में जो सदा से ही एक प्रकार की भावानात्मक स्थिति रही है, आज उस स्थिति में परिवर्तन है। दोनों ही पक्षों की ओर से एक प्रकार की कशमकश, चिड़चिड़ापन, व्यग्रता, कटुता या तटस्थता दोनों के बीच एक अतल गहराई वाली खाई उत्पन्न कर रही हैं। उसे पार करना, लांघ सकना दोनों के लिए ही अत्यन्त दुष्कर है। यह खाईं उनकी अपनी भावनाओं, कामनाओं, इच्छाओं आदि ने ही पैदा कर दी है। डा० सन्त बख्श सिंह के अनुसार 'एक सर्द खामोशी' (विजय चौहान)

१- नई कहानी : कथ्य और शिल्प - डा० सन्त बख्श सिंह - पृ० २१-२२

२- वही - पृ० - २२

३- कहानी - नयी कहानी -डा० नामवर सिंह - पृ० ६५

४- वही - पृ० - ३२

का नवदम्पत्ति धनार्जन के लिए दो अलग -अलग शहरों में वियुक्त हो जाता है। पति -पत्नी के शहर तभी आता है जब उसे अपने व्यवसाय का कोई काम पड़ता है। पत्नी उसे लेने भी नहीं जाती तथा जिस सुबह वह जाने को होता है, वह सुबह देर तक सोना चाहती है। 'डरी हुई औरत' (रवीन्द्र कालिया) में पत्नी अपने पति को 'लेजी हस्बैंड' कहती और खुशवन्त उसे प्रिय लगता है। पति का इतवार की छुट्टी के दिन घर रहना उसे पसन्द नहीं आता और पति भी चाहता है कि वह छुट्टी के इस दिन भी खुशवन्त के साथ खूब घूमे। 'नौ साल छोटी पत्नी' (कालिया) की पत्नी सहेली की कहानी के माध्यम से अपने प्रेम की कहानी कहती रहती है और अपने प्रेम पत्रो से भरी अटैची को ड्राइंग रूप में चारपाई के नीचे खिसकाती रहती है। पति भी उस अटैची को एक बार घिसकाता है। इतना ही नहीं, उन पत्रों को वह पढ़ भी चुका है फिर भी वह तटस्थ है।"[1]

नई कहानी की रचना प्रक्रिया में संवेदना के महत्वपूर्ण स्थान की ओर इंगित करते हुए डा० सन्त बख्श सिंह ने लिखा है कि 'कहानी की रचना प्रक्रिया में संवेदना का स्थान बड़ा प्रमुख है। नई कहानी की संवेदना और उसके स्वरूप में परिवर्तन आया। संवेदना भावुकता से मुक्त हुई है। नवीन संवेदना में युग व्यापकता भले ही हो, लेकिन उनमें अभिशप्त जीवन का पीड़ा बोध , पारिवारिक बिखराव के दर्द के प्रति उदासीनता, जीवन की मजबूरियां, पति -पत्नी और प्रेमी - प्रेमिका के सम्बन्धों में 'एक सर्द खामोशी' और तटस्थता आ गई है।'[2]

मुक्तिवोध की कहानी 'मैत्री की मांग' में एक विवाहित स्त्री, पर पुरुष से मैत्री की मांग करती है। यह नहीं कि वह अपने पति से प्यार नही करती, पर वहां मैत्री के लिए अवकाश नहीं है। (इसलिए पत्नी प्रेम नहीं, मैत्री की मांग करती है - पर पुरुष से)

मोहन राकेश की कहानी 'काला रोजगार' की लड़की साधना अपने शरीर का रोजगार करके अपने निकम्मे बीमार और सनकी भाई का पोषण करती है और कहानीकार की मानवता उसके इस काला रोजगार के प्रति पाठक को भावाकुल बनाती है। इसी तरह 'आर्द्रा' की मां किस हद तक स्नेह सिक्त भारतीय मां है, इसे दो भाइयों के बीच रखकर परखा गया है। आर्द्रा में मां के स्नेह को अत्यन्त आर्द्र होकर व्यक्त किया गया है।

कहानीकार कमलेश्वर के अनुसार 'आज की कहानी का अध्ययन सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि से उतना नहीं किया जा सकता जितना कि समाज शास्त्रीय दृष्टि से।'------सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टि आज साहित्य की सबसे पिटी हुई दृष्टि है। जैनेन्द्र या अज्ञेय नारी मन के जिस तथाकथित 'रहस्य' को सुलझाने की कोशिश करते थे उसका 'एस्थेटिक मूल्य' ज्यादा होता था, क्योंकि वह स्थिति विशेष की कहानी होती थी। आज की कहानी 'स्थिति' की कहानी न होकर 'परिवेश' की कहानी हैं -जीवित और परिवर्तित होते हुए परिवेश की।

'पिछले दशक की 'चिकनी सतहों वाले बहते आन्दोलनों से परिचित लोग जानते हैं कि 'देह की राजनीति' और 'देह का भूगोल' बखानने वाले इन आन्दोलनों के रचनाकार तमाम नाते -रिश्ते भूलकर औरत को केवल 'औरत' या 'शरीर' मात्र मानने की कितनी बड़ी हिमाकत करने लगे थे और 'विवेकशील' सम्पादकों ने किस तरह इन अनैतिक आन्दोलनों की धज्जियां उखाड़कर रख दी थीं। लेकिन इन्हीं आन्दोलनों से उधार ली गई शब्दावली में लिखी गई एक ऐसे ही 'विवेकी' की ये पंक्तियां पढ़कर लोगो को शायद आश्चर्य या आघात भी लगे - 'एक समय ऐसा आता है जब चीजों के नाम, रिश्ते, सन्दर्भ सब गायब हो जाते हैं। अनेक चीजें एक चीज बन जाती हैं। अब वह सिर्फ कमर थीं, कूल्हे की उभरी हड्डियां, कमर का कटाव। खामोश, बे आवाज औरत का बदन। नाम कोई भी हो।'[3] (बन्द गली का आखिरी मकान)

१- नई कहानी : कथ्य और शिल्प - डा० सन्त बख्श सिंह - पृ० २४

२- वही - पृ० - ३१

३- आज की कहानी - विजय मोहन सिंह - पृ० - ५३

'श्रीमती मन्नू भण्डारी छठे दशक की शुरुआत से कहानियां लिख रही हैं। किन्तु महत्वपूर्ण यह नहीं है कि वे तब से लगातार लिख रही हैं, वल्कि यह है कि वे तब से बहते 'आन्दोलनों' से प्रायः अप्रभावित रहकर भी प्रासंगिक बनी हुई हैं।'[1]

इसलिए मन्नू भण्डारी की कई कहानियां लोगों को पिछड़ी हुई कहानियां भी लग सकती है। मसलन इस संग्रह की पहली ही कहानी 'आते जाते यायावर' को लें। यह कहानी आज की छद्म आधुनिकता के खिलाफ लिखी गई है। यानी स्त्रियों के इस्तेमाल के लिये यह आधुनिकता कैसे एक जाल का काम करती है, कहानी इसे ही बताती है। इस तरह कहानी में 'नयी वात' कुछ भी नही है। उसमें किसी प्रकार की उपचार वक्रता भी नहीं है। सब कुछ वही जो हम दिन -रात देखते -सुनते, जानते और प्रायः प्रयोग में भी लाते है। किन्तु कहानी में अगर यही सारी बातें 'पुरुष -प्रभुत्व' को और इसी रूप में पुरुष की नीचता प्रमाणित करने के लिए लिखी गयी होतीं तो यह अपनी इस अत्यन्त सामान्य सामग्री के साथ अत्यन्त सामान्य कहानी होती। लेकिन कहानी आधुनिकता के सन्दर्भ में पुरुष के 'छल' को जितना खोलती है, उतना ही स्त्री के छल को भी। कहानी की 'स्त्री' को पता है कि वह 'फंसाई' जा रही है। एक तथाकथित आधुनिक पुरुष के द्वारा चुस्त आधुनिक जुमलों में दार्शनिकता वघारने के पीछे क्या है, यह उसे अच्छी तरह पता है, उसकी पद्धति और परिणति को वह पहचानती है। पर इस समझ- 'हरेक राज का मगर फरेब खाये जा' में भी एक थ्रिल है । इस 'थ्रिल' को स्वीकार करते ही वह अपनी भी एक बुनियादी कमजोरी को स्वीकार कर लेती है।'[2]

<u>सामाजिक सम्बन्धों का चित्रण :-</u>

नयी कहानी जहां एक ओर तेजी से कई चीजों से मुक्त हुई है वहीं कई चीजों से तेजी से जुड़ी भी है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को सम्बन्धो में सबसे अधिक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। कहना न होगा कि सम्बन्धों के प्रति संवेदनशीलता सामाजिक चेतना के कारण ही सम्भव हो सकी है। 'इसलिए पिछले वर्षो की कहानियां मूलतः सम्बन्धों की कहानिया है। सम्बन्ध चित्रण में लेखक सबसे अधिक ईमानदार होता है और अधिक आत्म विश्वासपूर्ण। उस सम्बन्ध परिवर्तन के अनेक स्तर और दिशाएं हैं। हमारे तमाम सम्बन्ध अचानक सन्दिग्ध और 'सवाल' बन गए हैं '- लेखक कलम उठाता है कहानी लिखने के लिए (कहानी जैसे कि वह पढ़ता है) पर अगर वह ईमानदार हुआ तो -बिना जाने ही अकसर सम्बन्धों के इस सवाल में उलझ जाता है।'

'अतः यह आकस्मिक नहीं है कि इस बीच की अनेक श्रेष्ठ और सफल कहानियों 'सम्बन्धों, पर आधारित है। प्रेमी -प्रेमिका के सामान्य सम्बन्धों के अतिरिक्त भी। 'मां' और 'पुत्रो' जैसे सीधे, निश्चित और प्रगाढ़ सम्बन्ध भी अचानक 'प्रश्न' बन गए हैं।'[3]

सम्बन्ध हमारी सामाजिकता जाहिर करते हैं, क्योंकि वे हमें दूसरों से जोड़ते हैं। यहाँ तक कि सम्बन्ध टूटने की पीड़ा का बोध भी सामाजिक चेतना का ही अंग है। 'मानवीय स्थिति' से 'मानवीय सम्बन्ध' की ओर विकास सामाजिक चेतना का विस्तार है, अधिक रागात्मक और अधिक प्रामाणिक। नया कहानीकार तथाकथित मनोवैज्ञानिकता पर आधारित 'मानव स्वभाव का विश्लेषण' नहीं करता। वह मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित विश्लेषण के 'खूझे' नहीं अलगाता। वह एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच गया है जहां वाह्य परिवेश अपनी दूरी का परित्याग कर वैयक्तिक सम्बन्धों के विश्लेषण में घुल गया है। आज की कहानी का 'सम्बन्धों' पर अधिक बल देना इसी विकास यात्रा का परिचायक है।'[4]

१- आज की कहानी - विजय मोहन सिंह - पृ० - ८७
२- वही - पृ० - ६८
३- वही - पृ० - ८३
४- वही - पृ० - ८७

(स) नारी के निजी अस्तित्व के अद्यतन स्वरूप, उसके पुरुष वर्ग, परिवार तथा समाज के साथ रिश्तों का हिन्दी कहानियों में चित्रण :-

शिक्षा, स्वावलम्बन एवं स्वतन्त्रता के वातावरण ने आधुनिक नारी में जो व्यापक और प्रभावकारी परिवर्तन किया है, उसका विश्लेषण करते हुए डा० सन्त बख्श सिंह ने लिखा है -

'नये आर्थिक वर्गों के निर्माण के साथ -साथ परिवार के ढांचे तथा स्वरूप भी परिवर्तित हुए। स्त्री स्वतन्त्रता के साथ जव स्त्री ने पुरुषों के समान विभिन्न सामाजिक कार्यो में प्रत्यक्ष योग देना प्रारम्भ किया तो नौकरी पेशा स्त्री की परिवार में परम्परागत ढंग की स्थिति नहीं रही। विवाहित दम्पत्ति में जब स्त्री और पुरुष दोनों ही नौकरी करने लगे, तो दोनों की मानसिक स्थितियों में व्यापक परिवर्तन आया। आर्थिक स्तर पर स्वयं उत्तरदायित्व सम्हाल लेने के कारण स्त्रियों में अपने अस्तित्व के प्रति चेतना जागी और उनका अहं भी समर्थित होने लगा। अब वह परम्परागत हिन्दू परिवार की सास - ससुर और पति की सेवा करने वाली तथा सास के इशारों पर नाचने वाली स्त्री नहीं रही। आर्थिक स्तर पर समृद्ध हो जाने के कारण उसने एक स्वतन्त्र व्यक्ति के अधिकारो की मांग की और इस प्रकार अपनी गृहस्थी को उसने अपनी कल्पना के अनुसार ढालने की कोशिश की। -- - - - - ।

'एक ओर जहाँ परिवार का परम्परागत स्वरूप टूटा, वहीं दूसरी ओर स्त्री स्वतन्त्रता के कारण नवयुवक स्त्रियों के स्वरूप में परिवर्तन आया। जो स्त्रियां आजीविका के साधन स्वयं जुटाती थीं उनकी मानसिकता में धीरे -धीरे व्यापक परिवर्तन आया और इस प्रकार उन्होंने जीवन और चिन्तन के स्तर पर पुरुषों के समान ही स्वयं को प्रस्तुत करने की कोशिश की। स्वातन्त्र्योत्तर नारी के इस रूप को लेकर नये कहानीकारों ने अनेक कहानियां लिखीं, जिनमें पारिवारिक विघटन से लेकर नारी के इस नये अहं पोषित स्वरूप तक का चित्रण किया गया।'[1]

इस दृष्टि से हिन्दी कहानी के क्षेत्र में तीन कहानीकारों का उल्लेख किया जा सकता है- मे हैं जैनेन्द्र, अज्ञेय एवं इलाचन्द्र जोशी। अज्ञेय में जैनेन्द्र के समान ही बंगला साहित्य, फ्रायडीय मनोविज्ञान तथा व्यक्तिनिष्ठ चिन्तन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अज्ञेय की कहानी 'गेंग्रीन' में भारतीय नारी के नये स्वरूप को अंकित किया गया है।

'गेंग्रीन' की नायिका मालती के पति महेश्वर रोज ही देर से आते हैं, रोज ही दोपहर को नल में पानी बन्द हो जाता है, रोज ही वह पति के बाद खाना खाती है, रोज ही वह पति से बीमारी की बातें सुनती है, रोज ही वे गर्मी में भीतर सोते हैं, रोज ही बच्चा खाट पर से गिर पड़ता है------------ और इस प्रकार मालती के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में जैसे 'रोज' और 'ग्रेंग्रीन' (बीमार छा गयी है -------जिससे वह मुक्त नहीं हो पाती। भारतीय स्त्री के इस आन्तरिक अकेलेपन को लेखक ने पहली वार सफलतापूर्वक अंकित किया है। चित्रण की प्रणाली में कई अर्थो में छायावादी संस्कारों से अज्ञेय पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाये हैं किन्तु नये और अछूते विषय को छूकर उन्होंने परिवर्तन का संकेत अवश्य दिया है।

------------ चिठ्ठी पत्री' की नायिका प्रमिला के चरित्र में एडलर की हीनता मनोग्रन्थि तथा ओवर काम्पेन्शन एवं रिएक्शन फारमेशन नामक मनोग्रन्थियों का प्रतिपादन मिलता है।'[2]

मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के इसी प्रयोग के कारण जोशी जी के कथा साहित्य के सम्बन्ध में कहा गया है 'मनोविज्ञान विषय के निर्वाचन की दृष्टि से जोशी जी आधुनिक कथा साहित्य के सर्वश्रेष्ठ लेखक हैं।

१- नई कहानी : कथ्य और शिल्प - डा० सन्त बख्श सिंह - पृ० ४४

२- आधुनिक कथा साहित्य और मनोविज्ञान - डा० देवराज उपाध्याय - पृ० - २५८

दें जो कि उसके पहले के पुरुष और स्त्री दोनों रचनाकारों ने आने वाली लेखिकाओं के लिए अनकहे ही तय कर रखी है कि या तो वे स्त्री को निरन्तर एक उपभोग्य और इसीलिए दयनीय सामग्री बनाये रखने के षडयंत्र में शामिल हों या उससे विद्रोह करें तो वह भी एक उग्र चमत्कार से अधिक कुछ न हो जो एक नारी सुलभ गुण माना जाए और फिर उनके ही उसी षडयंत्र को शक्ति दे। इससे भी अधिक तथा कथित विद्रोही कथा लेखिकाएं कुछ करना चाहे तो पुरुष से मुक्ति की हुंकार भरें और इस चेष्टा में और अधिक कमनीय प्रतीत हों जिससे उनके साहित्य में स्त्री और अधिक उपभोग्य एवं विक्रय की सामग्री वन सके।[१]

रघुवीर सहाय की अनेक कहानियों में नारी को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है। उनकी 'सेव' कहानी में रोगग्रस्त बालिका का चित्रण किया गया है जो उसके प्रति दिखायी गई करूणापूर्ण संवेदना को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखती है और लेखक को उसका स्वाभिमान का भाव अच्छा लगता है। इस दृष्टि से उल्लेखनीय उनकी एक अन्य कहानी है - 'मेरे और नंगी औरत के बीच'।

इस प्रकार अन्य अनेक कहानीकारों की कहानियों में नारी के नये स्वरूप का चित्रण मिलता है। किन्तु यह एकाध कहानी में ही देखा जाता है। ऐसे कहानीकारों में रांगेय राघव, यशपाल, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ,राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, फणीश्वर नाथ रेणु, गिरीराज किशोर, अमरकान्त आदि उल्लेखनीय है। इनमें नारी के विविध रूपों को देखा तो सकता है किन्तु उसका व्यापक रूप साठोत्तरी कहानी में ही मिल सका और ऐसा होना स्वाभाविक भी था। इसे हम नारी के विविध रूपों की विवेचना करते हुए इंगित करेगे।

नारी के विविध रूप :

जैसा कि भारत के नारी स्वतन्त्रता के इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए पाया गया है - भारतीय नारी धार्मिक एवं सामाजिक बधंनों से ग्रस्त थी और उसके लिए समानता एवं स्वतन्त्रता की कल्पना भी नहीं की जाती थी, किन्तु पाश्चात्य प्रभाव के कारण व विज्ञान के प्रभाव के कारण तथा औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण नारी की शिक्षा, समानता तथा स्वतन्त्रता की धारा बह चली। स्वतन्त्रता के बाद संविधान द्वारा प्रदत्त समानता एवं स्वतन्त्रता के अधिकारों के कारण इस में तीव्रता आयी। साठोत्तरी कहानी में स्वभावतः उसका चित्रण बढ़ना था।

डा० राम प्रसाद के अनुसार 'स्वाभिमानी नारी का जैसा चित्रण साठोत्तरी हिन्दी कहानीकारों ने किया है वैसा शायद ही कभी पहले हुआ हो।'[२] डा० पुष्पा बसंल के अनुसार 'साठोत्तरी हिन्दी कहानी से पूर्व साहित्य में सर्वथा नारी भावना के सत्य को कहीं पाप, कहीं अपराध, कहीं व्यभिचार और कहीं वासना के लालवृत में रखा गया। इस कहानी ने नारी को उसके सम्पूर्ण सत्य में पहचाननें की चेष्टा की है और इसमें पर्याप्त रूप से सफल भी हुई है। रांगेय राघव की 'गदल' इस दृष्टि से सशक्त कहानी है।'[३]

वहीं वे लिखती हैं - साठोत्तरी हिन्दी कहानी द्वारा सर्जित नारी कृपण नहीं है, कायर भी नहीं है, असमर्थ नहीं है और अकर्मण्या भी नहीं है। वह केवल शोषण को स्वीकार नहीं करती। सातवें - आठवें दशक की हिन्दी कहानी यह विश्वास दिलाती है कि स्वतन्त्र नारी इसके ही दर्पण में अपना चेहरा देख - देख कर अपना अभीष्ट पा लेगी।'[४]

१- एक कमजोर लड़की पागल सी - कृष्णा वाजपेयी - रघुवीर सहाय द्वारा लिखित भूमिका से।
२- साठोत्तरी हिन्दी कहानी में पात्र और चरित्र चित्रण - डा० राम प्रसाद - पृष्ठ ३३
३- अनुवाक (सं०) डा० वचन देव कुमार में डा० पुष्पा बसंल का लेख - ' ६० के बाद के नारी के बदलते प्रतिरूप पृष्ठ -६
४- वही - पृष्ठ - १७

ऊपर रांगेय राघव की 'गदल' कहानी का उल्लेख उसमें नारी विषयक विशिष्ट चित्रण के कारण किया गया है। वस्तुतः रांगेय राघव ने अपनी अधिकांश रचनाओं में नारी मन का निश्शंक एवं निर्भीक उद्घाटन करते हुए उसे उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित किया है चाहे वे मुर्दो का टीला, पथ का पाप , आग की प्यास और कब तक पुकारूं जैसे उपन्यास हों या गदल जैसी कहानियां। वस्तुतः ग्रामीण अचंल के परिवेश में तथा जनजातियों की पृष्ठभूमि में रांगेय राघव जी को नारी के क्रान्तिकारी विचारों को प्रस्तुत करने का पुष्ट आधार मिल सका है। 'मुर्दो का टीला' में नारी प्रागैतिहासिक काल की पृष्ठ भूमि में दास जीवन की पृष्ठभूमि में चित्रित है। 'कब तक पुकारूं' में 'करनटों' जैसी जनजाति की पृष्ठभूमि में और गदल में गूजरों के समाज में। इन सभी में हम नारी हृदय को खुलकर बोलते तथा विद्रोह करते पाते हैं। 'गदल' कहानी की नायिका 'गदल' गूजर जाति की प्रौढ़ विधवा है। पति की मृत्यु के बाद वह अपने देवर डोडी की ओर आकर्षित होती है किन्तु समाज के दबदबे में डोडी उसे अपनाने से कतराता है। फिर वही डोडी गदल को फटकारने पहुँचता है जब गदल मौनी नाम के व्यक्ति के घर जा बैठती है। इस पर गदल डोडी को इस प्रकार फटकारती है-

'अब कुनबे की नाक पर चोट पड़ी तो सोचा, तब ना सोचा जब तेरी गदल को बहुओं ने आंखे तरेरकर देखा। अरे कौन किस की परवाह करता है।'

X X X X X X X X X

' तू ? वह रुकी - मरद है ? अरे कोई बैगर से घिघियाता है ? ------ बढ़कर जो तु मुझे मारता तो मैं समझती, तू अपना मानता है।' मैं इस घर में रहूंगी?'

किन्तु जब डोडी को गदल का मोनी के घर चले जाना असह्य हुआ और वह उसी रात चल बसा तो वही गदल मोनी द्वारा जबरन रोके जाने पर भी छप्पर का कोना उठाकर सांपिन की भांति रंग कर डोडी के घर जा पहुंचती है और राज तथा कानून का खुल कर विरोध करते हुए उसके मरने पर पूरी बिरादरी को भोजन कराती है और उसी कारण पुलिस के सघंर्ष में प्राणों की बलि दे देती है। डा० कमलाकर गंगवाने के अनुसार ' चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी ' उसने कहा था' - को जो सम्मान प्राप्त हुआ,उसी प्रकार का सम्मान गदल को भी प्राप्त हुआ है।'[1]

नारी के ऐसे रूप का चित्रण हम साठोत्तरी कहानियों में 'मित्रो मरजानी' में पाते हैं।

<u>यौन सम्बन्धों का खुला चित्रण :-</u>

बीसवीं शताब्दी में मनोवैज्ञानिकों द्वारा निकाले गए निष्कर्षो के आधार पर तथा सुखवादी दार्शनिकों की विचारधारा से इहलोक वादी, भौतिकता वादी चिन्तकों के प्रभाव से मानव जीवन के सबसे गोपनीय अंश काम सम्वंधो का पहली बार खुल कर चित्रण प्रारम्भ हुआ। मनोवैज्ञानिकों ने तो यह भय दिखाया कि मानसिक असन्तुलन आदि बाहरी प्रभाव काम वासनाओं के दमन के कारण ही होता है। अतः उसका भी परिष्कार उतना ही आवश्यक है। इस प्रकार का खुला या नग्न चित्रण साठोत्तरी हिन्दी कहानी को पिछले खेमें की कहानियों से भिन्न धरातल पर उपस्थित करता है और एक अति महत्वपूर्ण घटक बन कर उपस्थित है। स्वभावतः उसका सही एवं सधा हुआ उपयोग न हो पाने के कारण या जान बुझ कर न किए जाने के कारण स्वभाविक यौन चित्रण के नाम पर कल्पित एवं मनोरति जनित काम चित्रण अपने घिनौने रूप तक चित्रित हो गया है।

---

१ - कथाकार रांगेय राघव - डा० कमलाकर गंगावने - पृष्ठ २३६

'आज की कहानियों में यौन चित्रण जितना खुलकर हुआ है उतना पहले नहीं हुआ था। इस नाते अनपेक्षित यथार्थ का चित्रण हुआ है। चौंका देने वाली बातें ले कर कथाकार पाठकों के सम्मुख आएं हैं, विरूपता,विक्षोभ या अश्लीलता का प्रश्न उठ सकता है, पर सामाजिक जीवन में दम तोड़तें हुए इन्सान की आत्मा की युग युग की प्यास भी अभिव्यक्त हो सकी है और ऐसी सशक्त अभिव्यक्ति इस युग के पहले कभी नहीं हुई थी।'[१]

काम सम्बन्धों के इस चित्रण में किसी प्रकार का यौन चित्रण बाकी नहीं रखा गया। काम सम्बन्धी विकृतियों का भी उतना ही खुल कर चित्रण किया गया है। डा० राम प्रसाद के अनुसार -

' साठोत्तरी कहानी में सेक्स का खुला चित्रण हुआ है। इस काल में सभी प्रकार के काम सम्बन्ध पाये जाते हैं चाहे वह विवाह पूर्व हों या विवाहेतर। समलैंगिक और विषम लैंगिक दोनो ही प्रकार के काम सम्बन्धों की पर्याप्त चर्चा हुई है। काम सम्बन्धों की बहुलता का अदांजा इसी से लगाया जा सकता है कि डा० वीरेन्द्र सक्सेना ने ' काम सम्बधों का यथार्थ और समकालीन हिन्दी कहानी' पर शोध कार्य किया है। समलैंगिक काम सम्बन्धों पर लिखी गयी कहानियां हैं ------ 'प्रतीक्षा (राजेन्द्र यादव) ' एक मेरा दोस्त'(मणिका मोहिनी)क्रिया-प्रतिक्रिया (शशि प्रभा शास्त्री) विषपायी (दीप्ती खण्डेलवाल) आदि हैं। शोभना सिददीकी की कहानी 'लव व लव'में समलैंगिक सम्बन्ध का खुलकर वर्णन हुआ है। ---------अब समाज में पहले जैसे बाल - विवाह नहीं होते हैं। बेकारी के शिकार नवयुवक और नवयुवती खुद शादी नहीं करना चाहती है। लड़कियों पर पारिवारिक बोझ आ जाने के कारण भी शादी नहीं हो पाती। समय पर शादी नही होने के फलस्वरूप अथवा काम के उद्दाम वेग के कारण अपने आपको रोकने में असमर्थ नवयुवक - नवयुवतियों में विवाहपूर्व यौन सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। विवाह पूर्व प्रेम सम्बन्ध को चित्रित करने वाली कहानियां ये हैं - ममता कालिया - 'दो जरूरी चेहरे', उषा प्रियंवदा -'सम्बन्ध', कुलभूषण - 'निश्चय', निर्मल वर्मा -'अन्तर', रवीन्द्र कालिया -'पचास सौ पचपन', रघुवीर सहाय - ' प्रेमिका', श्रीकान्त वर्मा -'खेल का मैदान', रमेश बक्षी - 'खाली', महीप सिंह -'बात की बात', मृदुला गर्ग -'कितनी कैदें', राजकमल चौधरी -'स्टिल लाइफ', सांत्वना निगम -'एक और सीता', एवं हिमांशु जोशी -'एक और समुद्र' आदि कहानियों को लिया जा सकता है।'[२]

पर यह सूची यही समाप्त नहीं हो जाती। विवाह -पूर्व एवं विवाहोत्तर काम सम्बन्धों की लम्बी सूची दी जा सकती है जैसा कि डा० वीरेन्द्र सक्सेना ने अपने शोध प्रबन्ध 'काम सम्बन्धों का यथार्थ और समकालीन कहानी' में दी है।

इसी प्रकार की एक लम्बी सूची 'महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक सन्दर्भ' शीर्षक अपने शोध-प्रबन्ध में डा० शीला प्रभा वर्मा ने भी दी है।'[३] कहना न होगा कि जो स्थिति उपन्यासों के क्षेत्र में है वही स्थिति कहानियों के क्षेत्र में भी है क्योंकि कहानी का विकास उपन्यास के संक्षिप्त रूप की आवश्यकता की पूर्ति के रूप में ही हुआ है।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है बींसवी सदी की समाज विज्ञान के क्षेत्र में सबसे बड़ी देन मनोविज्ञान के विस्तार, विकास एवं प्रतिष्ठा की है। साहित्य के क्षेत्र में भी मनोविज्ञान का वर्चस्व बढ़ा है और प्रत्येक सामाजिक समस्या को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने, आंकने और व्याख्यापित करने का उपक्रम किया गया है। कहानी का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं हैं 'क्योंकि कहानी के सम्मुख चाहे विश्व व्यापी युद्ध के विस्फोट की समस्या हो, मिल में हड़ताल की समस्या हो, मंहगाई की यन्त्रणा हो, प्रणय और आत्मसमर्पण की व्याकुलता हो, परिवार के छोटे -छोटे झगड़े, समूचे समाज में व्याप्त यौन समस्या हो, प्राचीन मूल्यों और परम्पराओं के प्रति विरोध की भावना हो, नयी और पुरानी पीढ़ी का अन्तर्द्वन्द्व हो, अपराधी मनोवृत्ति हो और चाहे कुण्ठा , भ्रम, निराशा, असुरक्षा अथवा मृत्यु का संत्रास हो - इन सबके मूल में कोई न कोई मनोवैज्ञानिक कारण अवश्य है।'[४]

आधुनिक समाज में नारी को पुरुष के समान अधिकार देने या समानता का स्तर सुलभ कराने की दृष्टि से जो प्रयास

१- साठ के बाद की हिन्दी कहानी का सामाजिक सन्दर्भ (अनुवाक)- पृ० - ४८

२- साठोत्तरी हिन्दी कहानी में पात्र और चरित्र -चित्रण - डा० राम प्रसाद पृ० -३६

३- महिला उपन्यासकारो की रचनाओं में बदलते सामाजिक सन्दर्भ - डा० शील प्रभा वर्मा - पृ० ५५

४- हिन्दी कहानी - सामाजिक सन्दर्भ - डा० अश्वघोष - पृ० ७३

पुनर्जागरण काल में किए गए उनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। साहित्य के क्षेत्र में भी स्वभावतः नारी की प्रतिष्ठा की गयी। यह विशेष रूप से कथा साहित्य में सम्भव हुआ। साठोत्तरी कहानी परम्परा से हटकर होने के कारण स्त्री -पुरुषों के समाजगत वैषम्य को उभार सकी। समाज शास्त्रियों और शिक्षा शास्त्रियों ने नारी को गौरव पूर्ण स्थान दिलाया। साठोत्तरी कहानी में नारी के सभी रूपों को उभारा गया है। किन्तु इसका यह आशय नहीं कि पुरुष पात्रों की उपेक्षा की गई है। वस्तुतः पुरुष और नारी पात्रो के बीच कशमकश, टकराहट, वर्चस्व की लालसा, स्वतन्त्र जीवन की कामना, परम्परात्मक नियमों एवं व्यवस्थाओं को तोड़ने या उनसे उन्मुक्त होने की उत्कट कामना आदि का चित्रण पूरे विस्तार से किया गया मिलता है। परन्तु नारी के अब तक पद दलित, उपेक्षित एवं तिरस्कृत रूप को प्रतिष्ठित करने का पर्याप्त अवकाश तथा आवश्यकता थी।

डा० राम प्रसाद के अनुसार -

'जिस प्रकार पुरुष पात्रों के विविध रूपों को देखने का मौका मिलता है उसी प्रकार साठोत्तरी हिन्दी कहानी में नारी के सभी रूपों को देखा जा सकता है। आज की हिन्दी कहानी नारी के कन्धों पर टिकी हुई है ऐसा कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।--------नारी का यथार्थ सम्पूर्ण यथार्थ समस्त हिन्दी साहित्य में पहली बार साठोत्तरी कहानीकारों ने चित्रित किया है।

'साठोत्तरी हिन्दी कहानी में जिस नारी का चित्रण हुआ है उसमें पारस्परिक नारी सुलभ मृदुता के साथ -साथ कहीं एक गुमान -एक स्वाभिमान भी है, यह मानना पड़ेगा। वह अपनी भावनात्मक आवश्यकताओं के लिए पुरुष पर आश्रित है पर उसमें कहीं एक ऐसा विश्वास -ऐसा बोध भी है कि जितनी पुरुष की आवश्यकता उसे है - उतनी ही पुरुष को उसकी भी। वह व्यर्थ एवं सीमातीत रूप में क्यों दबती चली जाए। वह अर्जनशीला है, अतः उसका विवेक, उसका आत्म गौरव पुरुष से समानता की मांग करता है, प्रेमी रूप में पुरुष वह समानता उसे भरपूर देता है परन्तु पति की भूमिका में आते ही उसका रूप बदल जाता है और उस नारी को एक पारम्परिक पति का सामना करना होता है। वह आत्म निर्भर है। कई स्थितियों में वह अपने पूरे परिवार की अन्नदाता है, पर उसका परिवार और परिवेश उसके रूप की इस नवीनता को तो स्वीकार करता है बल्कि इसका स्वागत करता है- पर उसके अपने आचरण में यदि लीक को तोड़ने का अंश भी दिखाई पड़ जाता है तो सम्बन्धी एवं परिवेश के कान खड़े होने लगते हैं।

'साठोत्तरी हिन्दी कहानी नारी का जो रूप प्रक्षेपित कर रही है वह स्वरूप दर्शाता है कि नए भारत की नई नारी अभी स्वयं को समझ रही है, गढ़ रही है। अपनी सम्पूर्ण शारीरिक, भावनात्मक दुर्बलताओं की स्वीकृति के अन्दर से ही वह अपने जीवन की सिद्धि चाहती है। इसके मार्ग में बाधाएं ही बाधाएं है। सहायक बहुत से हैं - परन्तु जो सहायक बनकर आगे बढ़ते हैं वे न मालूम कब पथ के किस मोड़ पर शोषक बन जाते हैं और यह नारी केवल उस शोषण के विरुद्ध ही चीखना चाहती है।'[1]

वस्तुतः नारी को जहाँ अनेक विषमताओं, उत्पीड़नों से मुक्ति मिली है वहीं नयी -नयीं समस्याओं ने जन्म भी लिया है। उसे बाल -विवाह से मुक्ति तो मिल गयी है किन्तु बाल -शोषण से मुक्ति नहीं मिली, उलटे उसमें वह फंसती ही जा रही है। उसे अनमेल विवाह से मुक्ति मिली है किन्तु अनुकूल विवाह उससे अब भी दूर है। उसे सती प्रथा से मुक्ति मिली है किन्तु सुरक्षित विधवा जीवन नहीं मिला है। उसे अशिक्षा से मुक्ति मिली है किन्तु शिक्षा पाने और शिक्षा पा लेने के बाद के शोषण से मुक्ति नहीं मिली है। इसलिए समस्याएं अभी समाप्त नहीं हुई हैं। किन्तु इससे क्या? घबराने या हताश हो जाने से तो कुछ भी उपलब्ध नहीं होगा। नारी को, विशेष कर , भारतीय नारी को यह बात अच्छी तरह हृदयंगम कर लेनी है।

वस्तुतः यह संक्रमण काल है और इस कारण अनेक विकृतियां अभी भयावह आकृतियों के रूप में मंडराती नजर आती हैं। परन्तु सदैव ऐसी स्थिति नहीं रहेगी। बहुत शीघ्र ही इसमें सुधार होगा। राज्य, समाज और साहित्य इसमें महत्वपूर्ण भूमिका

१- साठोत्तरी हिन्दी कहानी में पात्र और चरित्र -चित्रण - डा० राम प्रसाद पृ० -६६ - ७०

निभा सकते हैं और उन्हें यह भूमिका आज नहीं तो कल निभानी होगी। इसे जितनी शीघ्रता से किया जाय उतना ही सुन्दर होगा।

साठोत्तरी कथा साहित्य उस दिशा में अपनी भूमिका निभाने चल पड़ा है। उनमें सामाजिक विषमताओं की उत्पत्ति, उनके दुष्परिणामों और उनके निरसन के मार्ग का चित्रण प्रभावपूर्ण ढंग से किया जा रहा है। उसका सुपरिणाम देर -सबेर अवश्य दिखेगा।

पर अभी तो स्थिति यह है कि जो गुण किसी भी स्त्री को दूसरे समाज में सहज ही सम्माननीय स्थान दिला सकते हैं वे ही भारत में उसकी सबसे बड़ी त्रासदी का कारण बनते हैं। कहीं स्त्री की शिक्षा को महत्व मिलता है तो कहीं अधिक शिक्षा ही उसके लिये अनुरूप वर न पाने या अनुकूल विवाह न हो पाने का कारण बनती है। अर्जन शीला नारी को एक ओर उपयुक्त पत्नी माना जाता है, पर उसी पर संशय भी किया जाता है या उसके ही मातृकुल के लोग लम्बे समय तक उसका विवाह नहीं होने देते। नारी स्वयं भी अपनी वर- चयन की प्रक्रिया को उतने प्रभावी ढंग से कार्य रूप में परिणत नहीं कर पाती जिस रूप में वर कन्या चयन में कर पाता है। इस कारण भी नारी अपने आप अनिश्चय एवं अनिर्णय के अन्धकार में फंसी रह जाती है। इस कारण या अन्य अनेक कारणों से भी नारी कभी कभी विवाह संस्था की सार्थकता पर ही प्रश्न सूचक चिन्ह लगा देती है। उन्हें एकाकी रहने के संत्रास को भोगना पड़ता है। परन्तु ऐसा नहीं है कि यह त्रासदी केवल नारियों के साथ ही घटित हो, पुरुषों को भी इससे गुजरना पड़ता है। एकाकी पुरुष को स्त्री का और एकाकी स्त्री को पुरुष का अभाव खटकना स्वाभाविक है। आज देश में न जाने कितनी शिक्षित लड़कियां या शिक्षित होकर नौकरी करने वाली लड़कियां समरूप या अनुकूल वर चयन न कर पाने के कारण कुंवारी रह जाती हैं।

विभिन्न समस्याओ से ग्रस्त नारी की सामाजिक चेतना :-

इस प्रकार की अनेकानेक समस्याएं आज समाज के समक्ष उपस्थित हैं और उनका चित्रण साठोत्तरी हिन्दी कहानी में मिलता है। इनमें से प्रमुख समस्याओं को चित्रित करती कहानियों पर दृष्टिपात कर लेना उचित होगा।

राजेन्द्र यादव की कहानियों को लें। उनमें स्त्री के बहुविध उत्पीड़न का चित्रण मिलता है। 'खेल -खिलौने' कहानी में नीलिमा की असाधारण प्रतिभा और कलात्मक अभिरूचियां उसे कुछ दे नहीं पातीं बल्कि समस्या बन कर उपस्थित होती हैं। वह सुधीन्द्र भाई से कहती है -'मेरे बायलिन और सितार में मानो धूल भर गई है। महादेवी और मीरा का गीत यहां गाकर सुनाऊं तो सब उल्लुओं की तरह मेरा मुंह देखे। बात - बात में इनकी इज्जत का ध्यान, बात -बात में स्त्री होने की घोषणा ---------सच भाई साहब आज हृदय में बड़ी प्रचण्ड शक्ति से सब उठ रहा है कि काश मैं एक साधारण लड़की होती मूर्ख और भेड़, जिसके बचपन की सारी तैयारियां, शिक्षा - दीक्षा केवल विवाह के लिए होती हैं और विवाह होने के बाद जैसे इन सारे झंझटों से छुटकारा मिलता है।'[1]

राजेन्द्र यादव की दूसरी कहानी 'जहां लक्ष्मी कैद है' में अन्ध विश्वासों की छाया में पल रहा 'रूपा राम अपनी लड़की को लक्ष्मी मानता है। उसके मन में विश्वास है कि लड़की की शादी कर देने से उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जायेगी। अपने बड़े भाई रोचू राम और उसकी बेटी गौरी का उदाहरण उसके विश्वास को पुष्ट करता है। इसलिए छब्बीस वर्ष तक की लड़की की शादी नहीं करता है। अन्त में लड़की हिस्टिरिया का शिकार हो जाती है बिलकुल नंगी हो जाती है और जांघे और छाती पीट- पीट कर बाप से कहती है - ले तूने मुझे अपने लिए रखा है, मुझे खा, चबा, मुझे भोग।' वह पिटता है, गालिया खाता है और सब कुछ करता है, लेकिन पहरे पर जरा ढील नहीं देता।'[2]

दहेज न दे सकने के कारण या उपयुक्त वर न खोज सकने या कमाऊ बेटी की आय से हाथ धोने की इच्छा न होने के कारण या ऐसे ही अनेक कारणों से कन्या की स्वयं की विरूपताओं, विकलांगताओं, असामान्य बुद्धि, शरीर सौष्ठव, आकार आदि के कारण भी कन्याओं के विवाह नहीं हो पाते। उनकी भी ऐसी ही मनः स्थिति क्या नहीं बन जाती। इनमें से अधिकांश स्थितियों में न तो राज्य का कोई वश चलता है, न धर्म का और न समाज का।

'मेरे लिये नहीं' (राजी सेठ) की प्रीति विवाह नहीं करना चाहती। 'पत्नी -जिसे तुम सब पत्नी कहते हो वह मैं नहीं

१- खेल खिलौने - राजेन्द्र यादव - पृ० -३८

२- जहां लक्ष्मी कैद है- राजेन्द्र यादव - पृ० - २६५

हो सकती। मेरे अन्दर दूसरों को उस हद तक एडजस्ट करने की शक्ति नहीं है।' 'मिस फिट (रमेश गुप्त) की इला भी शादी को बुर्जवाओं के चोचलें मानती है। वह समूची व्यवस्था में बदलाव चाहती है।

'सुनमना' एक ऐसी नारी है जो समृद्धिशाली है किन्तु बायीं आंख के कुछ दोष के कारण सुहागरात को ही अपने पति द्वारा उपेक्षित तथा अपमानित होकर इतनी तिलमिला उठती है कि चारित्रिक पतन का ही रास्ता अपना लेती है। तथाकथित उच्च वर्ग के पतन की जो बात साधारण जन अपने होंठों पर लाने का साहस नहीं करता उसे कथाकार ने सहज यथार्थ के रूप में स्पष्ट कर दिया है।

कमलेश्वर की कहानी 'एक थी विमला' किशोर आकांक्षा और संघर्ष की कहानी है। चार किशोर लड़कियां भिन्न - भिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार लड़खड़ाती हैं- इसका चित्रण किया गया है। चारों लड़कियां -विमला, कुन्ती, लज्जा और सुनीता पढ़ लिख कर अब अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती हैं - पुरुष उनके सौन्दर्य के चारों ओर मंडराता है। इनमें से उच्च मध्यवर्ग की लड़की विमला सभी आकांक्षाएं पूरी कर लेती है और उसकी ओर कोई अंगुली भी नहीं उठाता और वह किसी की नाक भी नीची नहीं करती है किन्तु कुन्ती सुन्दर, सुशील और समझदार होते हुए भी पिता की मृत्यु के वाद बेसहारा बन कर परिवार के भरण -पोषण के लिए गरीबी से लड़ती हुई अन्त में समर्पित होने के द्वार पर पहुंच जाती है। तीसरी लड़की लज्जा सुशील, शिक्षित, सुन्दर और समझदार होते हुए भी परिस्थिति की मारी कालगर्ल की भूमिका में पहुंच जाती है। गरीबी से लड़ने में वह जीत जाती है पर जिन्दगी की बाजी वह हार जाती है। उसका प्रेमी उसके साथ रमण कर सकता है, पर दिलीप उससे शादी करने से इन्कार कर देता है। चौथी लड़की सुनीता अकेलेपन के घेरे में घिरी एक नर्स बन जाती है। उसके चाहने वाले या वह स्वयं सबसे विरक्त हो गयी है। उसके अकेलेपन पर डबल रोटी देने वाला फेरिया भी कटाक्ष करता है - उसके सम्बन्ध में गन्दी बाते करता हैं। इस प्रकार इस कहानी में पुरुष विहीन नारी की मानसिकता को प्रस्तुत कर ऐसे सम्पूर्ण वर्ग का चित्रण लेखक ने सुन्दरता से किया है।

यशपाल वैद की 'एक बदतमीज' कहानी की नीता और नीलम अकेलेपन का सामना करती दो आधुनिक पढ़ी -लिखी लड़कियां है जो अपनी पसन्दगी और तेज -तर्रार स्वभाव के कारण किसी युवक से सन्तुष्ट नहीं हैं और किसी को भी अपना जीवन साथी बनाने को तैयार नहीं हैं। पर पुरुष - साथी का अभाव दोनों के जीवन में तीव्रता से अनुभव होता है। नीता और नीलम आज की नारी के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं जो अनेकानेक कारणों से अपने यौवन के विकास काल में किसी उपयुक्त जीवन साथी का चयन नहीं कर पातीं और आजीवन कुमारी रह कर मन की भावनाओं, जीवन के उल्लास, दाम्पत्य सुख, सन्तान और परिवार के सुख से सदा सदा के लिए वंचित रह जाती हैं।

बलराम की कहानी 'अनचाहे - सफर' की बीनू सोचती है -'उम्र के चढ़ाव के साथ एक समय ऐसा भी आता है, जब पवित्र प्यार निरर्थक लगने लगता है। प्रियतम का शारीरिक संसर्ग न मिलने पर शरीर किसी भी विपरीत सेक्स से संसर्ग की कामना करने लगता है और मैं कुछ ऐसा ही महसूस कर रही हूँ।'[1]

'कदली के फूल' की नायिका कालिन्दी की पति से पहली रात में ही अनबन हो जाती है। कारण स्पष्ट हैं- उसकी व्यथा उसी के शब्दों में इस प्रकार है -

'मैं काठ- पत्थर की नहीं, जिन्दा लाश भी नहीं लेकिन तुम एक बलात्कारी जरूर हो। अन्धेरे कमरे में बाज की तरह झपटने के पहले कुछ तो पूछा होता - क्या मेरी इच्छा -अनिच्छा कुछ भी नहीं थी। तुमने मुझे सही - सही जानने की कोशिश ही कब की। तुम्हारे लिये मैं एक शरीर मात्र थी। मेरी आत्मा की एक भी पुकार सुनी तुमने ? कभी तुमने पीछे मुड़कर देखा, मुझपर क्या बीती ? मेरी आत्मा की रिक्तता का कोई अनुभव तुम्हें हुआ ?'[2]

१- कलम लिए हुये हाथ (कहानी संग्रह) - बलराम - पृ० -६
२- क्रौंच वध तथा अन्य कहानियां - ऋता शुक्ल - पृ० - ४२

'यारो के यार - तिन पहाड़' कृष्णा सोबती के कथा संग्रह की 'तिन पहाड़' एक प्रेम कहानी है। डा० राम प्रसाद के अनुसार -

'तिन पहाड़' एक प्रेम कहानी है जिसकी केन्द्रवती नायिका जया की पीड़ा भोग की नियति और आत्महत्या की स्थिति तो अपरिचित नहीं है परन्तु उसका मौन आत्मदाह बहुत मार्मिक है। दार्जिलिंग के नैसर्गिक प्राकृतिक परिवेश में उसका प्रेम उसके मुंह से कहीं उफ बन कर भी नहीं फूटता। उसके व्यवहार के माध्यम से स्थिति की गम्भीरता पाठक आंक लेते हैं। तपन को वह रास्ते में मिली और उसके साथ जिए गए क्षण में वह अपने आहत प्रेम को जैसे सम्हालती है वह उसके चरित्र की एक विशेषता है। एक निष्ठ प्रेम की यह सनातन आग कहानी को बहुत जीवन्त बनाती है। यह सही है कि आदर्श का मोह,समाज का भय और ईश्वर के प्रति निष्ठा इन सभी को भोगे जा रहे यथार्थ से कोई वास्ता आज नहीं है तथापि प्रेम का परम्परागत मूल्य अभी मद्धिम नहीं हुआ है।'[१]

निरूपमा सेवती के कहानी संग्रह 'खामोशी को पीते हुये' में आठ कहानियां संकलित हैं। इन सभी कहानियों में स्त्री - पुरुष में आए सम्बन्धों के बिखराव को दिखाया गया है।' आज उसके सम्बन्ध निरा भावात्मक नहीं रहे। त्याग एवं आदर्श की जगह ये सम्बन्ध ठोस आर्थिक धरातल पर आ टिके हैं। 'सुनहरे देवदार' की रश्मि किसी पुरुष से कम नहीं, उसे पति नहीं आर्थिक सहारा चाहिए। वह अभावों में नहीं जी सकती। इसी प्रकार 'टुच्चा', 'खामोशी को पीते हुए' आदि कहानी में भी आर्थिक मोर्चे पर लड़ती नारी की कहानी कही गई है।'[२]

मणिका मोहिनी के कथा संग्रह 'खत्म होने के बाद' की प्रायः सभी कहानियों में पति -पत्नी के सेक्स सम्बन्धों और उनकी विसंगतियों का चित्रण किया गया है।' नारी - पुरुष से इसलिए रूठती है कि पति वक्त - बेवक्त जरूरत महसूसने लगता है और दो - चार चुम्बनों की भूखी नारी को निराश कर देता है क्योंकि पत्नी के इर्द -गिर्द लपटने और पतित्व का निर्वाह करने वाली बांहों में वह गर्माहट कहां जिसकी खोज मणिका मोहिनी के हर नारी पात्र की अन्तिम परिणति है। एक ही बिस्तर पर अलग - अलग हो जाने का अभिशाप झेलती नारी इस संग्रह की कई कहानियों में दुहराई गई है। विवाहिताओं में भी दूसरे मर्द को शारीरिक रूप से भोगने की अतृप्ति है। 'तलाश' की ऋतु को एक मर्द की तलाश है और उसके माध्यम से तृप्ति की। वह बारह वर्षों से विवाहिता है और एक ६ वर्ष की लड़की की मां भी है। उसे अपनी ढलती उम्र का अहसास है, साथ ही अब कुछ कर लेने का भी। वह सिर्फ प्यार चाहती है क्योंकि विवाहित जीवन में उसे प्यार नहीं मिल सका था। वह समानान्तर रेखाओं की तरह न मिल पाये क्योंकि कोई झुकना नहीं चाहता। व्यक्तित्वों का हनन उसे अस्वीकार है। इस कहानी में अपने भविष्य का फैसला करती नारी के रूप में ऋतु का एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व उभरा है। 'पूरक' कहानी के माध्यम से यह जाना जा सकता है कि औरत और मर्द के रिश्तों की अन्तिम परिणति शारीरिक सुख है। प्यार का भूखा नरेन्द्र नारी को सिर्फ अपने लिए चाहता है। इसीलिए वह मोना को जहां हर तरह का सुख देता है वहीं बच्चा नहीं देना चाहता। प्रेमी की रंगीन दुनिया होती है जो पति होते ही घुटन और उपेक्षा से भर जाती है। जहां पति को बिस्तर पर लेटते ही नींद आ जाती है और मोना पत्नी बनकर नहीं, एक दोस्त बनकर जिन्दगी जीना चाहती है। अपने चुनाव के गलत निकलने पर 'एबार्शन' भी करा सकती है। पति -पत्नी के सम्बन्धों में आयी ठहराव की स्थिति का अंकन ही इस कहानी का कथ्य है जिसमें अमिताभ से मिलकर भी मोना दोस्ती की प्यास नहीं बुझा पाती।

'खत्म होने के बाद' की पत्नी को पुरुष की जबरदस्ती से और शरीर को सम्बन्धों को बीच ले आने की बात से बेहद चिढ़ है। इसलिए वह अपने पुराने मित्रों से दूरी बनाए रखने का प्रयत्न करती है और उसे अपने सुखी दाम्पत्य जीवन के बारे में बता कर मात करना चाहती है। मित्र की भी वही स्थिति है। परिणामतः 'खत्म होने के बाद' सम्बन्धों में आयी दरार को भरने के लिए समझौता करते नारी - पुरुष का सत्य अनकहा रह जाता है। उन्हें अपने भीतर ही भीतर न मालुम कितने समझौतों पर मौन हस्ताक्षर करने पड़ते हैं।'[३]

१- साठोत्तरी हिन्दी कहानी में पात्र - चरित्र चित्रण - डा० राम प्रसाद - पृ० ७६
२- वही - पृ० - ७७

राम कुमार 'भ्रमर' के कहानी संग्रह 'लौ पर रखी हथेली' में इसी शीर्षक की कथा की नायिका बेला का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। बेला विवाहिता युवती है किन्तु अपने पति की अपेक्षा अधिक कामवासना के कारण अपने पति के मित्र राजेश से विवाहेतर यौन सर्म्पक स्थापित कर लेती है। वह जानती है कि राजेश और उसके बीच के रिश्ते को उसका पति तथा समाज भी जान गया है किन्तु वह किसी की परवाह नहीं करती। किन्तु वही जब स्वयं उसके साथ पतित हुए राजेश से अपने विषय में कटाक्ष सुनती है तो उसका अहं आहत हो जाता है। उस अपमान बोध से उत्पन्न मानसिक तनाव एवं आक्रोश के कारण वह उस अवैध सम्बन्ध को न केवल एक झटके में तोड़ देती है बल्कि जलते स्टोव में अपने उन दोनों हाथों को भी जलाने लगती है जिन्होंने राजेश को अपने में समेटा था। यह सब वह अपने पति के समक्ष भी करती है। इसी प्रकार 'बर्फ में सुलगती आग' में विवाहिता युवती चन्दा का मानसिक द्वन्द्व उभर का आया है जो डाकू धीर सिंह द्वारा लगातार जबरन भोगी जाती रहने के कारण उससे गहरी घृणा करती है तथा साथ ही अपने पति जगन्नाथ से भी सख्त नफरत करती है कि जो अपनी बुजदिली के कारण यह सब होते देखता है और सहज भाव से ही ग्रहण करता है। वह इन दोनों से मुक्ति का स्वप्न देखती रहती है।

नारी अपने जीवन में स्वेच्छा से या जबरन इस प्रकार के अत्याचार सहन करती रहती है और छटपटाती रहती है। उसकी मार्मिक मन्त्रणा को न तो उसके निकटतम समझ पाते हैं और न समाज ही।

उर्मिला गोस्वामी का कथा संग्रह 'मुआवजा' उस मिथ्या आरोप को तोड़ता नजर आता है जो महिला लेखिकाओं पर लगाया जाता है कि वे अपने संकुचित अनुभव संसार में ही सीमित रहती हैं और उसका भी सही चित्रण नहीं करतीं। नारी को यौन सम्बन्धी कारण से भोगी जा रही यातनाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार की यन्त्रणाएं भोगनी पड़ती हैं। उर्मिला गोस्वामी ने उनका भी चित्रण किया है। गरीबी, अभाव, रूप रंग की कमी, विकलांगता, माता - पिता में से किसी का या दोनों का अभाव, पति का अभाव, सन्तानों का अभाव और इन सब की हर एक विकृति के लिए भी नारी को यन्त्रणा भोगनी पड़ती है।

दुर्गा हाकरे के प्रथम संग्रह 'विद्रोही कोपल' में संकलित सात कहानियों में से प्रत्येक में एक नयी समस्या को उठाया गया है। इनमें लेखिका की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, मनोवैज्ञानिक चित्रण क्षमता, सामाजिक तनाव और मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों का सहज -स्वाभाविक चित्रण किया गया है। पारिवारिक विघटन, पिता की पुत्रियों के प्रति कर्तव्य विमुखता और पुत्रियों की कोमल मार्मिक भावनाओं का प्रभाव पूर्ण चित्रण किया गया है। पिता पर जो कन्याएँ बोझ नहीं बनतीं वे भी किस प्रकार अपने दाम्पत्य जीवन से वंचित रह जाती हैं इसका चित्रण भी इनमें किया गया है। अर्जनशीला नारी को पिता की गृहस्थी चलाने हेतु अपनी गृहस्थी बसाने को नहीं मिलती। कहीं पति उसे अपनी नौकरी बचाने के लिए प्रयोग करना चाहता है और ऊपर से उसे लांक्षित भी करता चलता है।

'मूल्यांकन' में नायिका अपने सुखी दाम्पत्य को न बिखरने देने के लिए पति उसे अपनी नौकरी वापस पाने के लिए साधन के रूप में प्रयोग करना चाहता है और इन परिस्थितियों में उससे संत्रस्त होकर नफरत करने लगता है। पति को सहारा देने गयी पत्नी के सहारे - सद्भावनाओं का मूल्यांकन वह संताप और नफरत के रूप में करता है। पत्नी यहां यह सोचने पर विवश है कि नारी से अपना इच्छित काम करवा कर नारी को लांछित करने वाले पुरुष को क्या पुरुष कहा जाना चाहिए।"

शशि प्रभा शास्त्री के कहानी संग्रह 'अनुत्तरित' में तो मनीषा अपने पति से इस बात से असन्तुष्ट है कि पति बच्चों को आर्य समाजी ढांचे में ढालने के लिए उतना उत्सुक नहीं है जितना वह स्वयं है। 'ग्रोथ' कहानी की उमादेवी अपने पति

१- साठोत्तरी हिन्दी कहानी में पात्र और चरित्र -चित्रण - डा० राम प्रसाद पृ० - ८१
२- वही पृष्ठ - ७७-७८

से इस हद तक घृणा करने लगती है कि वह चाहती है कि उसका पति जितने अधिक समय तक अस्पताल में पड़ा रहे उतना ही अच्छा है।

नारियों में पति, पिता, पुत्र -पुत्री आदि से विभिन्न कारणों से असन्तोष पनपता है। वैवाहिक जीवन न मिलने के कारण या असन्तोषपूर्ण वैवाहिक जीवन के कारण वे परपुरुषों की ओर आकर्षित होती हैं। इस आकर्षण के विविध रूप और सीमाएं हैं। शशि प्रभा शास्त्री ने इस प्रकार की विविध स्थितियों का चित्रांकन सफलता पूर्वक किया है।

'रंजना' शीर्षक कहानी की नायिका रंजना अपने पति शेखर की भौतिक उपलब्धियों की प्राप्ति में सहायक तो बनती है किन्तु अपने नारीत्व की मार्यादा पर ही संकट उपस्थित होते देख बड़े ही आत्मविश्वास के साथ अपनी नौकरी से ही त्याग पत्र दे देती है।

ममता कालिया के कथा संग्रह 'प्रतिदिन' में 'एक जी-नियस प्रेमकथा' में पुरुष का निरंकुश एकाधिकार चित्रित किया गया है जो आधुनिक युग में भी किसी प्रकार कम नही हुआ है। पति द्वारा बार- बार अपमानित किए जाने से उसका मन छलनी होता रहता है। पर जहां नारी समानाधिकार की समझ है वहां एक तरफा प्रहार नहीं हो पाता।

किन्तु नारी को केवल पुरुष वर्ग से ही यातना या यन्त्रणा नहीं सहन करनी पड़ती नारी वर्ग भी उसे उतना ही प्रताड़ित एवं पीड़ित करता है। वह चाहे सास हो, ननद हो, भौजाई हो या पति की प्रेयसी ही हो। वह पति की रखेल की भी सेवा - सुश्रुषा करते मिलती है या उसका बोझ सहन करती है।

सुरेश सेठ की कहानी 'कैंसर' की कामकाजी नायिका निम्मी धोखा देने वाले प्रेमी की गिड़गिड़ाहट से प्रभावित नहीं होती और उसे कड़वे उत्तर देती है। पितृ विहीन यह लड़की अपनी मां और भाई का खर्च चला रही है।

इस प्रकार नारी अपने पारिवारिक जीवन के हर क्षेत्र में संघर्ष करते मिलती है। कहीं उसे पराजय का मुख देखना पड़ता है, कहीं असहयोग का। किन्तु वह निराश नहीं है। उसमें सामाजिक चेतना अपने विकसित रूप में मिलती है। इसलिए उसका भविष्य भी अधिक समय तक अन्धकार में नहीं रखा जा सकता।

अष्टम अध्याय

(अ) आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना के वास्तविक स्वरूप की विवेचना

(ब) अद्यतन हिन्दी कहानियों में आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना के वास्तविक स्वरूप की विवेचना

स्त्री - पुरुष के प्रेम सम्बन्धों में बदलाव
काम सम्बन्धों में तीसरे के कारण द्वन्द्व एवं तनाव
शरीर सम्बन्ध से मन सम्बन्ध की महत्ता
उन्मुक्त यौनाचार का नग्न चित्रण
आर्थिक पहलू के कारण उत्पन्न होती विषम परिस्थितियाँ
नारी की सामाजिक चेतना का प्रामाणिक चित्रण नारी द्वारा

अध्याय - आठ

(अ) आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना के वास्तविक स्वरूप की विवेचना :-

स्वतन्त्रता के दो दशक बाद देश में जो युवा पीढ़ी शिक्षित और जागरूक होकर अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट हुई उसमें आधुनिक नारी का अनुपात कम नहीं था। विभिन्न शिक्षण संस्थाओं से समाज के विभिन्न क्षेत्रों के लिए उपयोगी एवं आवश्यक शिक्षा ग्रहण कर आधुनिक नारी पुरुषों से कन्धे से कन्धा मिलाकर जीवन संघर्ष में उतरने को आतुर हो रही थी और अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों के लिए जागरूक हो रही थी। लगभग उसी समय भारत में राजनीति के सर्वोच्च शिखर पर श्रीमती इन्दिरा गान्धी प्रधान मन्त्री के रूप में आयीं। विज्ञान आदि के क्षेत्र में तो नारियां पहले से ही आगे बढ़ रही थीं। सन् १६७५ तक स्थिति यहां तक पहुँची कि 'विज्ञान प्रगति' जैसी शासकीय स्तर की पत्रिका ने 'विज्ञान जगत में महिला' विशेषांक प्रकाशित किया और विज्ञान ही नहीं, अन्य क्षेत्रों में भी नारियों की प्रगति का विवरण प्रस्तुत किया जिसका उल्लेख पूर्ववर्ती अध्यायों में यथास्थान किया जा चुका है।

साहित्य के क्षेत्र में भी नारियों की प्रगति उल्लेखनीय हो गयी क्योंकि इससे पूर्ववर्ती साहित्यिक युगों में साहित्य क्षेत्र में नारियों का योगदान बहुत सीमित था। एकाध उल्लेखनीय महिला साहित्यकारों से अधिक को इन युगों में खोज पाना भी दुष्कर था। परन्तु आधुनिक युग में यह स्थिति तेजी से बदली। कहानी के क्षेत्र में भी जहां उंगलियों में गिनी जा सकने योग्य महिला कथाकार नहीं थीं वहीं साठोत्तरी काल में उनकी संख्या शताधिक हो गयी। इतना हीं नहीं उन्होंने सशक्त और सजीव रचनाएं प्रस्तुत कीं। उनमें सपाट बयानी और निर्भीकता जैसे गुण भी स्पष्ट रूप से उभरे। अब तक नारी -मन का तथा नारी की समाज में स्थिति तथा शोषण का जो चित्र प्रयास कर भी पुरुष कथाकार चित्रित नहीं कर पा रहे थे वह नारी ने स्वयं करना प्रारम्भ कर दिया। यह सब नारी की सामाजिक चेतना के कारण ही सम्भव हो सका। सम्मान और समानता उपलब्ध कराने के नाम पर नारी का जो शोषण हो रहा था उसका भी खुलकर चित्रण करना नारी ने प्रारम्भ किया जिसको आगे की गई नारी कहानीकारों की विवेचना से समझा जा सकता है। इसका एक जो बहुत ही महत्वपूर्ण परिणाम सामने आया वह यह था कि पुरुष वर्ग में यह भय का भाव व्याप्त हो गया कि अब बहुत समय तक नारी को छल-कपट, झूठ -फरेब, प्रलोभन एवं आकर्षण के बल पर बरगलाया नहीं जा सकेगा। अब तो नारी ने अपने ऊपर अत्याचार करने वाले पुरुषों का खुले आम मुकाबला करने के लिए जूडो - कराटे तक सीखना प्रारम्भ कर दिया। नारी अब निरीह नहीं रही। यह सब नारी की सामाजिक चेतना के कारण ही सम्भव हो सका।

नारी अब कुमारी के रूप में, विवाहिता के रूप में और विधवा रूप में भी अपनी स्वतन्त्र स्थिति, समानता और सम्मान का आग्रह करती है। इतना ही नहीं, अब वह पति -चयन में, पति के साथ जीवन यापन करने में तथा पति के दिवंगत होने पर भी अपनी इच्छाओं, कामनाओं और वासनाओं की पूर्ति में पुरुषों से पीछे नहीं रह गयी है। इसका खुला तथा बेबाक चित्रण पुरुष कहानीकारों में ही नहीं, नारी कहानीकारों में भी पूरी तरह उपलब्ध है। नारी अब पुरुषों के एक -तरफा उन्मुक्त एवं स्वच्छन्द आचरण को सहन नहीं करना चाहती और स्वयं भी उन्मुक्त और स्वच्छन्द आचरण करने का अधिकार छीनने के लिए उद्यत प्रतीत होती है। नारी की सामाजिक चेतना के इससे अधिक सबल सबूत की आवश्यकता नहीं समझी जानी चाहिए। आगे नारी की इसी सामाजिक चेतना का हिन्दी कहानीकारों की कहानियों में निरूपण किया गया है। इसमें नारी कहानीकार किसी भी प्रकार पीछे नहीं हैं इसे भी भली भांति देखा जा सकता है।

(ब) अद्यतन हिन्दी कहानियों में आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना के वास्तविक स्वरूप की विवेचना :-

आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना का जो स्वरूप आधुनिकतम हिन्दी कहानियों में उपलब्ध होता है वह सहसा ही उसमें नहीं आ गया बल्कि उसका क्रमिक विकास हुआ है। यह बात आधुनिक हिन्दी कहानियों के इतिहास पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाती है। यहाँ उसी पर विहंगम दृष्टि डाली जा रही है जिससे कि यह स्पष्ट हो सके कि आज जिस मंजिल पर आधुनिक नारी पहुँच चुकी है उसके लिए केवल वह स्वयं जिम्मेदार नहीं है बल्कि उस पर सदियों से अत्याचार करता चला आ रहा पुरुष वर्ग भी जिम्मेदार है।

सर्वप्रथम आधुनिक सामाजिक चेतना की लहर और उसके कारण उत्पन्न परिस्थितियों पर कतिपय आलोचकों के दृष्टिकोण पर दृष्टिपात करें। राजेन्द्र अवस्थी ने आज की सामाजिकता के प्रति अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं :-

'हमारी आज की जो सामाजिकता है उस सामाजिकता में न जाने कितने समझौतों के साथ हमें रहना पड़ता है।'[१]

वे आगे लिखते हैं -

'जब तक लेखक में सामाजिक चेतना नहीं होगी, सामाजिक सत्य नहीं होगा, सामाजिक विचार उसमें पराभूत नहीं होगा, तब तक वह सामाजिक व्यक्ति नहीं होगा। उसका साहित्य समाज का साहित्य नहीं बन सकता।'[२]

वस्तुतः नारी के मुक्त होते ही सारे पारस्परिक आचार - विचारों की नींव हिल जाती है चूँकि वे सब नारी पर ही टिके हैं। स्वाभाविक ही कुछ प्रश्न उठते हैं नारी के अधिकार के, घर में नारी के स्थान के, विवाह की मर्यादा और गृहस्थ धर्म के। स्त्री -पुरुष के नए सामाजिक यौन सम्बन्धों को मार्क्सवादी विचारधारा और फ्रायडीय गवेषण ने दुधारा वना दिया। सतीत्व और सच्चरित्रता जो हमेशा से धर्म माने जाते रहे हैं, पाप - पुण्य, प्रेम - विवाह, सारे प्रश्न बद्ध मूल संस्कारों से और विज्ञान बुद्धि में टक्कर मच जाती है और जीवन की नीवें हिल जाती हैं।'[३]

आज की स्वच्छन्दता और उन्मुक्तता के वातावरण के कारण 'अब पुरुष को कोई भी नारी की जरूरत नहीं, न स्त्री को भी पुरुष की बल्कि जो उसके व्यक्तित्व की अपूर्णता को भर सके, वही लक्ष्य है।'[४]

उनके अनुसार - 'मोहन राकेश' के 'अन्धेरे बन्द कमरे' में आधुनिक नगरीय मानसिकता का सही आकलन हुआ है। 'शक्ति सम्पन्न पुरुष दिल्ली की अट्टालिकाओं में अजगर की भांति बैठे हैं और वर्तमान सुख - सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए सचेष्ट नारी सांस्कृतिक कार्यक्रमों के नाम पर अपने आप उन नरभक्षी अजगरों के पास पहुंच कर अपना सतीत्व नष्ट कर रही है।'[५]

वे आगे लिखते हैं -

१- राजेन्द्र अवस्थी का कथा संग्रह - डा० सविता सौरभ - में साक्षात्कार में राजेन्द्र अवस्थी का अभिमत - पृ० - २६
२- वही - पृ० - ३२
३- वही - पृ० - ४५
४- वही - पृ० - ४६
५- वही - पृ० - ४७

'नई कहानी में मूल्यगत विघटन को पारिवारिक सम्बन्ध के स्तर पर व्यक्त किया गया है। परम्परागत सम्बन्धों पर एक प्रश्न चिन्ह लगा। नये कोण से देखने - समझने और अभिव्यक्त करने की कोशिश की नये कहानीकारों ने। 'यही सच है' (मन्नू भण्डारी) 'भविष्य के पास मँडराता अतीत' (राजेन्द्र यादव) और 'मलवे का मालिक' (मोहन राकेश) 'चीफ की दावत' (भीष्म साहनी) 'खोई हुई दिशाएं' (कमलेश्वर) आदि कहानियां बदले हुए सम्बन्धों के जटिल और सूक्ष्म रूपों को चित्रित करती हैं।'[१]

इसलिए उनका यह निष्कर्ष उचित प्रतीत होता है कि - युवा कथाकारों की कहानियाँ हमें रिझाती नहीं बल्कि स्तब्ध ा कर देती हैं। एक भयंकर सच्चाई से हमारा साक्षात्कार कराती हैं और हम सिहर उठते हैं। कहानी में जो जड़ता और ठहराव व्याप्त हो गई थी उसे निर्ममता से इधर की कहानी ने तोड़ा है। ये कहानियां व्यक्तिगत अनुभवों के अतिक्रमण की कहानियां हैं। मणिमधुकर की 'एक वचन- बहुवचन,' जितेन्द्र भाटिया की 'एक आदमी का शहर', मधुकर सिंह की 'पूरा सन्नाटा' सतीश जमाली का 'अर्थतन्त्र' अपने समय की जड़ता को तोड़ती हुई कहानी को नये ढंग से परिभाषित करती है। इधर की कहानियों में सामाजिक चेतना प्रखरतम रूप में दिखाई देती है। समकालीन आदमी का वास्तविक चेहरा बिना किसी मुखौटे के इनके बीच देखा जा सकता है।'[२]

<u>स्त्री पुरुष प्रेम सम्बन्धों में बदलाव :-</u>

'बदलते परिवेश' भौतिक एवं मशीनीकरण के कारण प्रेम सम्बन्ध में बदलाव आया है। पहले पुरूष पर नारी निर्भर करती थी पर अब नारी पर पुरूष निर्भर है, ऐसे लाखों उदाहरण हैं। ऐसी स्थिति में नारी का 'स्व' उभरकर आया है। पुरुष के स्वाभिमान को चोट पहुँची है। पति - पत्नी के दाम्पत्य जीवन में बिखराव आया है। सुधा अरोड़ा की लगभग सभी कहानियां युवतियों के एक खास वर्ग की झूठी प्रगतिशीलता का प्रतिनिधित्व करती है। अब प्रेम मात्र एक सौन्दर्य और भावुकता के तहत स्थापित नहीं होते। 'नारी' और 'पुरुष' दोनों प्रेम करने के पूर्व या एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होने के पूर्व अपने जीवन के महती उददेश्यों के सन्दर्भ में एक दूसरे को सोचनें लगे हैं। बदले प्रेम सम्बन्धों का चित्रण करने वाली कहानियां - सुरेश सिन्हा 'सोलहवें साल की बधाई', निर्मल वर्मा 'लवर्ज', मोहन राकेश 'वासना की छाया', नरेश मेहता 'वर्षा भीगी', सुधा अरोड़ा 'एक सेन्टीमेण्टल डायरी की मौत' मन्नू भण्डारी 'यही सच है', 'चश्में', 'नशा', और 'तीसरा आदमी', कृष्णा सोबती ' बादलों के घेरे', रेणु 'तीसरी कसम' 'तीन बिंदिया' और 'अच्छे आदमी', शेखर जोशी 'कोसी का घटवार', कमलेश्वर 'राजा निरवंसिया' 'नीली झील' 'जो लिखा नहीं जाता', राजेन्द्र यादव 'एक कमजोर लड़की की कहानी' 'छोटे ताज महल का टूटना', भारती 'सावित्री नंबर दो', महेन्द्र भल्ला 'एक पति के नोट्स', कृष्ण सोबती 'डार से बिछुड़ी', दूधनाथ सिंह 'बिस्तर', मार्कण्डेय 'पक्षाघात'।[३]

नई कहानी में सेक्स का चित्रण अपनी सीमाओं का अतिक्रमण कर गया है। स्त्री -पुरुष के सेक्स सम्बन्धों, तनाव की कटुता, मानसिक असन्तोष आदि को लेकर अनेक कहानियां लिखी गई हैं। इनका सूत्रपात तो जैनेन्द्र और अज्ञेय की कहानियों में ही हो गया था। सन् १९५० के बाद के कहानीकारों में राजेन्द्र यादव की 'जहां लक्ष्मी कैद है', मोहन राकेश की 'मिस पाल', नरेश मेहता की 'चान्दनी', अमरकान्त की 'एक असमर्थ हिलता हाथ', निर्मल वर्मा का 'लवर्ज' आदि कहानियां उसी परम्परा में लिखी गई हैं। इसके बाद तो सेक्स प्रधान कहानियों का दौर ही आ गया और यह आभास होने लगा कि नई कहानी में उन्मुक्त सेक्स चित्रण एक अनिवार्य तत्व सा बन गया है। इनमें काम सम्बन्ध के विभिन्न आयामों को उद्घाटित किया गया है। नारी शरीर का नग्न चित्रण, कामोत्तेजक प्रसंगो का विस्तृत वर्णन, भोगेच्छा की प्रबलता, उच्छृंखल यौनाचार का खुला एवं नग्न प्रदर्शन मिलता है।

राजेन्द्र यादव की 'प्रतीक्षा', मार्कण्डेय की 'माई', श्री कान्त वर्मा का 'जख्म', 'शवयात्रा', 'टार्सो, निर्मल वर्मा 'अन्तर', गिरिराज किशोर 'रिश्ता', महेन्द्र भल्ला 'दीक्षा, गंगा प्रसाद 'विमल' 'अपना मरना', नरेन्द्र कोहली 'सार्थकता', कमलेश्वर

१- राजेन्द्र अवस्थी का कथा संग्रह - डा० सविता सौरभ - मे० साक्षात्कार में राजेन्द्र अवस्थी का अभिमत - पृ० - ४८

२- वही - पृ० - ५०

३- वही - पृ० - ६० - ६१

'मांस का दरिया' और 'एक अश्लील कहानी' आदि ऐसी ही नई कहानियां हैं।

समाज व्यवस्था में परिवर्तन के मुख्य कारण - आधुनिक चिन्तन, तकनीकी उन्नति, शिक्षा, समानता एवं स्वतन्त्रता का प्रसार, नगरीकरण, आधुनिकीकरण के साथ - साथ बेकारी, खासकर शिक्षित बेरोजगारी जनसंख्या विस्फोट आदि भी है। इसके कारण संयुक्त परिवार का विघटन, पति -पत्नी के सम्बन्धों में आमूल चूल परिवर्तन आदि दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

राजेन्द्र अवस्थी के 'सौदा' की बन्नो तो नपुंसक पति पाने के बाद इस बात का निर्णय राजू पर छोड़ देती है कि उसे अपनी देह वृद्ध श्वसुर को देनी चाहिए या राजू को।

आधुनिक पुरुष दोहरे मानदण्ड अपनाता मिलता है। वह महिला मित्र को तो उन्मुक्त एवं स्वच्छन्द चाहता है किन्तु अपने घर की महिला सदस्यों को वही छूट नहीं देना चाहता। इसे परम्परा और आधुनिकता का संघर्ष माना जाता है किन्तु यह बात नहीं है। परम्परा का मोह या बन्धन न भी हो तो भी क्या आधुनिक शिक्षित एवं विवेकशील पुरुष अपने परिवार की महिलाओं को उसी प्रकार उन्मुक्त यौनाचार करने की छूट देगा जैसी कि वह समाज में पाना चाहता है या पाने पर उसका प्रतिरोध नहीं करता, उसे पसन्द ही करता है।

परन्तु यह कोई भारतीय परिवेश या अन्य किसी सामाजिक परिवेश के लिए नयी बात नहीं है। अमेरिका में भी जब अल्फ्रेड किन्से आदि ने नवयुवको और नवयुवतियों का साक्षात्कार कर उनकी काम विषयक भावनाओं को जानना चाहा तो उन्होंने उनमें यह विरोधाभास पाया था। वे नवयुवक विवाह पूर्व अविवाहित नवयुवतियों से मैथुन करते थे या करने के इच्छुक थे या वैसा करना बुरा नहीं मानते थे किन्तु वे ही नवयुवक अपने लिए विवाह में अक्षतयोनि नवयुवती चाहते थे।'[१]

यह विचारधारा भी बहुत भ्रामक है कि नारी और पुरुषो के सम्बन्धो के लेकर पैदा होने वाले लगभग पंचानवे प्रतिशत समस्याएँ शुद्ध आर्थिक है।'[२]

वस्तुतः नारी भी उन सभी अधिकारों को भोग लेना चाहती है जो अब तक पुरुष वर्ग भोगता आ रहा है। वह भी पुनर्विवाह, तलाक, विधवा विवाह, विवाहेतर सम्बन्ध, विवाहपूर्व सम्बन्ध आदि का खुल कर उपभोग करना चाहती है। यहां तक कि वह अविवाहित रहने का भी संकल्प लेती मिलती है।

नागार्जुन के 'वरुण के बेटे' उपन्यास की माधुरी अपने कुकर्मी और नशेबाज ससुर से तंग आकर निश्चय करती है - 'अब वह कभी इस नशाखोर बुड्ढे की लात -बात बर्दाश्त करने नहीं जाएगी ----------फिर से शादी कर लेगी किसी दिलेर नेक चलन और मेहनतकश जवान से -------- और बगैर मर्द के कोई औरत अकेली जिन्दगी नहीं गुजार सकती है क्या?'

एक अन्य लेखक डा० भेरू लाल गर्ग ने लिखा है - 'स्वातन्त्र्योत्तर कहानीकार आध्यात्मिक मूल्यों में आस्था नहीं रखता। वह नवीन नैतिक मूल्यों के अन्वेषण में लगा हुआ है और प्राचीन आचरण सम्बन्धी मूल्यों का विघटन कर रहा है। आर्थिक संघर्ष और शिक्षा ही इस चेतना का मूल कारण है। नारी साहचर्य की कामना और तत्सम्बन्धी असन्तोष भी इसका कारण रहा है। विवाह, शील, प्रेम, त्याग, नैतिकता, दया, उदारता, सत्य आदि मूल्य स्वतन्त्रता से पूर्व ही रूढ़ि बन गए थे। आज का कहानीकार इन सब मूल्यों के अर्थ बदलना चाहता है। माता -पिता की सेवा का अब कोई अर्थ नहीं रह गया है सेवा एवं वृद्धावस्था में सुख की कामना वाले पिता की वापसी ('वापसी - उषा प्रियंबदा) हो जाती है। आज का युवक स्वातन्त्र्य

१- सेक्सुअल विहैवियर इन ह्यूमर मेल - अल्फ्रेड किन्से की रिपोर्ट।

२- राजेन्द्र अवस्थी का कथा संसार - डा० सविता सौरभ - पृ० - ६८

चाहता है, उसे विवाह के सम्बन्ध में जातिगत बन्धन स्वीकार नहीं है। विवाह अदालत में हो जाता है और प्रेम विवाह का विरोध करने वाला पिता भी स्वयं ही बिरादरी - बाहर ('बिरादरी बाहर' -राजेन्द्र यादव) हो जाता है। ये ही नवीन स्थितियां हैं। अब समाज 'लव मैरेज' का विरोध नहीं करता। पतिव्रत धर्म का पालन अब कोई महत्व नहीं रखता ('राजा निरबंसिया - कमलेश्वर)'[1] डा० रमेश चन्द्र लवानिया के अनुसार ' प्रेम सम्बन्धी जितनी कहानियां इस युग में अब तक लिखी जा चुकी हैं, उतनी शायद ही किसी युग में लिखी जा सकें। त्याग, उदारता एवं दया सम्बन्धी 'नार्म' मद्धिम पड़कर समाप्त हो गए हैं।'[2] उन्होंने आधुनिक कहानी के नये आयामों को निम्न रूप में परिगणित किया है - 'टूटते हुए पारिवारिक सम्बन्ध, बनते हुए नवीन सम्बन्ध, नारी का आर्थिक संघर्ष, नारी का प्राचीन भाव भूमि से निकलकर नवीन भावभूमि में प्रवेश, बदलता हुआ परिवेश, मानव के अस्तित्व का प्रश्न, प्रेम और यौन सम्बन्धों की समस्याएं एवं मनुष्य का टूटता हुआ व्यक्तित्व आदि।'[3]

राजेन्द्र यादव की कहानी 'अंगारों का खेल' की नायिका को हम यह कहते हुए पाते हैं- 'जब हम अपने विषय में सोचने - विचारने में स्वतन्त्र नहीं हैं, तो स्वतन्त्र हैं किस बात में?' वहीं उनकी दूसरी कहानी 'रहस्यमयी' में एक पात्र कहता है - रूढ़ियां - जो हमारा मार्ग रोके हैं, अवश्य इस योग्य हैं कि हम विद्रोही बन कर उनकी उपेक्षा करें - उन्हें तोड़ दें, पर स्वच्छंदता का पर्याय रंगरेली तो नहीं है।' मार्कण्डेय की कहानी 'मन का मोड़' का एक पात्र कहता है - 'हमेशा ऐसा ही रहेगा वह, जिसे अपने हक का ध्यान नहीं, वह क्या कर सकता है दुनिया में।'

उनके अनुसार परिवार के परम्परागत स्वरूप को तोड़ने वाला प्रमुख कारण स्त्री स्वतन्त्रता रहा है।'[4] यही विचार डा० सन्त बख्श सिंह का भी है। वे लिखते हैं - 'स्त्री स्वतन्त्रता के इस स्वरूप ने संयुक्त परिवार की परम्परागत भारतीय मान्यता को तोड़ा और धीरे - धीरे पश्चिमी देशों की भांति भारतवर्ष में भी संयुक्त परिवार समाप्त हुए और उनके स्थान पर परिवारों का स्वरूप व्यक्तिगत रूचियों के आधार पर निर्मित होने लगा।'[5]

आधुनिक युग में भारतीय नारी की सामाजिक चेतना में जो बदलाव या परिवर्तन प्रमुख रूप से उभरा है उसकी ओर इंगित करते हुए डा० सन्त बख्श सिंह ने लिखा है -

'एक कमजोर लड़की' ऐसी ही माता - पिता, परिवार और अन्त में पति के संस्कारों से दबी एक कमजोर लड़की की कहानी है जो अपने प्रेमी के साथ सो सकने का साहस नहीं कर सकती।

महीप सिंह की 'कील' कहानी में भी नारी की इसी मुक्ति की छटपटाहट देखी जा सकती है। मोहन राकेश की कहानी 'फौलाद का आकाश' में मन पसन्द सम्बन्ध न मिल पाने के कारण होने वाली नारी की व्यथाओं का चित्रण किया गया है। गृहस्थी के पिंजड़े में फंसी, पति की खुशी में अपनी खुशी, पति के दुख में दुखी होने और उसकी हां में हां मिलने को विवश नारी की दुखद स्थिति का चित्रण रामकुमार की 'समुद्र' कहानी में किया गया है। पूर्वाग्रह के शिकार पुरुष द्वारा स्त्री को अपने अनुसार चलाने का दुराग्रह स्त्री - पुरुष के बीच किस प्रकार की विसंगतियों को जन्म देता है इसका चित्रण सुधा अरोड़ा ('बगैर तराशे हुए')में देखा जा सकता है। मन्नू भण्डारी की कहानी 'यही सच है' आधुनिक नारी के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करती है।

१- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन - डा० भैरू लाल गर्ग - पृ० ५६
२- हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - डा० रमेश चन्द्र लवानिया - पृ० १६७
३- वही - पृ० - १६७ -१६८
४- वही - पृ० - ७७
५- नयी कहानी : कथ्य और शिल्प : डा० सन्त बख्श सिंह

आधुनिक कहानी व्यक्ति और समाज दोनों को लेकर चलती है। एक को लेकर और दूसरे का अपलाप कर कहीं नहीं पहुंचा जा सकता - वह तो भंवर के चक्कर में फंसने और स्वयं अपना विनाश कर लेने से अधिक कुछ नहीं है। किन्तु आधुनिक कहानी जब व्यक्ति और समाज दोनों को लेकर चलती है तब वह दोनों में ही हो रहे परिवर्तन का भी चित्रण करना चाहती है। आधुनिक मानव की दृष्टि से पारम्परिक रीति रिवाज, मान्यताएं आदि सभी निरर्थक हैं। परम्परागत मूल्यों का काई महत्व नहीं रह गया है। डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के अनुसार 'युवा पीढ़ी के सामने वर्तमान समाज मुलजिम के रूप में है। उसने उसकी दी हुई व्यवस्थाओं, पद्धतियों, रिवाजों, सुख - सुविधाओं, अवकाश के क्षणों और समृद्धि को कठघरे में लाकर खड़ा कर दिया है। वह परम्परागगत जीवन पद्धति की परीक्षा ले रही है और सभ्यता के उत्स में जहाँ गलती हुई है उसे पहचानने की कोशिश कर रही है। 'क्रान्तियों' को विफल हुआ देख अब वह 'परिवर्तन' (त्वरित गति से) चाहती है और अस्तित्व के नये प्रतिमान खोज रही है।'[१]

वस्तुतः आधुनिक तर्क संगत एवं वैज्ञानिक चिन्तन के फलस्वरूप भौतिक प्रगति तेजी से हो रही है और उसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति का चिन्तन एवं जीवन - दर्शन भी प्रभावित एवं परिवर्तित हो रहा है। इसके कारण व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति एवं व्यक्ति का समाज के प्रति दृष्टिकोण लगातार बदलता चल रहा है। इसीलिए उसकी सामाजिक चेतना में भी बदलाव स्वाभाविक है। आधुनिक युग में विशेषकर भारतीय परिवेश में परिवर्तन लाने का श्रेय पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान - विज्ञान और तत्परिणामी मशीनीकरण, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण आदि तत्वों को है। इसने भारतीय रीति - रिवाजों, परम्पराओं, रहन - सहन, वेश-भूषा को ही नहीं बदला, विचारो को भी परिवर्तित कर दिया। वर्ण - व्यवस्था, जाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार, कर्मकाण्ड आदि को भी कष्ट साध्य या विकृत या व्यर्थ बना दिया। समाजिक चिन्तन एवं जीवन मूल्यों में प्रवेश कर रहे नये - नये विकल्प अपने चयन के लिए मानव - मन को उद्वेलित करने लगे। 'वस्तुतः ज्यों ज्यों व्यक्ति की मौलिक चिन्तन शक्ति का विकास होता जाता है, वह परम्परा से चले आ रहे जड़ मूल्यों को छोड़ता जाता है और उनके स्थान पर नवीन मूल्यों का निर्माण करता है। आधुनिक युग में विज्ञान के विकास के फलस्वरूप मनुष्य में तार्किक बुद्धि का उदय हुआ और उसने परम्परागत जीवन मूल्यों का अन्धानुकरण करने के स्थान पर उन्हें तर्क की कसौटी पर कसना आरम्भ किया। इस तार्किक दृष्टिकोण ने अनेक परम्परागत मूल्यों के सम्मुख एक प्रश्न चिन्ह लगा दिया।'[२]

डा० बच्चन सिंह की तो यह स्पष्ट धारणा है कि 'मनुष्य को और भी अधिक सुखी, प्रसन्न बनाने की दृष्टि से बुद्धिजीवी वर्ग का कर्तव्य होता है कि वह नये यथार्थ को पहचाने और नये मूल्यों के आधार पर उसके परिवर्तन में योग दे।'[३]

निष्कर्षतः छठवें दशक के बाद की कहानी जीवन मूल्यों की कहानी है ------------ उसमें शाश्वत मूल्यों की जगह मानवीय मूल्यों की ही चर्चा अधिक मिलती है। डा० रमेशचन्द्र लवानिया के अनुसार 'यह नवीन मूल्य प्राचीन नैतिक मूल्यों का विरोध बन कर आया है। विवाह की स्वतन्त्रता, प्रेम की स्वतन्त्रता, कार्य की स्वतन्त्रता और सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास की स्वतन्त्रता, ही व्यक्ति स्वातन्त्र्य है। न स्वयं बद्ध होने की आकांक्षा है और न दूसरे को बद्ध करने की। यही न्याय है, यही मानव समानता है।'[४]

परिणाम स्वरूप साठोत्तरी कहानियों में कहानीकारों ने पुराने मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन, उनके विघटन का चित्रण बौद्धिक तथा भावात्मक दोनों ही स्तरों पर किया है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसमें पीड़ा का स्वर मिलेगा, परिवर्तन का पोषक स्वर मिलेगा, विघटन के समर्थन का स्वर मिलेगा और विद्रोह का स्वर भी मिलेगा किन्तु परम्परा का पोषक या परम्परा में सुधार का समर्थन नहीं मिलेगा। इसका सबसे गहरा प्रभाव पारिवारिक जीवन पर पड़ना स्वाभाविक है और परिवार में भी नारियों पर।

१- द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य - डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - पृ० ५४
२- हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा - सम्पादक - राम दरश मिश्र, नरेन्द्र मोहन
३- समकालीन साहित्य : आलोचना की चुनौती, नया यथार्थ : नया मूल्यबोध - डा० बच्चन सिंह - पृ० १२६
४- हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य : डा० रमेश चन्द्र लवनिया

स्त्री पुरुष के शिक्षा के नाम पर, समाज में साथ-साथ निकलने,घूमने,मिलने,जुलने, नौकरी आदि करने के कारण उनके बीच नये - नये सम्बन्ध बन जाने की सम्भावनाएं बढ़ीं। उनके बीच चाहे-अनचाहे विवाह पूर्व एवं विवाहेतर सम्बन्ध बन जाने की भी सम्भावनायें बढ़ी। इससे अब केवल पुरुष की ही नहीं नारी की भी दोहरी भूमिका की स्थिति उभरी। ऐसा नहीं है कि पहले केवल पुरुष पति या उपपति के रूप में समाज में उपलब्ध होता था, यदि पति उपपति के रूप में था तो यह स्थिति तभी सम्भव थी जब उसे कोई उपपत्नी उपलब्ध हो। वस्तुतः इन दोनों की उपलब्धता पहले बहुत कम थी - अनेक कारणों से। उन कारणों के विस्तार में जानें का यहाँ अवकाश नहीं है। अब दोनों के लिए यह स्थिति बहुत सामान्य बनती जा रही है। पहले केवल पुरुष अभियोक्ता होता था अब नारी भी अभियोक्ता बन रही है। वह जान बूझकर भी प्रेमिका बन रही है - विवाह के पूर्व भी और विवाह के बाद भी। अविवाहित व्यक्ति से भी और विवाहित व्यक्ति से भी वह विवाह पूर्व या विवाहोत्तर सम्बन्ध स्थापित करती मिलती है। पहले वह पुरुष के अन्य नारी से सम्बन्ध की भनक लगनें पर उससे ईर्ष्या करने लगती थी। अव वह स्वयं अपने स्वच्छन्द आचरण द्वारा पुरुष को ईर्ष्यालु बना रही है।

<u>काम सम्बन्धों में तीसरे के कारण द्वन्द्व एवं तनाव :-</u>

परिवार एवं समाज की दृष्टि से नारी को अपनी इस नयी दोहरी भूमिका से बचना या उसे झटकना आवश्यक है परन्तु कभी - कभी वह अपने संवेगों के कारण इसे झटक नहीं पाती। इससे वह स्वयं भी द्वन्द्व एवं तनाव का शिकार हुई है।

राजेन्द्र यादव की 'एक कमजोर लड़की की कहानी' की सविता पत्नी और प्रेमिका दोनों भूमिकाओं को निभाती है। विवाह पूर्व उसका अपने पड़ोसी प्रमोद से गुरू और भाई का सम्बन्ध स्थापित होता है जो व्यवहार के धरातल पर प्रेमी के रूप में परिणत हो जाता है। विवाह के बाद उसके पति लोकेश को जब सविता के विवाह पूर्व सम्बन्धों का पता चलता है तो वह उस पर निगरानी रखता है। पर सविता स्पष्टतः स्वीकार करती है कि उसके विवाह से पूर्व प्रमोद से सम्बन्ध थे पर विवाह के बाद नहीं हैं। वह कहती है -

'जब लड़की घर से आती है तो अपने सारे सम्पर्कों और सम्बन्धों को वहीं छोड़ आती है, उनमें बहुत से अच्छे होते हैं, बहुत से बुरे भी; बहुत से आवश्यक होते हैं, बहुत से मधुर होते हैं, लेकिन उनमें से वह कुछ को भूल जाती है, कुछ को वह भुला देती है।'[1]

सविता द्वारा दिए गये स्पष्टीकरण से प्रमोद पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं होता। वह एक विचित्र प्रस्ताव सविता के समक्ष रखता है- सविता उसके सामने पूर्व प्रेमी प्रमोद को जहर दे। सविता इसके लिए राजी होती तो है किन्तु जहर देते समय उसका हाथ काँप जाता है। इस प्रकार सविता को द्वन्द्व एवं तनाव की स्थिति में चित्रित किया गया है।

कमलेश्वर की 'जो लिखा नहीं जाता' की सुदर्शना भी पूर्व प्रेमी और पति के बीच तनाव की स्थिति में जीती है - यहाँ तक कि उसे पति से तलाक ले लेना पड़ता है। वह अपनी व्यथा न तो पति से कह पाती है न प्रेमी से। वह मानती है कि पति और प्रेमी से कहने से भी कुछ बचा रह जाता है और उसे स्वयं भोगना सहना पड़ता है। सुदर्शना पत्नी और प्रेमिका दोनों ही भूमिकाओं को अकेले में रहकर झेलती है।

मन्नू भण्डारी की 'बाहों का घेरा' की कम्मो पति की वासना के कारण उदास रहती है - वह चाहती है उसका पति भी उसी प्रकार उसकी व्यग्रता से प्रतीक्षा करे जिस प्रकार उसका प्रेमी करता था। पर ऐसा कभी कुछ नहीं होता। वह न प्रेमी की बन पाती है न पति की।

---

१ - जहाँ लक्ष्मी कैद है - राजेन्द्र यादव - पृष्ठ -२५-२६

रवीन्द्र कालिया की ' नौ साल छोटी पत्नी' की पत्नी तृप्ता भी अपने पति से तृप्त नहीं है। वह भी उसी के घर में उसी के सामने अपने प्रेमी को लेकर कहानी लिखती है और चारपाई के नीचे ट्रंक में रखती रहती है। पति भी उन्हें निकाल कर पढ़ लेता है पर कहता कुछ भी नहीं, उल्टे बढ़ावा देता है। तृप्ता पत्नी और प्रेमिका का रूप निभाने की कोशिश करती है पर पति जानता है कि वह उसका प्रेमी है। उसका पति कुशल जान बूझ कर ऐसी परीस्थितियां उत्पन्न करता है कि तृप्ता परेशान हो। वह उसे अपने प्रेमी के पत्र पढ़ते पकड़ता है और अपने सामने खाट के नीचे ट्रंक में रखते देखता है। बाद में विवश होकर वह अपने प्रेमी के पत्रों को जला डालती है। पति मन ही मन महसूस करता है कि 'तृप्ता का रोना बिलकुल जायज है।' तृप्ता पूरी तरह टूट जाती है।

'एक प्रामाणिक झूठ' भी इसी प्रकार की कहानी है जिसमें पत्नी पति को छोड़ कर मित्र के घर चली जाती है।

शैलेश मटियानी की 'सीखचों पर अटका अतीत' की राजेश्वरी अपने पति और प्रेमी के बीच सम्बन्ध निर्वाह में फंस जाती है। उसका प्रेमी उसके विवाह के पाँच वर्ष बाद 'स्वामी' के वेश में उसके घर में प्रवेश करता है। विवाहित रहकर भी वह आत्म यन्त्रणा और आत्म ग्लानि की शिकार रही, वह भी उसके वियोग में स्वामी बना अविवाहित घूम रहा है। इस विषम आत्म ग्लानि की स्थिति में वह न स्वामी से यह कह सकती है कि वह उसें भगा ले जाये और न स्वामी ही यह साहस कर सकता है कि उसे भगा ले जाये। और स्वामी बना उसका प्रेमी उससे बिना बात किये ही वापस चला जाता है। राजेश्वरी आत्म यन्त्रणा और आत्म ग्लानि की यन्त्रणा झेलती रहती है।

किन्तु कुछ कहानियों में नारी के ऐसे रूप भी उभरे जहाँ उसने पत्नी और प्रेमिका दोनों की भूमिका को निर्द्वन्द्व भाव से निभाया है। उसमें न तो द्वन्द्व है न तनाव।

शरीर सम्बन्ध से मन के सम्बन्ध की महत्ता :-

निर्मल वर्मा की 'अंधेरे में' कहानी की पोनी अपने पूर्व प्रेमी वीरेन से भी मिलती रहती है और पति के साथ भी सम्बन्ध बनाए रखती है। कभी - कभी उसका मन जरूर करता है कि वह पति के साथ वर्तमान सम्बन्ध तोड़ कर प्रेमी के साथ भाग जाये किन्तु वह भागती नहीं। मन्नू भण्डारी की 'ऊंचाई' की शिवानी भी पति और प्रेमी से इस आधार पर सम्बन्ध बनाए रखती है कि प्रेमी उसके कारण अब तक अविवाहित है और पति से इसलिए कि वह उसका वर्तमान जीवन है। पति यह जान जाता है, क्षुब्ध भी होता है और आक्रोश भी करता है किन्तु पत्नी अपनी स्वेच्छा से प्रेमी को अपना शरीर निःसंकोच अर्पित कर देती है। प्रेमी इसे उसकी अनुकम्पा मानता है किन्तु वह इसे अपनी अनुकम्पा भी नहीं कहती। वह कहती है - 'अनुकम्पा की बात न कहो अतुल. इसे चाहे जो नाम दे लो। तुम ऐसे अकिंचन नहीं कि तुम पर अनुकम्पा करूं। और अपना सब कुछ मिटा कर देने की उदारता मुझमें नहीं है। मेरा कुछ भी मिटने वाला नहीं है, इसलिए दे रही हूँ।'[१]

वह अतुल से स्पष्ट शब्दों में कह देती है - 'आदमी छोटा अपने मन के छोटेपन से होता है, दूसरे का बड़प्पन किसी को छोटा नहीं बनाता, बना भी नहीं सकता। मेंरे लिए जैसे शिशिर, वैसे ही तुम हो।'[२] इतना ही नहीं, वह अपने हर काम को चोरी से नहीं, सीनाजोरी से करना चाहती है। उसका पति उसे प्रेमी के साथ सोती देख लेता है पर वह डरती नहीं उलटे पति के आक्रोश को अनुचित समझती है। तभी तो वह साफ-साफ कह देती है - 'उस पर (अतुल पर) व्यर्थ लांछन लगाने की आवश्यकता नहीं, जो कुछ कहना हो मुझे कहो। मैं तुम्हारी घृणा, तुम्हारा आक्रोश सभी कुछ सहने को तैयार हूँ।'[३] इतना ही नहीं पति के प्रश्न पर प्रश्न करने पर वह हिचकती नहीं उलटे कहती है कि 'पति के रूप में तो मैं किसी की कल्पना भी नहीं कर सकती हूँ, अतुल की भी नहीं। तुम्हें लेकर मन का कोना-कोना इस तरह भरा हुआ है कि इसमें कोई और कहाँ से आयेगा भला---------शरीर पर चाहे वह छाया हो, पर मन पर तुम ------ केवल तुम्हीं छाए हुए

१- मन्नू भण्डारी -एक प्लेट सैलाब-पृ०-१४१

२- वही पृ० - १४२

३- वही पृ० - १४५

थे।"[1] वह आगे कहती है - 'अतुल अपनी सीमाएं जानता है। जो उसका नहीं, उसे पाने की लालसा भी कहीं नहीं करता ------- मेरे जीवन में जो तुम्हारा स्थान है, उसे कोई भी नहीं ले सकता, लेना तो दूर, उस तक कोई पहुँच भी नहीं सकता। किसी के कितनी ही निकट चली जाऊँ, चाहे शारीरिक सम्बन्ध भी स्थापित कर लूँ, पर मन की जिस ऊँचाई पर तुम्हें बिठा रखा है, वहां पर कोई नहीं आ सकता।'[2]

इस प्रकार वह अपने किए पर कोई पश्चाताप नहीं व्यक्त करती। वह मन और शरीर के सम्बन्ध को अलग - अलग मानती है और मन के सम्बन्ध को ऊँचे धरातल पर स्थापित करती है और प्रेमी को केवल शरीर सम्बन्ध से जोड़े रहती है। पर व्यभिचार किसकी ओर से है, प्रेमी की ओर से या विवाहिता की ओर से या फिर दोनों की ओर से। कहने को तो यह कहा जा सकता है कि वह दोनों से सम्बन्ध निर्वाह करती है किन्तु वास्तव में क्या ऐसा ही है ? कम से कम विवाह के बाद इस प्रकार के सम्बन्ध दैहिक काम सन्तुष्टि के लिए निर्ल्लजता की पराकाष्ठा तो नहीं है ? फिर वह स्वयं चाहे इस प्रकार के सम्बन्धों का निर्वाह कर ले क्या पति के प्रति यह उसका छलपूर्ण व्यवहार नहीं माना जाना चाहिए। यदि पति भी इसी प्रकार पत्नी के होते हुए अन्य स्त्री चाहे वह कुमारी हो, विवाहिता हो या विधवा हो या वेश्या ही हो किसी प्रकार का शारीरिक काम सम्बन्ध रखता है तो क्या यह उसका अपनी पत्नी के प्रति छलपूर्ण व्यवहार नहीं माना जाना चाहिए।

परन्तु हिन्दी में इस प्रकार की अनेक कहानियां लिखी गई हैं जिनसे इस प्रकार की स्थितियों के समाज में विद्यमान होने या हो सकने की बात कही गयी है। मन्नू भण्डारी की ही एक अन्य कहानी 'तीसरा आदमी' की शकुन भी इसी प्रकार पति और प्रेमी के साथ निर्द्वन्द्व भाव से सम्बन्धों का निर्वाह करती है -बिना किसी मानसिक तनाव या आत्म ग्लानि के।

परन्तु जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है विवाहित व्यक्तियों का विवाहेत्तर काम सम्बन्धों में ग्रस्त नारी या पुरुष को इस प्रकार का एकांगी निर्णय लेने का अधिकार कहां तक उचित कहा जा सकता है। इसमें लिप्त व्यक्ति का ऐसे सम्बन्धो को सहज भाव से लेना उतना महत्वपूर्ण नहीं होना चाहिए जितना उससे दुष्प्रभावित व्यक्ति की मनोदशा या मानसिकता का। फिर वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, आर्थिक रूप से स्वावलम्बी हो या आश्रित।

यहां रांगेय राघव के उपन्यासों में व्यक्त उस धारणा का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा जहां उन्होंने तन के सम्बन्ध और मन के सम्बन्ध को भिन्न - भिन्न माना है और सम्भवतः मन और तन दोनों से किये गये समर्पण को ही सच्चा समर्पण माना है। इस प्रकार वे जबरन किए गए या अनिच्छा पूर्वक किए गए शारीरिक सम्बन्ध को किसी अपराध की कोटि में नहीं मानते हैं। उनके उपन्यास 'कब तक पुकारूं' में यद्यपि करनट जाति में चाहे - अनचाहे प्रचलित पर पुरुष सम्बन्ध की प्रथा के कारणों पर प्रकाश डालते हुए उनके निवारण की आशा व्यक्त की गई है किन्तु यह स्थिति समस्त भारतीय नारी के साथ भी जुड़ी है जिसे चाहे - अनचाहे यौन शोषण का शिकार होना पड़ता है। करनट नारी में तो पति होते हुए भी अनेक पर पुरुषों से सम्बन्ध रखने की परिपाटी सी चली आती मिलती है परन्तु यह अधिकांश में परवशता या शोषण के कारण ही है। डा० कमलाकर गंगावने के अनुसार - 'करनटो'में नारी पति के होते हुए भी अनेक पर पुरुषों से सम्बन्ध रखती है। नये सम्बन्ध स्थापित करने तथा पुराने तोड़ने में वह स्वतन्त्र रहती है। उनके यह सम्बन्ध शारीरिक भूख की तृप्ति हेतु एवं जनन प्रक्रिया हेतु नहीं होते, अपितु पेट की आग बुझाने हेतु होते हैं। पेट भरने के लिए इस समाज की नारी किसी को भी चवन्नी -अठन्नी पर शरीर का क्रय - विक्रय करती है। वास्तव में पेट की आग या समृद्ध वर्ग द्वारा उत्पीड़न इनकी अनैतिकता का कारण हो सकता है। ऐसा होते हुए भी इस समाज में नारी की मान्यता यह है कि 'नाता जोड़ना और बात है, मन की होकर रहना और बात है।'[3] इस समाज में तन की अपेक्षा मन की शुद्धता को अधिक महत्व है। 'प्यारी' शारीरिक रूप से रूस्तम खां के घर रहती है परन्तु मन से वह सुखराम (करनट) की ही है।[4] करनट जाति की नारी स्वेच्छा से भी पर -पुरुष के पास

१- मन्नू भण्डारी -एक प्लेट सैलाब-पृ०-१४७

२- वही पृ० - १४८

३- कब तक पुकारूं - रांगेय राघव - पृ० - ५३

४- कथाकार रांगेय राघव - डा० कमलाकर गंगावने - पृ० - २७७

जा सकती है और आवश्यकता वश या प्रलोभन वश भी। इतना ही नहीं मर्द स्वयं औरत को वेश्या बनाकर उसके द्वारा धन कमाते हैं। किन्तु जब करनट सुखराम कजरी से सम्बन्ध जोड़ लेता है तब 'प्यारी' उसे प्रताड़ित करना चाहती है। इस पर सुखराम कहता है -'तू हजार मरद कर सकती है, : दो लुगाई नहीं रख सकता?' इस पर प्यारी कहती है - 'नहीं तू झूठ कहता है। मैंने एक किया, वह तू है। बाकी के पैसे कमाने के लिए थे। उनको मैंने दिल नहीं दिया। पर तूने कजरी को दिल दिया है। तन बंट सकता है, मेरे राजा, मन नहीं बंट सकता।'[1]

इस कथानक का इसलिए यहां विवेचन करना अपेक्षित लगा कि आधुनिक युग में नारी जाति के एक बहुत बड़े वर्ग को विवाहपूर्व या विवाहेत्तर जीवन में या वैधव्य या तलाक की स्थिति में इसी प्रकार चाहे -अनचाहे, प्रलोभन या आकर्षणों के वशीभूत होकर या आर्थिक उत्पीड़न के कारण शारीरिक शोषण का शिकार होना पड़ रहा है। उसे बहका -फुसलाकर या प्रलोभन दिखा कर या भय दिखाकर या आर्थिक उत्पीड़न के कारण बलात्कार, व्यभिचार आदि के लिए बाध्य या प्रेरित किया जाता है जिसके लिए अकेले उसे ही उत्तरदायी नहीं माना जाना चाहिए। अतः यदि वह तन से भी अनिच्छा से किसी अनुचित या अपवित्र बन्धन में फंसती है तो उसे कहां तक दोषी मानना उचित होगा। इस प्रकार के अनेकानेक प्रश्नों को आधुनिक हिन्दी की कहानियों में उठाया गया है। यहां इसी प्रकार की कुछ कहानियों पर दृष्टिपात किया जा रहा है।

दूधनाथ सिंह की 'शिनाख्त' कहानी में विवाहिता अपने विवाह पूर्व प्रेमी से अपने पति के घर में भी शारीरिक सम्बन्ध बनाए रखती है। पश्चात्ताप का उसमें लेश मात्र अंश भी नहीं है। वह तो उलटे अपना तीसरा बच्चा होने पर प्रेमी के यह पूछने पर कि यह बच्चा किसका है सहज भाव से बताती है कि 'कुकी जिस दिन पेट में आयी थी उस दिन तुम दोनों ने ही --------।'[2] इतना ही नहीं, वह प्रेमी के साथ मिलकर पति का मजाक भी उड़ाती है।

उषा प्रियम्बदा की 'परछाइयां' में भी नारी पति और प्रेमी दोनों से सहज सम्बन्ध स्थापित रखती है बिना यह चिन्ता किए कि वे दोनों उसके विषय में क्या विचार रखते हैं। वह स्वयं को दोनों के प्रति ईमानदार रहने की कोशिश करती दिखाई गई है।

महीप सिंह की 'काला बाप गोरा बाप' की विवाहिता नायिका अपने बिछुड़े काले प्रेमी को घर में पाकर अपने बच्चों से, जिनमें से पहला बच्चा उसी काले प्रेमी की सन्तान है, अपने प्रेमी का अपमान होना न देख सकने के कारण बच्चों को बता देती है कि वह उनका पिता है।

साठोत्तरी कहानियों में ऐसी भी कहानियाँ हैं जिनमें नारी विवाहोपरांत पति या प्रेमी में से केवल एक का चयन करती है। महीप सिंह की कहानी 'सीधी रेखाओं का वृत्त' की नारी अपने प्रेमी को इसलिए ठुकरा देती है कि उसने विवाह से पूर्व नारी के प्रस्ताव को अस्वीकार किया था और अब विवाह के बाद उसकी ओर आकर्षित हो रहा है।

मृदुला गर्ग की 'अवकाश' कहानी की विवाहिता नायिका अपने पति से इसलिए तलाक ले लेती है कि उसका मन प्रेमी से बंधा है और पति से वह शारीरिक सुख के अतिरिक्त कुछ नहीं पाती। वह पति को छोड़ प्रेमी के साथ रहने लगती है।

दूसरी ओर ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें पति के विवाहेतर सम्बन्धों को जानकर पत्नी ईर्ष्या करने लगती है। ऐसा नहीं कि वह खुली बगावत ही कर देती है पर उसकी हर अनुनय - विनय को पुरुष प्रधान समाज में उचित महत्व नहीं दिया जाता।

राजेन्द्र यादव की 'पुराने नाले पर नया फ्लैट' और दूधनाथ सिंह की 'रीछ' कहानी इसी प्रकार की है। 'रीछ' में वह

१- कब तक पुकारूं - डा० रांगेय राघव - पृ० - ८६
२- पहला कदम - दूधनाथ सिंह - पृ० - ४६

पति को जलील भी करती है पुरुष की अपेक्षा नारी को उच्च्य धरातल पर स्थापित करती है - पुरुष को छिछोरा और नारी को शालीन बताती है। वह कहती है - 'लेकिन तुम लोग हमेशा नयी - नयी चीज के पीछे ही भागते फिरते हो जी। ------- स्त्री हमेशा अधिक नैतिक होती है। उसका अपना पुरुष ही उसे रोज नया लगता है।' वह स्वयं को पति द्वारा अपमानित किया हुआ अनुभव करती है क्योंकि उसका पति उसके होते हुए भी अन्य स्त्री में आसक्त है। वह कहती है - 'तुमने मुझे कितना छोटा और अपाहिज कर दिया है।'[1]

मन्नू भण्डारी की कहानी 'बन्द दराजों का साथ' की विवाहिता नायिका पति से इसलिए तलाक ले लेती है क्योंकि उसके पति के किसी अन्य स्त्री से सम्बन्ध हैं। वह दूसरा विवाह कर लेती है।

शैलेश मटियानी की 'तीसरा सुख' कहानी की विवाहिता नायिका बच्चे की मां बनने के बाद कुवांरे होने की इच्छा रखती है और ऐसी जगह शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है जहां चरित्रहीन होने का लांछन भी न लगे और नये सुख का अनुभव भी कर सके। इसके लिए वह एक अन्धे को चुनती है और उससे अपना कुमारी के रूप में परिचय देती है। वह उससे सम्भोग सुख प्राप्त भी करती है।

कृष्ण बलदेव वैद की 'त्रिकोण' कहानी की विवाहिता नायिका पर - पुरुषों से सम्बन्ध इसलिए नहीं रखती है कि वह अतृप्त या पति पर उसे विश्वास नहीं है या पति उसे प्यार नहीं करता बल्कि इसलिए कि 'हर पत्नी कहीं न कहीं अपने पति को गहरी चोट पहुंचाने की ख्वाहिश दबाये रहती है।'[2] वह चाहती है कि उसका पति उसे उसके दोस्त के शरीर से लिपटी हुई देखे और उसका दोस्त ही उसके पति की हंसी उड़ाये।

नारी मां के रूप में भी बदली हुई परिस्थितियों में बदली हुई मिलती है। कहीं वह पति के कारण तो कहीं प्रेमी के कारण बच्चों की भी उपेक्षा करते मिलती है। विधवा नारी भी अनेक विसंगतियों का सामना करते मिलती है। वह अपने पति का घर छोड़ अलग होती है तो भी मुश्किल और नहीं होती तो भी मुश्किल। वह स्वतन्त्र जीवन नहीं जी सकती। वह या तो अपने बच्चों के लिए जीती है या अपना जीवन निर्वाह करने के लिए। यदि वह युवावस्था में ही विधवा हो गयी तो वह अपने जीवन को फिर से बसाने का प्रयास करती है। इसमें भी उसके साथ कभी छल होता है कभी खिलवाड़। वह नये पुरुष से सम्बन्ध स्थापित करके भी पूर्व - पति को भुला नहीं पाती। जहां वह भूलती भी है वहां उससे जुड़ी उसकी सन्तानें उसके मार्ग में बाधक बनती हैं। कमलेश्वर की 'तलाश' कहानी की विधवा अपनी पुत्री की परवाह न करके ही अपने नये प्रेमी से सम्बन्ध रख पाती है। आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी विधवा मां अपनी बेटी सुमी की परवाह नहीं करती और अपने घर में ही पर -पुरुष से सम्बन्ध स्थापित करती है। बेटी को अपने सम्बन्धों के बीच बाधा समझ वह उसे होस्टल में रहने भेज देती है।

कहीं वह आर्थिक स्वावलम्बन के लिए नाजायज सम्बन्धों में फंसती है या अन्य प्रलोभनों के जाल में फंस कर रह जाती है और उससे निकलना असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य हो जाता है।

मंजुल भगत की कहानी 'विधवा का श्रृंगार' में पति की मृत्यु पर पत्नी तो विधवा होती ही है प्रेमिका भी विधवा हो जाती है। पत्नी तो रो भी लेती है किन्तु प्रेमिका रो भी नहीं पाती क्योंकि उसके मृत व्यक्ति के साथ शारीरिक सम्बन्धों की बात केवल दो ही लोग जानते हैं - एक वह स्वयं और दूसरा उसका मृत प्रेमी। विधवा तो कुछ समय बाद पुनर्विवाह भी कर लेती है पर प्रेमिका वह भी नहीं करती।

आधुनिक युग में वेश्यावृत्ति का पुराना रूप नहीं मिलता। अब नारी आर्थिक या शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए या समाज में उच्च्य स्तर का सुख - भोग करने की दृष्टि से क्लबों, होटलों में जाती है और पुरुषों के लिए उपलब्ध रहती

१- पहला कदम - दूधनाथ सिंह - पृ० - १५४
२- दूसरे किनारे से - कृष्ण बलदेव वैद - पृ० - १५

है। वह 'काल गर्ल' बन जाती है।

उन्मुक्त यौनाचार का नग्न चित्रण :-

आधुनिक कहानियों में आधुनिकतावदी आन्दोलन के फल स्वरूप नग्नता का चित्रण बढ़ता चला गया है। हिमांशु जोशी की कहानी 'एक समुद्र भी' में पति नशे की हालत में रोज की तरह अलसाई पलकों, लाल - लाल आँखों और बदबू भरे मुँह से बिस्तरे पर आता है और प्रायः पेशाब से आधा बिस्तर भी गीला कर देता है और झकझोर कर बासू को जगाता है और बासू आँखें खोले बिना ही रोज की तरह, स्वाभाविक रूप से अपने शरीर के सारे कपड़े समेट कर एक ओर कर देती है।' इसी प्रकार राजकमल चौधरी की 'मरी हुई मछली' में भी नारी के (समलैगिंक) वासना मय स्वरूप का चित्रण इन शब्दों में मिलता है -

'वह बड़ी बहन की नंगी देह से लिपटी रहती थी। अपनी उंगली से उसे सहलाती थी और थपथपाती रहती थी। शीरी की उंगलियां भीग जाती थीं। बड़ी खुशी से चीखती थी और शीरी के स्तनों पर दांत गड़ा देती थी।'

स्पष्टतया हिन्दी की अनेक आधुनिक कहानियों में नारी चित्रण होने पर भी न तो नारी की सामाजिक चेतना का कोई स्वरूप उभरता है न उनका किसी प्रकार का कोई अभ्युदय ही होता है। हाँ, जो तत्व उसमें सबसे अधिक उभर कर आया वह स्वच्छन्द काम भावना का ही है।

डा० राम बख्श सिंह के अनुसार 'कृष्ण बलदेव वैद आधुनिक संचेतना के प्रमुख कहानीकार हैं। ---- लेकिन उनकी अधिकांश कहानियां सतही हैं' जिनमें व्यंग्य मात्र है - वह भी अत्यन्त स्थूल ---- इनके अतिरिक्त कुछ कहानियां मात्र सम्भोग चित्रों को उभारने के लिए लिखी गई प्रतीत होती हैं जैसे 'दूसरे का बिस्तर' आदि जिसमें थोड़े से मनोविज्ञान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।'[१]

उषा प्रियम्वदा की 'मछलियां' कहानी में नारी मन के दौर्बल्य को बड़ी कलात्मक सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया गया है। मन्नू भण्डारी की कहानियां भी नारी पुरुष के द्वन्द्व सम्बन्धों से भरी हुई हैं -- 'यही सच है ' 'तीसरा आदमी' 'ऊँचाई' आदि में यह अभिव्यक्त हुआ है। नारी मन की क्षमता और दुर्बलता दोनों पक्षों का सम्यक उदघाटन उनकी कहानियों में हुआ है। डा० राजेन्द्र यादव के शब्दों में इनकी नारी देवी और दानवी के दो छोरों के बीच टकराती 'पहेली' नहीं, हाड़ माँस की मानवी भी है।'[२] डा० राम बख्श सिंह के अनुसार 'मन्नू के पास वह शक्ति है जिसमें वे श्रम और सेक्स शोषण के बीच पिसती नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को ढूँढ निकालती हैं।'[३]

रामकुमार की कहानी 'लौ पर रखी हथेली' में बेला (काम) भोग के लिए कठोर पुरुष की आकांक्षा में कहीं अन्यत्र जुड़ जाती है। पति में मर्दानगी के अभाव में उसका अन्यत्र जुड़ जाना पत्नी की नियति ही रही है। यह जुड़ना उसे अपमानित भी करता है, लेकिन वह करे क्या, उसके लिए तो वह अभिशप्त है, क्योंकि उसे अपनें पति की आवाज 'बकरी की तरह मिमियाती' सुनाई पड़ती है।' इतना ही नहीं अपनें पतन के लिए वह पति को उत्तरदायी मानती है।

कुछ इसी प्रकार की प्रवृत्ति कृष्ण सोबती की कहानी 'मित्रो मारजानी' में 'मित्रो' की है। वह भी सास, ससुर, जेठ, जेठानी, देवर ,देवरानी और पति तक की सभी मर्यादाओं का बार-बार उल्लंघन करनें के लिए उतावली मिलती है।

१- नई कहानी- कथा और शिल्प - डा० सन्त बख्श सिंह - पृ० -११५
२- मन्नू भण्डारी - श्रेष्ठ कहानियां - डा० राजेन्द्र यादव -पृ० - ६
३- नई कहानी - कथा और शिल्प - डा० सन्त बख्श सिंह - पृ० - १२०

आधुनिक युग की नारी की एक बड़ी त्रासदी उसका उन्मुक्त यौनाचार है जो यौवन के आरम्भ से ही आरम्भ हो जाता है या आरम्भ होने में कोई बाधा नहीं रहती है और कुमारी माता बनने का अभिशाप भी अब अभिशाप नहीं रह गया है। आधुनिक नारी या तो विवाह पूर्व के ऐसे प्रेम सम्बन्धों और शारीरिक सम्बन्धों को विवाह के उपरान्त भी भुला नही रह पाती है या जान बूझ कर न भुलाने में गौरव अनुभव करती है। आधुनिक युवती की यहं नियत बन गई है।

डा० राम बख्श सिंह के अनुसार -

कृष्णा सोबती आधुनिक बोध की प्रमुख कहानी लेखिका हैं। उनकी कहानियों में प्रायः पंजाब देश की मिटटी की गन्ध समायी हुई है।'[1] 'मित्रो मरजानी' के सम्बन्ध में वे लिखते हैं -

'मिमों मरजानी' कहानी के अंग - अंग में एक प्रकार की उत्फुल्लता है। 'मित्रो' हिन्दी साहित्य के पात्रों में अनोखे रूप में आती है। शिक्षित समाज के लिए भी वह एक विवादस्पद नारी पात्र है। इस पात्र के लिए कहानी पाठकों के मन में एक नवीन जिज्ञासा है। इसके बारे में ठीक ही कहा जाता है कि यह न तो रवीन्द्र की ओस जैसी है और न ही शरत और जैनेन्द्र की विद्रोहिणी नारी पात्रों जैसी ही। इसे, सचमुच ही, आर्दश का कोई मोह नहीं , न समाज का भय और न ईश्वर का ही। यह किसी विशेषण की मुँहताज नहीं। वह तो मात्र माँस, मज्जा की बनी नारी है, जिसमें स्नेह भी है, ममता भी है, माँ बनने की हौंस भी तथा 'यह जनरैली नार छोटे - मोटे मर्द के बस की नहीं' क्योंकि अपनी विशेषताओं के साथ ही वह ऐसी 'खिलाड़िन' माँ की बेटी है जिसने 'बड़े - बड़े बाघ - छका डाले।'[2] इस कहानी के विषय में इन्द्र नाथ मदान लिखते हैं - 'इस रचना की विशेषता को पंजाब की घर की सोंधी गन्ध में भी आंका जा सकता है।'[3]

डा० भगवान दास वर्मा ने 'आधुनिकता के रचना सन्दर्भ' नामक अपनी पुस्तक में 'मित्रो मरजानी' की विवेचना करते हुए उसे किसी संयुक्त परिवार की वारदात 'नहीं' माना है।[4] इसमें उन्होंने पजांबी परिवार की सामाजिक - सांस्कृतिक संवेंदनाओं के वर्णन को भी महत्वपूर्ण नहीं माना है। उनके ऐसा करनें का कोई कारण अवश्य होगा। हो सकता है वे इसे संयुक्त परिवार का अभिशाप न सिद्ध करना चाहतें हों, हो सकता है वे इसे पंजाबी (आचंलिक) प्रभाव से मुक्त कर सार्व भैमिक सत्य के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हों पर ऐसा करके वे कहां तक न्याय कर रहें हैं, कह सकना कठिन है। कहानी सयुंक्त परिवार और वह भी पजांबी संयुंक्त परिवारों की सभी विशेषताओं से युक्त है। अन्यत्र संयुक्त परिवारों में ऐसी समस्या सहन करनें एवं सुलझानें की बात स्वप्न ही होती। तो फिर उन विशेषताओं से कहानी को वँचित क्यों माना जाय। वे स्वयं मानते है कि इस कहानी में संयुक्त परिवार पंजांबी आँचल सबकुछ है किन्तु इस सबको वे परिवेश के रूप में काम करते पाते है। उस परिवेश की उपज मित्रों की कहानी है। तो फिर उस परिवेश का महत्व गौण क्यों किया जाय। उपयुक्त परिवेश के विना उचित सृजन एवं सम्वर्द्धन कहां सम्भव है? इसे कोई दूषण नहीं माना जाना चाहिए, बल्कि यही उसका भूषण है। यदि सयुंक्त परिवार न होता, और वह भी पंजाबी सयुंक्त परिवार न होता तो मित्रो जैसी नार पैदा ही न हो पाती और यदि पैदा होती तो उसका अकाल या असमय ही दुखद अन्त हो जाता।

'बूढ़े गुरूदास जवान बहुओं की मौजमस्ती और उनके बर्तावों से क्रोधित हैं, अपने ऊपर खीझते हैं उन्हें अपनी पूछ न होने का दुःख है। पश्चाताप, खीझ और व्यर्थता का अनुभव करते हुए स्मृतियों के बल वे बुढ़ापा गुजारे जा रहे हैं। धनवन्ती को भी अनुभव है पर वह बेटों के कबीले में इतनी फंसी है कि उसे न अपनी सुध है और न बूढ़े पति गुरुदास की। हर बूढ़ी मां या सास की तरह वह बेटों और बहुओं के परिवार से समझौता कर लेती है।'[5]

१- नई कहानी : कथ्य और शिल्प - डा० सन्त बख्श सिंह - पृ० - १२६
२- वही - पृ० - १३६
३- हिन्दी कहानी - अपनी जुबानी - डा० इन्द्रनाथ मदान - पृ० - १२६
४- आधुनिकता के रचना सन्दर्भ - डा० भगवान दास वर्मा - ४५
५- वही- पृ०- ४५

परन्तु कहां है वें बूढ़ी मां या सास जो बेटों और बहुओं के परिवार से समझौता कर लेती हैं ? यदि ऐसा ही होता तो सम्भवतः बहुओं की उपेक्षा, अवमानना और उत्पीड़न का अत्यन्त दुखद एवं घोर कालिमा मय हत्याओं और आत्महत्याओं का इतिहास न बन पाया होता। वह इतिहास निश्चय ही स्वर्णाक्षरों से लिखा होता।

इसलिए हमें धनवन्ती के व्यवहार को सहज, सरल एवं स्वाभाविक रूप में नहीं ले लेना चाहिए। वह एक आदर्श सास की भूमिका निभाती है। यह उसकी विवशता भी नहीं है जैसा कि सम्भवतः डा० भगवान् दास वर्मा आभासित कराना चाहते हैं जब वे कहते हैं कि 'कभी - कभी उसका बुजुर्ग होने का अहंकार जागृत हो जाता है पर उसकी कुछ नहीं चलती। बच्चे और बहू पति के खिलाफ जाते हुए देखकर भी बहुओं का बाजू लेने पर वह विवश हो जाती है क्योंकि उसे इन्हीं लोगों के साथ जीना है, इस मनोविज्ञान को आत्मसात् कर लेती है।'[1]

पर सम्भवतः यह निष्कर्ष भी धनवन्ती के चरित्र के साथ न्याय करता नहीं प्रतीत होता। धनवन्ती की ऐसी कोई विवशता नहीं है, यदि उसकी कोई विवशता है तो वह है उसका विशाल संयुक्त परिवार और उसमें उन्मुक्त भाव से पले उसके अपने बच्चे। एक बार जब परिवार विशाल है (और विशाल परिवार हर हिन्दु परिवार की सर्व प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण मनौती है) तो फिर उसका संचालन उसे अनुशासन बद्ध या मर्यादाबद्ध रखना हर मां का कर्तव्य होता है - एक ऐसा कर्तव्य जिसे पूरा करने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझती रहती है, तो फिर इसे विवशता कैसे माना जाय। बहुओं का पक्ष लेना यही आदर्श हिन्दु संयुक्त परिवार का मेरुदण्ड है। जहां इसे विवशता , बोझ या बन्धन माना गया वहीं कलह और क्लेश का अंकुरण होता है।

कथानक के सभी पात्रों - विशेषकर नारी पात्रों से मित्रो भिन्न है और वही इस कहानी की नायिका है। वह किस प्रकार औरों से भिन्न है इस पर डा० भगवान् दास को यह कहना है -

'मित्रो इस परिवार से औरों की तरह समझौता नहीं कर सकती क्योंकि उसको चुनौती देने वाला, उससे उलझ पड़ने वाला उसे कोई नहीं मिला। मित्रो जैसी उबलती हुई नार को दो तरीके से शान्त किया जा सकता था - एक तो उसके मुकावले में ताकतवर बनकर या नहीं तो उसके सामने पूरी तरह घुटने टेककर। ये दोनों बातें गुरदास के परिवार में सम्भव नहीं होतीं। मित्रो की यह व्यथा है कि न तो कोई चटखारे ले चाटने वाला मिला है और न कच्चा चबाने वाला। सरदारी में दोनों गुण या दोनों दोष नहीं हैं, जो मित्रो को परिवार के सम्मुख शरण आने पर विवश करता। इसीलिए शायद मित्रो बौखला गई है। कुछ हद तक तो 'हाये स्टेरिक' बन गई है। उसके लावा जैसे तेज यौन को सन्ताप नही मिलता। वह भारतीय आदर्शों की सारी सभ्य परतें छीलकर नंगे धड़ंगे, पूरे प्राकृतिक रूप में बाहर निकल आती है। उसके इस नंगे रूप को उभारने का शायद अवसर दिया गया है। मित्रो का कुछ हद तक यह पशु रूप एक तरफा नहीं हैं। वैसे हर स्त्री - पुरुष में, नर - नारी में एक पशु छिपा हुआ होता है जो मौका पाकर इच - बीच अपना खतरनाक चेहरा बाहर निकालता है। पाशविक प्रवृत्तियों के संस्कारहीन रूप को खत्म नहीं किया जा सकता। हां, इसे पुचकार कर पालतू बनाया जा सकता है। प्रवृत्तियों के इस 'उबलते घट' को हम जितना अधिक पालतू बना सकें वह उतना ही उदात्तीकृत होकर सभ्यता के लिवास में बाहर आता है। प्रवृत्तियों का उदात्तीकरण ही तो सभ्यता कहलाता है। उदात्तीकरण की प्रक्रिया बड़ी नाजुक प्रक्रिया होती है क्योंकि इस प्रक्रिया में कहीं बाहरी नैतिक मूल्यों का दबाव बहुत अधिक हो जाय तो प्रवृत्तियां उदात्त होने के बजाय विकृत होकर गलत रास्ते से बाहर निकलती हैं'।[2]

मित्रो एक ऐसा नारी चरित्र है जिसकी 'यौन की भूख अस्वाभाविक है। वह अपनी इच्छाओं को प्रदर्शित करते हुए बिलकुल सकुचाती नहीं है। यहां तक कि अपनी मां से यौन तुष्टि की बातें करते हुए वह बिलकुल लजाती नहीं है। जैसे उसकी सारी लाज नारी - सुलभ संकोच, पूरा का पूरा गायब हो गया हो।'[3]

१- आधुनिकता के रचना सन्दर्भ - डा० भगवान दास वर्मा - ४५

२- वही- पृ०- ४६ - ४७

३- वही- पृ०- ४८

इस प्रकार मित्रो अपनी मां से मां जैसा नहीं, सहेली जैसा व्यवहार करती है। आधुनिक युग की नारी में यह परिवर्तन पदे- पदे देखा जा सकता है। मित्रो की एक अन्य विशेषता भी है जो नारी की सामाजिक चेतना में दिन प्रतिदिन वृद्धिंगत हो रही है। यह विशेषता है - 'दूसरों को खिझाने में उसे आनन्द आता है। उन्हें अपने सामने कमजोर देखकर उसे मजा आता है। एक क्रूर किस्म की खुशी उसे होती है। लगता है दूसरों के 'वीक प्वाइण्ट्स' को देखकर ही उसकी ताकत बढ़ती है। अपनी कमजोरियां प्रदर्शित करके वह दूसरों को खुद के खिलाफ उकसाती है। शायद अपनी निन्दा या फटकार सुनकर भी उसे मजा आता है।'[1]

किन्तु यह भी तो हो सकता है कि वह दूसरों को चिढ़ाती या खिझाती हो- कि लो खूब चिढ़ो और खीझो - मेरा कोई क्या कर लेगा - मै किसी की परवाह नहीं करती न सास - ससुर की, न जेठ - जेठानी की, न देवर - देवरानी की, न पति की, न मां - बांप की। वह यौन स्वच्छन्दता की भी समर्थक है जैसा कि उसकी मां। वह मन ही मन सास का भी मजाक उड़ाती है कि 'अपने लड़के बीज डालें तो पुण्य और दूसरे डालें तो कुकर्म ।' इसलिए ऐसी स्त्री पर पति सरदारी का शक करना कि कहीं वह बदचलन तो नहीं, स्वाभाविक है, विशेषकर तब जब वह स्वयं अपने पौरूष से उस पर नियन्त्रण न कर पा रहा हो। पर इतना सब होने पर भी मित्रो में ऐसा कोई दुर्गुण है नहीं, यद्यपि होता भी तो कोई दुर्गुण शायद ही कहा जा सकता विशेषकर तब जब उसकी मां उसी परिवेश में पली हो। और इसीलिए उसमें दम - खम है - ठसक , धमक है। मां के यहां उसे मौका आया था पर पाहुन के किवाड़ तक जाकर लौट आई। पर यहॉ उसके लौटने का एक और प्रवल कारण प्राप्त है। वह अपनी मां की आदतें जानती है। उसे भय है कि ऐसे किसी स्खलन का फायदा उठाकर मां उसके पति को ही उससे छीन सकती है। वह अपनी ही इज्जत नहीं बचाती, पूरे परिवार की इज्जत बचाती है। यह मित्रो है जिससे पूरा परिवार परिवार की इज्जत जाने का सदा भय खाया करता है।

मित्रो पतन की ओर बढ़ते - बढ़ते सम्हल जाती है और पाहुन के कमरे में जाने के स्थान पर छलांग मारकर अपने पति के कमरे में चली जाती है और पूरी तरह समर्पित नारी बन जाती है। वह अपना सारा प्यार अपने प्रिय पति पर उड़ेल देती है। यही उसके चरित्र की उदात्तता है।

मित्रो जैसे आधुनिकता बोध वाली नारी का अपने पति की ओर लौटना ही उचित था यद्यपि उसका न लौटना भी अस्वाभाविक न कहा जाता यदि उसके समक्ष एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव नहीं उपस्थित किया जाता। पर तब आधुनिक नारी की स्वतन्त्रता - उन्मुक्तता का क्या होता? इसे ऊँचे धरातल पर कौन पहुँचाता। तब तो यही स्थापित होता कि स्वतन्त्रता तथा उन्मुक्त होकर नारी केवल बिगड़ ही सकती है। लेखिका के द्वारा कथानक को दिया गया मोड़ वस्तुतः प्रशंसनीय है।

इसी प्रकार की बहुचर्चित उनकी दूसरी कहानी 'यारो के यार- है। 'यह कहानी जगत की एक 'बोल्ड' रचना मानी जा सकती है। 'बोल्ड' इस अर्थ में कि दफ्तरी जिन्दगी के भीतर चलने वाले लेन - देन, ठेके के कमीशन के शाही धन्धों - की परतों को कलम के तेज अस्त्र से काटकर, सब कुछ नंगा करके सामने रखा गया है।'[2]

नारी की सामाजिक चेतना भी अनेक रूपों में नयी कहानियों में मिलती है। उसके कुछ रूप यदि उदात्त हैं तो कुछ अत्यन्त विकृत या प्रतिहिंसा पूर्ण या प्रतिक्रिया पूर्ण हैं। कहीं तो वह विवाह पूर्व प्रेम प्रसंग के कारण आजीवन अविवाहित रह जाती है क्योंकि परिस्थितियों के कारण उसका प्रेमी से विवाह नहीं हो पाता है और कहीं वह विवाह के बाद भी प्रेमी को अपने प्रेमपाश में बांधे रहना चाहती है।

कृष्णा सोबती की कहानी ' बादलों के घेरे' की मन्नो अपने प्रेमी रवि का अन्यत्र विवाह हो जाने पर आजन्म कुमारी रहती है और रवि से कोई भी सम्बन्ध नहीं रखती। दूसरी ओर भीष्म साहनी की 'डोरे' कहानी की अर्चना प्रेमी के विवाह

१- आधुनिकता के रचना सन्दर्भ - डा० भगवान दास वर्मा - ४८

२- नई कहानी : कथ्य और शिल्प - डा० सन्त बख्श सिंह - पृ० - १३६ - ४०

के बाद स्वयं विवाह नहीं करती किन्तु उसे अपने साथ बांधे रहती है। प्रेमी अपनी पत्नी की उपेक्षा कर प्रेमिका के प्रेम पाश में फंसा रहता है। अर्चना नौकरी करने लगती है और अपने कारनामें गर्व से कार्यालय में बताती है। वह अपनी सह-कर्मियों से गर्व से कहती है - 'मर्द को काबू में रखने का ढंग आना चाहिए।'[1]

इतना ही नहीं, वह इस बात की रंच मात्र चिन्ता नहीं करती कि उसके प्रेमी का विवाह हो चुका है, उसके बच्चे भी है और उनके प्रति भी उसकी नैतिक जिम्मेदारी है और यह कि वे ही पति और पिता का सच्चा प्रेम पाने के अधिकारी हैं और उसकी इन हरकतों से उनके अधिकारों का हनन होता है। वह जानती है कि जब वह अपने प्रेमी से मिलती है तब उसकी पत्नी घर पर उसका इन्तजार कर रही होती है किन्तु वह सोचती है कि जिसके लिए उसने उम्र भर शादी न करने की टान ली, उसे कैसे छोड़ दे ? प्रेमी उसके प्रेमपाश से मुक्त नहीं हो पाता और बच्चे के जन्म दिन पर भी घर पर ठीक समय पर नहीं पहुँच पाता जबकि उसकी पत्नी और बच्चे घर पर उसकी उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करते रहते हैं और जहां समय से पहुंचना उसकी नैतिक जिम्मेदारी बनती है।

आधुनिक नारी पत्नी और प्रेमिका दोनों सम्बन्धों को साथ - साथ निभाने का भी दुस्साहस करती मिलती है और उसमें कोई अपराध बोध भी अनुभव नहीं करती। मन्नू भण्डारी की 'ऊँचाई' की शिवानी अपने विवाहपूर्व प्रेमी से भी सम्बन्ध रखती है और पति से भी। प्रेमी को वह इसलिए भी नहीं छोड़ पाती कि वह उसके कारण अब तक अविवाहित है और पति को इसलिए कि वह उसका वर्तमान जीवन है। पति से यह सब व्यवहार छिपा नहीं रहता और वह क्षुब्ध भी होता है किन्तु उसके आक्रोश की किंचित भी चिन्ता किए बिना प्रेमी के न चाहने पर भी उसे अपना शरीर निसंकोच समर्पित कर देती है।

उसका प्रेमी और पति के साथ इस प्रकार का खुल्लम खुला सम्बन्ध निर्लज्जता की सभी सीमाओं को लांघता दिखायी पड़ता है। पति उसे प्रेमी के साथ सोते देख लेता है परन्तु वह डरती नहीं और पति के आक्रोश व्यक्त करने पर प्रेमी का पक्ष लेती है।

पति और प्रेमी से साथ - साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाए रखने पर एक जो विचित्र बाधा उपस्थित होती है वह इस अवधि में उत्पन्न सन्तान की है। उसे किसकी सन्तान माना जाय - पति की या प्रेमी की। परन्तु आधुनिक नारी इतनी सजग और सावधान होने का दावा करती है कि अपने पति से भी यह कहने में हिचकती नहीं कि उसकी कोख में पल रही या कोख से उत्पन्न सन्तान पति और प्रेमी में से किसकी है। शिवानी तो स्पष्ट स्वीकार कारती है कि उसके तन पर भले ही प्रेमी का अधिकार हो, मन पर केवल पति का अधिकार है। इस प्रकार न केवल अपने आचरण की वकालत करती है बल्कि अपने प्रेमी के आचरण की भी।

पत्नी और प्रेमिका की इस रूप में यह दोहरी भूमिका निश्चय ही पाश्चात्य प्रभाव का परिणाम है जहाँ इस प्रकार के प्रयोग (एक्सपेरिमेण्ट) करने का एक फैशन सा चल पड़ा है।

मन्नू भण्डारी के 'तीसरा आदमी' की शकुन भी पति और प्रेमी के साथ उसी प्रकार निर्द्वन्द्व सम्बन्ध विना किसी मानसिक तनाव या आत्मग्लानि के चलाती है परन्तु दूधनाथ सिंह की ' शिनाख्त' में तो पत्नी अपने पूर्व प्रेमी के साथ अपने घर पर भी शारीरिक सम्बन्ध रखती है और सभी स्थितियों को सहज भाव से लेती है। उसमें न अपराध बोध है न पश्चाताप। इतना ही नहीं , अपने तीसरे बच्चे के जन्म पर प्रेमी के यह पूछने पर कि वह किसका बच्चा है - वह अत्यन्त सहज भाव से कहती है - 'कुकी जिस दिन पेट में आयी थी उस दिन तुम दोनों ने ही -------------------।'[2]

इतना ही नहीं, पति की अनुपस्थिति में वे दोनों पति का मजाक भी उड़ाते हैं।

१- पटरियां - भीष्म साहनी - पृ० - १४५
२- पहला कदम - दूधनाथ सिंह - पृ० ४६

महीप सिंह की कहानी 'सीधी रेखाओं का वृत्त' की 'सवी' विवाह से पूर्व विवाहित पुरुष से शारीरिक सम्बन्ध रखना चाहती है पर तब वह विवाहित पुरुष उसे मना कर देता है किन्तु कालान्तर में जब 'सवी' दूसरी जगह विवाह कर लेती है तो वही प्रेमी उसके पास दिलचस्पी दिखाने आता है किन्तु 'सवी' उसे फटकार सुनाती है -

'तुम समझते हो तुमने दिलचस्पी दिखाकर कोई बहुत बड़ा उपकार किया था मुझ पर? पर यह तो मैं जानतीं हूँ कि तुम्हारी कितनी दिलचस्पी थी मुझमें। तुमने मुझे कुचला था, दुत्कारा था, अपमानित किया था। तुम समझते हो, तुम बड़े महान हो। तुम किसी के साथ कैसा भी व्यवहार कर सकते हो -------------------- तुम समझते हो, मै अभी भी तुम्हारे पीछे उसी तरह दुम हिलाती घूम रही हूँ। तुम्हारी कही हर बात भगवान् का वचन मानकर सिर चढ़ाये फिर रही हूँ ---------।'[1]

दूसरी ओर पुरुष द्वारा पर-स्त्री से सम्बन्ध पर भी आधुनिक नारी अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करती मिलती है। दूधनाथ सिंह की 'रीछ' की पत्नी पति के पर- स्त्री सम्बन्धों को जानकर न केवल पति को प्रताड़ित करती है बल्कि एक खूंख्वार महिला का रूप धारण करती है। इतना ही नहीं, वह जानती है कि उसका पति अन्य स्त्री में क्यों आसक्त है। इसका कारण पुरुष की भ्रमर वृत्ति को मानती है। वह यह भी सोचती है कि उसने पति के समक्ष सर्वस्व समर्पण कर भी गलती की है - इसीलिए तो अब उसके प्रति पति के मन में कोई आकर्षण नहीं है। पर वह स्त्री की स्थिति पुरुष से सर्वथा भिन्न मानती है। उसी के शब्दों में - -------------तुमने मुझे---------तुमने मेरा सब कुछ --------------मैं जानती हूँ। अब मुझमें क्या आकर्षण होगा। एक ही चीज -----------हमेशा वही, ---वही-------। लेकिन तुम लोग हमेशा नयी - नयी चीज के पीछे ही भागते फिरते हो जी। --------------स्त्री हमेशा अधिक नैतिक होती है। उसका अपना पुरुष ही उसे रोज ही नया लगता है।'[2] फिर वह रात दिन अनुभव कर रही आत्मग्लानि को पति से ही इस प्रकार व्यक्त करती है -'तुम सोचते होंगे मैं कितनी गन्दी हूँ। कितनी गलीज बातें मुंह से निकालती हूँ। हर औरत ऐसे ही सोचती है। -------अगर उसे मालुम हो जाये तो वह तुम्हें कभी क्षमा नहीं करेंगी ------ मैं जूटन अपने अन्दर नहीं ले सकती। -----लेकिन अगर ऐसा है या ऐसा हुआ तो -------मैं ----------तो मैं पता नहीं ------------ओफ। ---------तुमने मुझे कितना छोटा और अपाहिज कर दिया है।'[3]

जिस प्रकार अज्ञान, कामेच्छा, विलम्ब से विवाह या आर्थिक संकोच के कारण विवाह से पूर्व नारियां शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं उसी प्रकार विवाह के उपरान्त भी पति या परिवार की यातनाओं, यौन असन्तुष्टता, पति का अन्य स्त्री से सम्बन्ध या पत्नी के प्रति अनाकर्षण या पति का षण्ढ़त्व, या बेकारी या विपन्नता या पद -प्रतिष्ठा या अर्थ की लोलुपता आदि के कारण भी पर - पुरुष से सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं।

शैलेश मटियानी की 'तीसरा सुख' की पत्नी बच्चे की मां बन जाने के बाद भी पर पुरुष से इस प्रकार का शरीर सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है जहां उसे चरित्र हीन होने का लांछन भी न लगे और एक नये सुख का अनुभव हो सके। इसके लिए वह एक अन्धे को चुनती है और उसे स्वयं को २१ वर्ष की कुवांरी बता कर उससे संभोग करती है और यह भी डरती जाती है कि कहीं वह अन्धा भी न कह दे कि 'तू तो कहती थी, कुंवारी हूँ, जवान हूँ, बिना बच्चो की हूँ मगर मेरे को तो तू कोई खूब खेली खाई हुई औरत लगती है !--------तेरी बच्चों वालीं औरतो की तरह --------।'[4]

१- मेरी प्रिय कहानियां - महीप सिंह- पृ० -३३
२- पहला कदम - दूधनाथ सिंह - पृ० - १५३
३- वही - पृ०
४- तीसरा - सुख - शैलेश मटियानी - पृ० - १२

इतना ही नहीं, वह यहां तक सोचती है कि यदि अन्धें को हकीकत का पता चल गया तो या तो वह अन्धे का गला घोट देगी या स्वयं आत्महत्या कर लेगो। पर पुरुष से सम्बन्ध रखते हुए अब भी नारी दुख, यातना, आशंका, विक्षोभ, ग्लानि, विस्मृति आदि सभी बातों से पीड़ित एवं ग्रस्त मिलती है। पुरुष की उपेक्षा से पीड़ित या पुरुष के साथ प्रतिस्पर्द्धा की भावना से ग्रस्त होकर नारी भोगवादी स्वच्छन्द प्रवृत्ति की ओर बढ़ती है।

उषा प्रियम्वदा की 'कितना बड़ा झूठ' की किरण अपने पति से झूठ बोलती है और पति की उपेक्षा करते हुए स्वच्छन्द भोग में प्रवृत्त होती है। इसीप्रकार द्विप की पत्नी भी स्वच्छन्द भोग में प्रवृत्त होती है और अपने पति से साफ - साफ कह देती है कि वह अपने 'एफेयर' अपने आप 'कण्डक्ट' करेगी। दूधनाथ सिंह की 'रक्तपात' की पत्नी परिवार में पति की अन्धी मां के सामने स्वच्छन्द रूप से भोग में प्रवृत्त होना चाहती है और पति के मना करने पर कहती है उसे (मां को) दिखता थोड़े ही है।

कृष्ण बलदेव वैद की 'त्रिकोण' कहानी की पत्नी पर पुरुषों एवं पति के दोस्त से भी शारीरिक सम्बन्ध रखती है और यह सम्बन्ध वह इसलिए नहीं रखती कि वह अतृप्त है या पति पर उसे विश्वास नहीं है या पति उसे प्यार नहीं करता बल्कि वह सब इसलिए करती है कि 'हर पत्नी कहीं न कहीं अपने पति को गहरी चोट पहुंचाने की ख्वाहिश दबाए रहती है। जरूरी नहीं कि उसे (पत्नी को) कोई खास शिकायत हो, या किसी दूसरे आदमी से कोई खास लगाव। वह यह भी समझती है कि उसे कोई खास आवश्यकता नहीं थी इस प्रकार के पर- पुरुष सम्बन्ध की। फिर भी वह पर - पुरुष सम्बन्ध में लिप्त होती है यह जानते हुये भी कि ' वह मेरे पति का दोस्त है, कि उसकी अपनी पत्नी है, कि उसकी पत्नी से अगर मेरी दोस्ती नहीं तो दुश्मनी भी नही, कि अगर मेरा पति उस समय आकर हमें पकड़ ले तो उसे बहुत चोंट पहुचेगी।'[१] पर पुरुष भी उस स्त्री के प्रति यों ही बात की बात में आकर्षित हो जाता है। उसके पहले लगभग पांच वर्षो से उसे जानता है, कोई बहुत खूबसूरत भी नहीं, अनगिनत बार अकेले होने का अवसर भी मिल चुका है, साथ - साथ घूम -फिर भी चुके हैं, यह भी नहीं कि उस रोज से पहले कभी उसके बारे में कोई ख्वाहिश न उठी हो।' ख्वाहिश किस औरत के बारे में नहीं उठती । खुद अपनी बीबी के लिए भी तो कभी कभी जिस्म बेहाल हो ही जाता है।'[२]

और अन्त में पति की प्रतिक्रिया से कहानी समाप्त होती है। वह स्वयं को सामान्य पुरुषों से भिन्न सिद्ध करता दिखता है जिसने अपनी पत्नी के अपने दोस्त के साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाने की स्थिति को स्वयं अपने नेत्रों से किन्तु अविचल भाव से देखा है। वह खुश है या खुश रहना चाहता है - वह उस दृश्य की जानकारी की बात या उस पर अपनी कोई प्रतिक्रिया पत्नी को भी व्यक्त नहीं करना चाहता ---- क्योंकि वह सिद्ध करना चाहता है कि वह उन दोनों (पत्नी और मित्र) से ऊँचा है, सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता --- बताने से सब कुछ बदल जायेगा इसलिए भी वह बताना नहीं चाहता---------।

'मैं कहना यह चाहता हूँ कि उन्हें (उस स्थिति में) देखकर मुझे हैरानी तक नहीं हुई थी, महसूस हुआ था कि जो हुआ, हो रहा है, टीक ही तो है, कि वे दोनों मेरी इस प्रतिक्रिया को नहीं समझ पायेंगे और मैं कभी उन्हें शर्मिन्दा होने का अवसर नही दूंगा, इसलिए नहीं कि मैं उन्हें चोट नहीं पहुंचाना चाहता बल्कि इसलिए कि वे, और खास तौर पर मेरी पत्नी, मुझे जिन सांचों से मापना चाहेंगे मैं उनसे बड़ा हूँ, सो मैं खुश हूँ कि मैं कम से कम अपनी नजर में उस तथाकथित कड़ी अजमाईश से बेदाग वच गया हूँ, कि मैं अनासक्त हूँ --------------।'[३]

इस त्रिकोण कहानी में पति, पत्नी और प्रेमी के तीन दृष्टिकोण ही त्रिकोण हैं। तीनों जीवन में काम सम्बन्धों को

१- मेरी प्रिय कहानियां (त्रिकोण) - कृष्ण बलदेव वैद - पृ० ६४
२- वही - पृ० - ६१
३- वही - पृ० - ६७

सरल ढंग से लेते हैं- शुद्ध क्रीड़ा रूप में। उन्मुक्त सेक्स के प्रति यह उदार दृष्टिकोण परिस्थितिवश भी बनता जा रहा है, जिन परिस्थितियों पर किसी का वश नहीं है इसलिए उन्हें ही सामान्य स्थिति मानकर जीने की प्रवृत्ति भी समाज में दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है - त्रिकोण उसी दृष्टिकोण का चित्रण करता है।

उनकी एक दूसरी कहानी 'दूसरे का बिस्तर' में विनोद सिन्थिया के साथ विस्तर पर एक दम नग्न लेटा है। यह विस्तर उसका नहीं है पर उस पर वह जबरन नहीं आया। सिन्थिया ने ही उसे फोन कर बुलवाया है - 'आज कई घण्टे तक अकेले हूँ - आना चाहो तो आ जाओ।' और विनोद अपने को रोक नहीं सका क्योंकि दोनों ही कई दिनों से कोई महफूज जगह की तलाश में थे। सिन्थिया भी केवल नारी सुलभ प्रवृत्ति से ना नुच करती है किन्तु शीघ्र ही एकान्त मिलन का लाभ उठाने के लिए उतावली हो जाती है - वह स्वयं अपने कपड़े उतारने लगती है यद्यपि वह तब भी कहती रहती है - 'नहीं, विनोद , यहां नहीं।'

सब कुछ हो जाने के बाद भी सिन्थियां विनोद से कहती है - तुम्हें आना नहीं चाहिए था और विनोद सिन्थिया से कहता है - तुम्हें फोन नहीं करना चाहिए था।

निश्चय ही सिन्थिया का एक सुन्दर सजा - सजाया घर है, पति है, पुत्री है और उसके अपने उद्दाम काम - संवेग हैं। उसे वह रोक नही पाती और क्षण का उपभोग करना चाहती है - डर कर ही सही।

ज्ञान रंजन की 'हास्य रस' कहानी में प्रेमी - प्रेमिका जैसे ही कोर्ट में प्रेम विवाह करके निकलते हैं उनकी मनोदशा बदल जाती है - प्रेमी प्रेमिका की पत्नी के रूप में जिम्मेदारी निभाने में घबराता है। प्रेमिका भी पत्नी रूप में अनेक यातनाएं सहन करती है।

आधुनिक कहानियों में दाम्पत्य जीवन के विविध रूपों की तरह नारी के मातृत्व के भी अनेक रूप मिलते हैं। प्राचीन परम्परागत रूढ़ियों से ग्रस्त मां चाहते हुए भी अपने आधुनिक बच्चों से तालमेल नहीं बिठा पाती। आधुनिकता में व्यस्त बच्चे चाहकर भी मां को वह स्नेह नहीं दे पाते जितना उन्हें देना चाहिए। पत्नी भी अधिक से अधिक समय अपने लिए चाहती है। नव युवक और नवयुवतियां अधिक से अधिक समय अपना बनाये रखना चाहते हैं उनमें माता - पिता आवश्यकता वश नहीं, अनावश्यक या मजबूरी वश प्रवेश पाते हैं। नारी भी मां के रूप में अपनी भूमिका पूरी तरह नहीं निभा पाती - उसके बच्चे उसी से उपेक्षा पाते हैं। पत्नी बन कर वह सास - श्वसुर की उपेक्षा करती हैं और मां बन कर पुत्रो की। इतना ही नहीं वह पति की भी उपेक्षा करती मिलती है।

मन्नू भण्डारी की 'मजबूरी', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', दूधनाथ सिंह की 'रक्तपात', रवीन्द्र कालिया की 'त्रास' और निरूपमा सेवती की 'खामोशी को पीते हुए' में नारी के मातृ रूप के विभिन्न पक्ष उजागर हुए हैं।

'चीफ की दावत' में लड़का चीफ के लिए घर में दावत आयोजित करता है कि उसे प्रमोशन मिल जाय। इस दावत की व्यवस्था में उसे अपनी बूढ़ी मां ही असभ्यता एवं असंस्कृति का प्रतीक लगती है। बेटा चाहता है कि कम से कम उस दिन मां का अस्तित्व तिरोहित हो जाय। वह उन्हें घर के अनुपयोगी एवं व्यर्थ सामान की तरह इधर - उधर कहीं पटक देना चाहता है ताकि साहब की नजर उस पर न पड़े। वह चाहता है मां उस शाम जल्दी खा ले पर मां कहती है कि जिस दिन घर में मांस मछली बने उस दिन वह कुछ नहीं खाती। फिर वह साहब के आने पर कहां छिपी रहे इसकी बात अपने ही बेटे से सुनकर अवाक रह जाती है। बेटा कहता है कि वह जल्दी सो न जाय क्योंकि सोने में वह जोर - जोर से खर्राटे लेने लगती है। मां असमर्थता बताती है कि पिछली बीमारी के बाद से वह नाक से सांस नहीं ले पाती।

बेटा जिस प्रमोशन में मां को बाधक समझता है उसी मां द्वारा गाया गया लोक गीत उसके प्रमोशन का कारण बनता है। इस भौतिक लाभ प्राप्ति से बेटे की भौतिक आंखें मां के प्रति खुलती हैं और उसकी नजर में मां का मूल्य बढ़ जाता है।

आर्थिक पहलू के कारण उत्पन्न होती विषम परिस्थितियाँ :-

नौकरी - पेशा महिलाओं के समक्ष किस प्रकार की विषम स्थितियां उपस्थित होती हैं यह स्वयं सरकारी सेवा में रत सुमति अय्यर ने बड़े सुन्दर ढंग से अपनी 'वजूद' कहानी में प्रस्तुत किया है। इस कहानी की वसुधा घर - परिवार के बन्धनों से बंधी रहकर किस प्रकार प्रायः कार्यालय देर से ही पहुंच पाती है और उसके कारण सहकर्मियों और अधिकारियों की दृष्टि में खिलवाड़ का साधन बन जाती है -'कुर्सी पर बैठ जाने मात्र से आदमी जैसे पूरी तरह से दूसरों के 'कैरियर' के साथ खिलवाड़ करने के लिए स्वतन्त्र हो जाता है। खास कर जब छोटी कुर्सी से होता हुआ बड़ी कुर्सी पर कोई पहुंचा हो।'[1]

जहां वसुधा अपने बेटे को घर पर छोड़कर नौकरी करने में कष्ट अनुभव करती है वहीं मिसेज कपूर अपने बच्चे को रोता -बिलखता आया के हवाले कर भी दुखी नहीं होती। वसुधा यह नहीं कर पाती। वह मिसेज कपूर की तरह अपनी इच्छाओं की पूर्ति भी नहीं कर पाती - सारे जीवन वह अपनी इच्छाओं को मारती चली आयी है - यहां तक कि मिसेज कपूर की तरह मन पसन्द साड़ी भी खरीद नहीं पाती - वह उसे मंहगी लगती है, यद्यपि वह कमा रही है। ईमानदारी की चक्की में पिसते -पिसते पिता परलोक सिधार गए थे - मां तीन बच्चों का पालन - पोषण करने की जिम्मेदारी लेकर सदा - सदा के लिये शान्त हो जाती हैं - जैसे कुछ बोलना जानती ही नहीं। मां के उत्तरदायित्व के कारण वह प्रशान्त से जुड़ना नहीं चाहती थी पर प्रशान्त ने प्रलोभन दिए - मां का उत्तरदायित्व निभाने का भी आश्वासन दिया था पर अब विवाह कर लेने के बाद वह बात नहीं रह गयी थी। अम्मा न पहले कुछ बोली थीं न बाद में । वे तो दिन भर अन्धेरी बन्द कोठरी में बन्द रहतीं- खिला दिया तो खा लिया वरना कभी नहीं मांगती। फिर विवाह कर प्रशान्त वसुधा को भी अपनी नौकरी के साथ दिल्ली ले गया था - मां से दूर। शुरू के दिन प्रशान्त का प्रेम और लगाव बढ़ा रहा पर वही प्रशान्त अब उससे दूर - दूर रहने लगा था - एक घर में भी दूर - दूर। फिर प्रशान्त ने भाई बहिनों के नाम प्रति माह भेजे जाने वाले तीन सौ रूपयों में भी कटौती करने का निर्देश दे डाला। पर वसुधा यह भी कभी पूछने का साहस नहीं जुटा पायी कि तुम जो घर वालों के कर्तव्य के नाम पर एय्याशी के लिए भेज सकते हो, वह भी मेरी अपनी तनख्वाह। तो क्या मैं आवश्यकताओं के लिए अपने घर वालों को नहीं भेज सकती ? कौन सा संस्कार, कौन सा अहं आड़े आ रहा है ? यही न कि वह पुरुष है और वह महज उसकी व्याहता पत्नी।'[2]

इतना ही नहीं वसुधा यह बखूबी जानती है कि पूछने के बाद फिर दरार छिटकने में देर न लगेगी। फिर दोनों के बीच एक तीसरा गुड्डू पैदा हो गया था और यह लगने लगा था कि बच्चे के हो जाने से बीच की दूरी कम हो जायेगी। पर वैसा कुछ नहीं हुआ। प्रशान्त दिन प्रति दिन खूंख्वार होता चला गया।

'प्रशान्त सिर्फ जीना चाहता है, इसलिए कि वह पुरुष है और वह महज एक औरत। उसके अनुसार औरत की कोई हैसियत नहीं होती। प्रशान्त के निर्णय उसकी जिन्दगी की घटनाओं में शुमार हो जाते हैं। निर्णय वह लेता रहेगा और वह उन्हें ढोती रहेगी।'[3]

वसुधा के धैर्य का बांध तब टूट जाता है जब प्रशान्त उसे नौकरी छोड़ देने का निर्देश देता है। उसे लगा - 'अपने को पहचानने की कोशिश उसे नये सिरे से करनी होगी। कहां तक प्रशान्त को ही जीती रहेगी ? उसके रिश्तों को कब तक जीती रहेगी ? अपने को एक अलग इकाई के रूप में अगर जीना शुरू करेगी तो वह बखूबी जानती है कि प्रशान्त का अहं उसे सहन नहीं कर पायेगा और शायद जीवन की कुछ तब्दीलियों से गुजरना होगा। पर अपना वजूद तो बचा सकेगी न।

१- शेष संवाद में संकलित 'वजूद' कहानी -सुमति अय्यर - पृ० -१३८

२- वही - पृ० - १४६

३- वही - पृ० - १५१

'वजूद' नारी के इसे 'वजूद' के बचाने के लिए संघर्ष की कहानी है। आज की नारी इसी तरह के क्रान्तिकारी निर्णय लेने के लिए बाध्य है।

शैलेश मटियानी की 'अतीत' कहानी की विधवा नायिका के माध्यम से नारी जीवन के उस पक्ष को उजागर किया गया है जिसमें नारी को अपने अस्तित्व का बोध होता है। विनीता नाम की यह विधवा विवाह से पूर्व भी और विवाह के बाद भी और विधवा होने के बाद भी अनेक पुरुषों के सम्पर्क में आती है जिनसे वह अनुभव सम्पन्न बनती है। इस पर आगे विस्तार से विचार किया गया है।

नारी को स्वतन्त्र निर्णय के लिए स्वतन्त्र एवं सतत चिन्तन कितना आवश्यक एवं अपरिहार्य है यह बात समझने में जितना विलम्ब किया जाता रहेगा उतनी ही नारी स्वावलम्बन एवं नारी प्रतिष्ठा की आशा धूमिल बनी रहेगी।

नारी को इस नियति से मुक्त होना है और इसके लिए उसे भी त्याग एवं बलिदान करना होगा - अपनी आकांक्षाओं आदतों आदि का। उसे स्वयं नाचना बन्द करना होगा या सौन्दर्य की कठपुतली बनने का प्रलोभन त्यागना होगा तभी वह कठपुतली की तरह नचाये जाने से बच सकेगी। जब तक वह सौन्दर्य प्रसाधनों, सुन्दर - सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणों के प्रलोभन में फंसी रहेगी या विलासमय जीवन जीने की आकांक्षा से ग्रस्त रहेगी तब तक उसे 'माडल गर्ल' बनाया जाता रहेगा। नारी के अंग प्रदर्शन को किसी भी बहाने से उचित मानने का आज जो फैशन सा चल पड़ा है वह स्वयं में ही उसे प्रदर्शनी अतएव खरीद की वस्तु बनाता है - उसे नारी नहीं बने रहने देता। यह बात नारी को समझने में जितना अधिक समय लगेगा उतना ही समय उसे सच्ची स्वतन्त्रता, सच्चा स्वावलम्बन प्राप्त करने में लगेगा।

आठवें दशक और नवें दशक में प्रकाशित कहानियों में भी नारी के इसी प्रकार के शोषण के अनेक चित्र मिलते हैं जिनमें से कुछ का विवरण आगे के पृष्ठों में दिया जा रहा है।

डा० महीप सिंह ने आठवें दशक की श्रेष्ट कहानियों का संकलन वर्ष प्रतिवर्ष के आधार पर प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। उसे पक्षपात पूर्ण होने के प्रवाद से परे भले न माना जाय पर प्रशंसनीय अवश्य है। सन् १६८० की १७ श्रेष्ट कहानियों के उनके ऐसे ही संकलन में दिनेश पालीवाल की कहानी 'अपने - अपने जंगल' को भी स्थान मिला है।

इस कहानी में आदिवासी क्षेत्र में निरीह, अबोध एवं परिस्थिति - पीड़ित नारियों के खुले शोषण का 'जंगल राज्य' चित्रित किया गया है। कथानक के प्रारम्भ में ही नालेमेंफंसी भैंस के शरीर से चिपकी जोकों के कारण उसके छटपटाने एवं इधर - उधर उछल -कूद मचाने के प्रतीकात्मक चित्रण द्वारा इसे सुन्दर अभिव्यक्ति दी गई है। जोंके भैंस के बदन को चूसती ही रहती हैं और सभी प्रयत्नों के बाद भी वह जोकों से स्वयं को बचा नहीं पाती क्योंकि सम्भवतः वह गलती से या प्रलोभवश गन्दे नाले में फंस गयी है या फंसा दी गई है।[1]

इतना ही नहीं के० नारायण जैसे रिसर्च स्कालर के माध्यम से मनुष्य के भी जानवर की तरह ही व्यवहार करने पर भी करारा व्यंग्य किया गया है।

के० नारायण इस जंगल में 'जंगली जानवरों के व्यवहारों का और उनके परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन कर रहा है। परन्तु वहां जानवरों की तरह ही रोचक आदमी भी हैं, वह भी जानवर ही है या जानवरों की तरह व्यवहार करता है। के० नारायण सोचता है - 'काश, रिसर्च गाइड महोदय इस जंगल के जानवरों के साथ ही आदमियों के भी व्यवहार का अध्ययन करने का काम मुझे सौंप देते। मैं उन्हें बताता कि आदमी और जानवर में कुछ अधिक भेद नहीं।'[2]

१- १६८० की श्रेष्ट हिन्दी कहानियों - डा० महीप सिंह- पृ० ४४
२- वही - पृ० - ४६

वह बताता है कि जानवरों में केवल सियार धूर्त और चालाक होता है किन्तु मनुष्यों में भी खूंख्वार सियार होते हैं यहाँ तक कि आदमखोर भी।

ऐसे लोग आदिवासी लड़कियों के पारखी हैं - जवान और सुन्दर लड़कियों को बहका - फुसला कर उड़ा ले जाते हैं और दूर - दराज के शहरों में बेच आते हैं।

लेकिन शहर से जीप पर साहब के साथ आई महिला जिसे के० नारायण यह सब बताता है स्वयं साहब की वैध ाानिक पत्नी नहीं है, उसके साहब स्वयं उसका शोषण कर रहे थे और अब उससे काफी उदासीन थे क्योंकि उसमें कोई रस बाकी नहीं रह गया समझते थे या कम से कम उनके लिए उसमें कोई रस बाकी नहीं रह गया था। के० नारायण ऐसे वी० आई० पी० लोगों को भी जंगलों के आदमखोर कहता है। इतना ही नहीं जो शोध वह स्वयं कर रहा है उसका श्रेय निदेशक महोदय स्वयं लेकर उसका भी शोषण कर रहे थे।

वहां जंगली जानवरों से उतना डर नहीं है जितना दो पैर के जानवरों से है।

कस्तूरी मृग के प्रतीक द्वारा यह बताया गया है कि मानव किस प्रकार उनकी निर्दयता से हत्या कर रहा है। कहानी का अन्त इन शब्दों से होता है -

'नारायण को न जाने क्यों उस जंगल में पत्तियों के सड़ने और जलने की तीव्र दुर्गन्ध अनुभव होने लगी थी। कस्तूरी मृग अब शायद नहीं बचाये जा सकते। उनकी गन्ध शायद अब हमेशा - हमेशा के लिए खत्म हो जायेगी। गन्ध ही नहीं शायद वह एक दूसरे को जोड़े रहने वाली प्यार भरी मोहक सम्बन्ध - सुगन्ध भी खत्म हो जायेगी, जिसके बिना मनुष्य का जीवन भी केवल एक औपचारिक सम्बन्धों वाला जीवन भर रह जायेगा - अर्थहीन बेकार।'[1]

पुरुष प्रधान भारतीय समाज में जिस प्रकार पुरुषों का नारी मुक्ति आन्दोलन के क्षेत्र में प्रमुख भूमिका निभाना स्वाभाविक था क्योंकि तब तक नारी परदा प्रथा और पारिवारिक प्रतिबन्धों से पूरी तरह जकड़ी हुई थी, उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी पुरुषों द्वारा ही नारी मुक्ति का आन्दोलन प्रारम्भ किया जाना स्वाभाविक था क्योंकि तब तक महिला साहित्यकार उंगलियों में ही गिनने योग्य थीं। यह स्थिति हिन्दी कहानी के क्षेत्र में भी रही। तथापि, हिन्दी कहानियों के विकास के साथ महिला कहानीकारों की संख्या भी बराबर बढ़ती गयी। यह अन्य कारणों के अतिरिक्त नारी - शिक्षा के प्रसार के कारण भी सम्भव हो सका। शिक्षा जगत में भी महिलाओं की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती गयी और उससे जुड़ी अनेक महिलाओं ने हिन्दी कहानी के क्षेत्र में सफल प्रयास किया।

नारी की सामाजिक चेतना का प्रामाणिक चित्रण नारी द्वारा :-

अब तक कहानीकारों का पुरुष वर्ग ही नारी की समस्याओं को प्रमुख रूप से उठा रहा था जिसकी प्रामाणिकता और पक्षपात रहितता ही पूरी तरह असन्दिग्ध नहीं थी - प्रामाणिकता इस अर्थ में सन्दिग्ध थी कि नारी मन की वास्तविक स्थिति का पुरुष वर्ग केवल अनुमान ही लगा सकता था और पक्षपात रहितता इस अर्थ में सन्दिग्ध थी कि पुरुष प्रधान नारी को उतनी स्वतन्त्रता देने की मानसिकता नहीं बना पा रहा था जितनी वह स्वयं अपने लिए चाहता रहा है और अब भी चाहता है । इस दृष्टि से महिलाओं की समस्याओं पर, उनकी मानसिक उन्मुक्तता - स्वतन्त्रता की सीमाओं का सही -सही आकलन नारियों के द्वारा ही सम्भव है क्योंकि नारी ही पीड़ित एवं प्रताड़ित रही है, पिंजड़े में उसे ही कैद रखा गया है। उसे स्वतन्त्रता देने का दावा करने वाला पुरुष वर्ग कहीं उसे अब तक 'पर काट कर उड़ने की मुकम्मल आजादी तो नहीं दे रहा था? कौन जाने ? इसलिए जब 'शिकार' और 'शिकारी' में से किसी के बयान को अधिक प्रामाणिक मानना हो तो निश्चय ही वह शिकारी का बयान न होकर 'शिकार' का ही बयान होगा। किसी शायर ने ठीक ही कहा है -

---

१- १९८० की श्रेष्ट हिन्दी कहानियाँ - डा० महीप सिंह- पृ० ५८

मजा तब था जो वे सुनते मुझी से दास्तां मेरी ।
कहां से लायेगा कातिल बयां मेरा जुबां मेरी ।।

निश्चय ही नारी मन का सही और प्रामाणिक चित्रण नारी द्वारा ही सम्भव है। इसलिए यद्यपि ऊपर के अनुच्छेदों में कुछ महिला कहानीकारों की रचनाओं को उद्धृत किया गया है किन्तु वह नारी की सामाजिक चेतना को पूर्णतया एवं प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत कर सकी हैं या नहीं, कहा नहीं जा सकता क्योंकि वे पुरुष - प्रभुत्व से प्रभावित भी हो सकती हैं और परिवार - प्रभुत्व से या पति - प्रभुत्व से भी।

किन्तु यह अत्यन्त सुखद स्थिति है कि कुछ आधुनिक महिला कहानीकारों ने न केवल नारी मन का उन्मुक्त चित्रण किया है बल्कि उनकी समस्याओं का प्रामाफिक एवं व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त कर भी कहानियाँ लिखी है और इसीलिए उनका अलग महत्व है। इनमें से कुछ कहानियों पर दृष्टिपात कर लेना उचित होगा।

आधुनिक नारी की एक बहुत गम्भीर समस्या उसका उच्च शिक्षा ग्रहण करने में लगने वाले अत्यधिक समय और तत्पश्चात् स्वावलम्बन या आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने के प्रयास में लगने वाले समय, दहेज दे सकने में माता - पिता की असमर्थता या एकाकी परिवार में पले होने के कारण आवश्यक बने पारिवारिक उत्तरदायित्व जैसे कि वृद्ध या असमर्थ या दिवंगत या विकलांग माता - पिता, भाई - बहिन के उत्तरदायित्व का वहन करने में लगने वाले समय या स्वयं की शारीरिक विकलांगता या कुरूपता आदि के कारण विवाह होने में कठिनाई उत्पन्न होने की है। इसके कारण उसमें कुण्ठा, अवसाद, विक्षोभ आदि के कारण अनेक विकृतियों का जन्म होता है। इनमें से कुछ का चित्रण इन महिला कहानीकारों ने किया है।

सही अर्थो में नारी की सामाजिक चेतना का विकास स्वातन्त्र्योत्तर काल में ही सम्भव हो सका। इसमें संविधान द्वारा प्रदत्त वाणी एवं विचार की स्वतन्त्रता के साथ ही साथ वैधानिक (कानूनों) द्वारा प्रदत्त अधिकारों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। शिक्षा के प्रसार के साथ - साथ संयुक्त परिवार के विघटन ने भी नर - नारी को निकट लाने में सहयोग प्रदान किया। इससे उन्हें एक दूसरे को परिपक्व बुद्धि से समझने का मौका मिला और स्वतन्त्र या निर्मुक्त आचरण का भी। वे विचार और भावना का सन्तुलित ढंग से उपयोग करने के लिए स्वतन्त्र हो गए। इसके दो पक्ष हो गए - या तो वे इसका सदुपयोग करते या दुरूपयोग। दुरूपयोग के लिए पुरुषों के समक्ष पर्याप्त अवसर उपलब्ध हो गए। अतः स्वभावतः नारी ने भी उसका खुलकर प्रतिकार करना प्रारम्भ किया या प्रतिक्रिया स्वरूप स्वच्छन्द आचरण प्रारम्भ किया। नारी या तो प्राचीन संस्कारों से जुड़ी रही या नवीन से या फिर दोनों से ही। आधुनिक कहानियों में उसके इन सभी रूपों का चित्रण मिलता है जो निश्चय ही नारी की सामाजिक चेतना का पुष्ट प्रमाण है। इस दृष्टि से कुछ कहानियों पर दृष्टिपात करना उचित होगा।

आधुनिक नारी को एक ओर अपने अस्तित्व की खोज करनी पड़ी है और दूसरी ओर पति, परिवार एवं परिवेश से सामंजस्य भी बैठाना पड़ा है। उषा प्रियम्बदा की कहानी 'मोहबन्ध' की नीलू और अचला - दोनों सखियां स्वतन्त्र रूप से जीने की लालसा रखती हैं और दोनों विचार और भावना के द्वन्द्व से जूझती भी हैं। नीलू की दृष्टि में पुरुष का कोई अस्तित्व नहीं है - उसके जीवन में अनेक पुरुष प्रवेश कर चुके हैं और प्रत्येक से उसे कुछ न कुछ अनुभव भी मिलें है। वह स्वयं विवाहिता होते हुए भी स्वतन्त्र आचरण करती है किन्तु साथ ही पति के प्रति भावात्मक लगाव भी रखती है। वह अपनी सहेली अचला को अपने जीवन में आए पुरुषों के विषय में खुला पत्र लिखती है और इसमें अपनी स्वच्छन्दता का स्पष्ट उल्लेख करती है। वह लिखती है -

'मै बनती नहीं, अब तक मेरे जीवन में अनेक व्यक्ति आए और उनमें से कुछेक के लिए मैंने थोड़ा अनुभव किया ही। ---------------- पर राजन (पति) के सामीप्य के बाद मेरे मन में कुछ कचोटने लगता है कि काश, मैं पूरी और बेदाग इन बाहों में आती - उन सुन्दर और असुन्दर चेहरों के प्रेत मुझे घेरा न करते। मैं सच कहती हूँ, अंचला, अगर

कोई दिन ऐसा आया, जबकि मैने राजन की आंखों में अपने लिए प्यार न पाया, उस दिन मैं मर जाऊंगी।'[1]

इस प्रकार नीलू एक ओर तो स्वच्छन्द जीवन भी जीना चाहती है और दूसरी ओर पति का एकनिष्ठ प्रेम चाहती है। यही स्थिति कुछ समय पूर्व तक, और अब भी पुरुष की बनी हुई है कि वह एक ओर अनेक स्त्रियों से सम्बन्ध रखना चाहता है और दूसरी ओर अपनी पत्नी को एकनिष्ठ भाव से समर्पित नारी के रूप में भी चाहता है। वह विवाह पूर्व अनेक स्त्रियों के शारीरिक सम्पर्क में भी आना चाहता है और अपने लिए विवाह में अक्षत योनि नारी भी चाहता है। चाहे पुरुष हो या नारी - यह दोनों के लिए विडम्बना की स्थिति है। उनके लिए जीवन में विष घोलती है और प्राण घातक बनती है।

दूसरी ओर दूसरी सहेली अचला है जिसे देवेन्द्र से प्यार था पर नीलू ने उससे उसका प्रेमी देवेन्द्र छीन लिया था और उसे अपने प्रेम जाल में फंसा लिया था। बहुत समय बाद वह जब अपनी सहेली नीलू के घर आती है तब उसमें पुराना ईर्ष्या - द्वेष जाग उठता है - वह सोचती है नीलू के कारण ही उसकी जिन्दगी बर्बाद हुई - उसका प्यार छिन गया। वह राजन को नीलू से अलग - अलग कटा - कटा पाती है क्योंकि नीलू की अपनी व्यन्स्तताएं है। अचला - राजन के करीब आ जाती है और दोनों अनुभव करते हैं कि उनका अकेलापन दूर हो सकता है। उनमें इतनी आत्मीयता बढ़ जाती है कि दोनों पिकनिक पर जाते हैं। वहां जाकर दोनों के बीच शारीरिक सम्बन्ध भी हो जाते हैं। अब न राजन नीलू का पति मात्र रहा था और न अचला नीलू की मित्र। नीलू को बीच से हटा, दोनों एक दूसरे को पहचान रहे थे।'[2] किन्तु फिर अचला को लगता है कि राजन उसकी तरफ लगातार खींचा चला आ रहा है। तभी उसके मन में विचार आता है कि राजन नीलू का पति है जो उसकी सहेली है। इस विचार के बढ़ते ही वह राजन से दूरीबनाने लगती है। इस प्रकार वह न अतीत की रहती है और न वर्तमान की।

मंजुल भगत की कहानी 'खोज' की नायिका नीलिमा विवाहिता, शिक्षित और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी है किन्तु वह अपनी अस्मिता की खोज में व्यस्त है। वह अपनी जिन्दगी को अपने अनुरूप नहीं जी पाती। वह सोचती है - 'कभी तो ऐसा लगता है, जैसे उसका कोई निजी अस्तित्व नहीं, मिसेज वर्मा, नीलिमा, नीलू सब अलग - अलग नाटक में किए गए 'रोल' हैं। उसके अन्दर का जो मैं हैं, उसका 'रोल' क्या है ? दफ्तर, मां - बाप, यहां तक कि घर की धोबिन, जमादारिन, कहारिन, सभी ने उसे एक व्यक्तित्व बख्श दिया है, जिसके अनुकूल होकर उसे जीना पड़ता है। लगता है मानों नीलिमा सदा दूसरों के माध्यम से जीती आई है -------------- लकीर पीटते - पीटते वह भूल ही गयी है कि कुछ नया भी उससे हो सकता है।'[3]

इसी प्रकार अचला शर्मा की कहानी 'मुझे खोल दो' की नायिका में भी स्वतन्त्र रूप से जीने की उत्कट लालसा है। वह अपनी वैयक्तिक चेतना का एहसास करवाना चाहती है। उसका कथन है - मैं वाकई हूँ, पर लोग इसे स्वीकार नहीं करना चाहते। कितने भयानक रूप में मेरे होने का विरोध कर रहे हैं ----------।'[4] उसे अपने अस्तित्व को प्रतिष्ठित करने में समाज की घोर उपेक्षा मिलती है। उसे या तो बेटी बनाये रखा जाता है या बहू और अधिकांश मे तो उसे इन दोनों स्थितियों की भी प्रतिष्ठा नहीं मिलती - न तो उसे बेटी का पद मिलता है न बहू का। बेटी के रूप में भी उसकी उपेक्षा होती है और बहू के रूप में भी। फिर उसके अपने व्यक्तित्व के विकास का और अवसर मिलने का प्रश्न ही कहां उठता है। यह उसकी कैसी स्वतन्त्रता तथा समानता है ? यह तो उसके विकास को अवरूद्ध करने का सुनहरा जाल है। वह अब परिवार में बेटी या बहू बन कर ही नहीं रह जाना चाहती इसलिए अचला शर्मा की नायिका कहती है - 'किन्तु यह क्यों नहीं समझते कि मैं बड़ी हो गई हूँ, मैं, मनिका पटेल यह घोषित करती हूँ कि मैं, उस बेटी से कहीं अधिक बड़ी हो गई हूँ। लेकिन वे अपनी बेटी को मुझ पर आरोपित कर, मुझे झुठलाना चाहते हैं। उनके खुद के चेहरों पर मास्क हैं और वे

१- जिन्दगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियम्वदा - पृ० - ११
२- वही - पृ० - २७
३- गुल मोहर के गुच्छे - मंजुल भगत - पृ० ३-४
४- बर्दाश्त बाहर - अचला शर्मा - पृ० - ७६

उल्टे मेरी हस्ती को नकारना चाहते हैं। -------- कोई ऐसा नहीं है शायद, जो मेरी शिनाख्त के वाद मुझे सिद्ध कर सके। मैं सिद्ध होना चाहती हूँ।------------- अपने बड़प्पन का खाका खींचनें के लिए बड़े चाव से आंखें वन्द करती हूँ। -----------पिता, एक पृथक शरीर के सिवा जिनका और कोई अस्तित्व नहीं है, पिता जो मेरी मां के वताये वाक्यों के माध्यम से अपनी आक्रामक मुद्रा व्यक्त करते समय मुझे बड़े हास्यास्पद लगने लगते हैं।'[1]

'जहां लक्ष्मी कैद है' की लक्ष्मी भी एक छटपटाहट अनुभव करती है - भले ही छटपटाहट उसकी शारीरिक या यौन आवश्यकता की पूर्ति हो - परन्तु है वह प्राकृतिक - उसमें अस्वाभाविकता नहीं है। हां, उसकी भावनाओं, कामनाओं, इच्छाओं का दमन कर उसे दमित काम वासना का शिकार अवश्य बना दिया जाता है जो उसकी विक्षिप्तता का कारण बनता है। ऐसी स्थिति किसी न किसी रूप में हर नारी के समक्ष उपस्थित होती है। कुछ उस स्थिति से समझौता कर लेने में सक्षम हो पाती हैं, कुछ नहीं। किन्तु दोंनों में ही विकृतियां किसी न किसी रूप में परिलक्षित होती हैं। उन्हें प्रत्यक्ष या उजागर रूप में देखा या पहचाना भले न जा सके या देखने पहचानने का प्रयास भले ही न किया जाय।

नारी अव उस स्थिति में पहुंच गयी है जहां वह अपने अस्तित्व को दूसरों द्वारा निर्धारित करने या सीमा -वद्ध कर देने का खुलकर विरोध करने लगी है। इससे वह भावुकता के धरातल को पार कर बौद्धिक चेतना के धरातल पर टिकना चाहती है। वह केवल बाहरी - वेश - भूषा या दिखावे में ही पुरुषों की बराबरी नहीं करना चाहती बल्कि बौद्धिक स्तर पर करना चाहती है। इसलिए उसकी चाल अब गजगामिनी की चाल नहीं है, वह वृषभ कन्ध बनकर, कोमल स्वर छोड़कर कर्कश या पुरुषों की तरह परुष वचन बोलने में संकोच नहीं करती। लज्जा, नम्रता एवं शालीनता को तिलांजलि देकर चीखती - चिल्लाती है ताकि उसकी आवाज भी सुनी जाय और उसकी बात को बहुत समय तक अनसुना न किया जाय। वह पुरुषों की तरह जुडो - कराटे करती फिरती है। भले ही इसमें से अधिकांश वह प्रतिक्रियावश ही कर रही है।

मित्रों मरजानी की तरह वह मर्दानी बनती जा रही है। इससे भले ही उसके नारीत्व का ही लोप क्यों न हो जाय। सचमुच आज की नारी का नारीत्व ही ठीक उसी प्रकार खतरे में पड़ गया है जिस प्रकार पुरुषों का पुरुषत्व।

किन्तु ऐसा नहीं है कि आधुनिक कहानियों में नारी के इसी रूप का चित्रण मिलता है। कुछ कहानियों में उसे प्राचीन परम्परावादी भी चित्रित किया गया है किन्तु वह एक सहन करने की या सामंजस्य बनाए रखने की स्थिति ही है। उसमें व्यक्तित्व का तिरोभाव ही है, विकास नहीं। वह आज के विकासशील युग के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकती।

आज की नारी पति को परमेश्वर न मानकर सहयोगी मानती है तथा उसके साथ - साथ चलना चाहती है - उसकी बराबरी करना चाहती है। पुरुष यदि स्वच्छन्द आचरण कर सकता है तो वह क्यों नहीं? इसलिए वह कभी तो पुरुष को मुंह तोड़ जबाब देने के लिए या उसके सामने दीन - हीन न बनने या समर्पण करने से बचने के लिए ऐसा मार्ग चुनती है या पुरुष की बरावरी करने या उससे भी अधिक स्वच्छन्द बनकर दिखाने के लिए करती है। उषा प्रियम्वदा की ' जाले' कहानी की कौमुदी तो पुरुषों से शत - प्रतिशत समानता का दावा करती मिलती है।[2] वह विवाहित और अविवाहित सभी प्रकार के पुरुषों से मित्रता निभाती है और उनकी पत्नियों से भी। पर वह उनकी पत्नियों से इस बात से चिढ़ती है कि उनका जीवन परम्परागत नारियों का जीवन है जिसकी परिधि संकुचित है, जिसमें असमय वृद्धावस्था है। वह किसी पुरुष की देखभाल करने, उसकी कमीज में बटनों की चिन्ता करने, उसके लिए समय पर खाना बनाने या बनवाने, कपड़े साफ - सुथरे रखने या रखवाने की जिम्मेदारियों में बँध कर ठहरावदार जीवन जीना और असमय बूढ़ी होना नहीं चाहती।

मृदुला गर्ग की 'एक और विवाह' की नायिका कोमल शिक्षित, नौकरी पेशा तथा आधुनिक विचारों वाली नारी है जो विवाह संस्था की उपयोगिता पर ही प्रश्न चिन्ह लगाती मिलती है। वह कहती है - 'मै व्यवस्थित विवाह में विश्वास नहीं करती।

१- बर्दाश्त बाहर - अचला शर्मा - पृ० - ८१
२- जिन्दगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियम्बदा - पृ० - ३०

वह विवाह नहीं, जबरदस्ती किसी का पल्लू पकड़ लेना होता है। दो कारणों से ऐसा करने की आवश्यकता पड़ सकती है, आर्थिक अवलम्बन की खोज या शारीरिक भूख। पहले की कम से कम हमें जरूरत नहीं है और रहा दूसरा, तो उसके लिए विवाह बन्धन की आवश्यकता नहीं। बेहतर है मुक्त प्रेम जो बासी होने पर फेंक दिया जा सकता है ---- जीवन में सेक्स से ज्यादा रोमांस की खोज होती है और व्यवस्थित विवाह का अर्थ है - रोमांस को तिलांजलि।'[1]

कोमल का आधुनिकता के कारण विवाह संस्था को ही नकारना और रोमांस को महत्व देना उतना अस्वाभाविक नहीं लगता जितना प्रौढ़ों या बुजुर्गों का वृद्धवस्था में एक सहारा टूटने के नाम पर विवाह न करते हुए एक समझौता (कान्ट्रैक्ट) साथ रहने आदि के लिए करना। इसे भी मुम्बई जैसे महानगरों में जोर शोर से प्रचलित हुए दो दशक से अधिक हो गया है और अब तो कुमारी माताओं का प्रचलन भी समाज में किसी न किसी मार्ग से घुसने का प्रयास कर रहा है। ऐसी स्थिति उपर्युक्त कहानी की कोमल नामक नायिका के साथ ही नहीं घटित हो रही बल्कि समाज में उसके ढेरो उदाहरण ढूँढे जा सकते हैं कोमल द्वारा उस मानसिकता या सामाजिक चेतना का चित्रण मात्र किया गया है। यहाँ कोमल नारी जनित लज्जा को भी व्यर्थ की चीज या बहुत बड़ी बाधा मानती है। वह कहती है - 'लज्जा ही स्त्रियों का आभूषण है। कोरी बकवास। सेक्स को इतना ढांप कर चलना है तो विवाह की इतनी चीख पुकार क्यों?'[2] लेखिका आगे कोमल के विषय में यह टिप्पणी करती मिलती है - 'स्त्रियों की तरह कोमल को अपने मुख या देह के लावण्य पर गर्व नहीं था। शायद वह जानती भी नहीं थी कि वह सुन्दर है या नहीं। पर गर्व था अवश्य, अपनी स्पष्टवादिता पर, अपने विचारों की स्वतन्त्रता पर, अपनी आडम्बरहीन आधुनिकता पर।'[3]

यद्यपि कहानी साहित्य में नारी के रूप सदैव एक से नहीं रहे किन्तु साठोत्तरी कहानी में नारी का रूप क्षण - क्षण बदलता मिलता है। इसका सबसे प्रमुख कारण नारी को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता प्रदान करने की कोशिश करना है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में और हर व्यवहार में नारी का नया रूप ही नहीं नये - नये रूप सामने लाये गये हैं। नारी को अपराध - बोध, पाप - बोध और महिमा - बोध के बोझ से मुक्त कर दिया गया है और उसके जीवन की हर क्रिया कलाप, हर चिन्तन के बांध खुल गए हैं।

मन्नू भण्डारी की 'उंचाइयां' कहानी की नायिका शिवानी अपने पति के प्रति भी पूर्णतया समर्पित होने का दावा करती है और पुराने वंचित प्रेमी को भी एक रात के लिए तन - दान करती मिलती है। पति के जान जाने पर भी वह न तो पति के समक्ष किसी अपराध बोध से ग्रस्त होती है न क्षमा - याचना करती है, उल्टे उससे तलाक ले लेना उपयुक्त समझती है। 'शिवानी का तर्क कि पति को केवल उसका पत्र चोरी से पढ़ लेने पर ही उसका 'तथाकथित विश्वासघात' ज्ञात हो सकता है - अन्यथा तीन चार महीने की अवधि में पत्नी के व्यवहार में - चरित्र में - कहीं भी कोई अन्तर पकड़ नहीं पाया था जिसका अर्थ है कि पत्नी की शारीरिक एक - निष्ठता अथवा पवित्रता केवल व्यर्थ का हौवा है जिसे पतियों ने अपना अधिकार या एकाधिकार प्रदर्शन के लिए खड़ा किया है - उसमें मनोवैज्ञानिक स्तर पर कुछ भी सार नहीं है। किसी पुरुष को तन दान करने पर पत्नीत्व में, पति के अधिकार में कोई बाधा नहीं आती और पति जब सन्देह करता है - दण्ड देना चाहता है तो नारी सिर उठाकर उस दण्ड को ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाती है। इस सन्दर्भ में नारी का स्वप्न बदला हुआ भी है। पति अपने किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए पत्नी को पर - पुरुष के पास जाने को प्रेरित क्या , किन्हीं - किन्हीं परिस्थितियों में विवश करता है। सुमति अय्यर की कहानी 'घटना - चक्र' (साप्ताहिक हिन्दुस्तान - १९७८) में सुन्दरी अलकनन्दा के मित्र सक्सेना का बेतुका एवं अश्लील आग्रह नहीं रख सकती तो दण्ड स्वरूप उसने उन लोगों के साथ किया हुआ एक व्यापारिक कान्ट्रेक्ट तोड़ दिया। नन्दा ने जब यह घटना अपने 'उन' को बताई तो अपेक्षित

१- कितनी कैदें - मृदुला गर्ग - पृ० - ९८ - ९९

२- वही - पृ० - ७९

३- वही - पृ० - ७९

प्रतिक्रिया के स्थान पर 'उन' के शब्द बिल्कुल कुछ और ही थे - 'एक बात कहूँ अलका - क्या होता अगर उसे चूम ही लेने देती - मेरा मतलब है तुम इतनी माडर्न पढ़ी - लिखी लड़की हो, अब भी उन फिजूल के संस्कारों में बंधी हो।' और यह नारी प्रारम्भिक मानसिक झटके के बाद समझदार हो गयी, लाखों के मालिक की रक्षिता जो थी।'[१]

डा० राम प्रसाद के अनुसार अर्जनशीला नारी आर्थिक रूप से आत्म निर्भर तो हो ही रही है साथ ही वह पुरुष से दब कर नहीं रहना चाहती, उसमें स्वाभिमान की भावना प्रबल हो उठी है। उनके अनुसार 'स्वाभिमानी नारी का जैसा चित्रण साठोत्तरी हिन्दी कहानीकारों ने किया है, वैसा शायद ही कभी पहले हुआ हो। वे डा० पुष्पा बंसल को उद्धृत करते हुए साठोत्तरी हिन्दी कहानी और उसके पूर्व की कहानियों के अन्तर को स्पष्ट करते हैं - 'साठोत्तरी हिन्दी कहानी से पूर्व साहित्य में सर्वत्र नारी भावना के सत्य को कहीं पाप, कहीं अपराध, कहीं व्यभिचार और कही वासना के लाल वृत्त में रखा गया। इस कहानी में नारी को उसके सम्पूर्ण सत्य में पहचानने की चेष्ठा की है और इसमें पर्याप्त रूप से सफल भी हुई है। रांगेय राघव की 'गदल' इस दृष्टि से अत्यन्त सशक्त कहानी है।'[२] वे आगे लिखते हैं - 'नारी के सम्पूर्ण पक्षों का उद्घाटन सही माने में साठोत्तरी कहानी में ही हुआ है। इस काल में लिखी गयी अधिकांश कहानियों में नारी शोषण के विरुद्ध आवाज उठाती है। पुरुषों से समानता की मांग करती है और कुछ हद तक इन्हें सफलता भी मिली। साठोत्तरी हिन्दी कहानी द्वारा सृजित नारी कृपण नहीं है, कायर भी नहीं है, असमर्थ नहीं है और अकर्मण्या भी नहीं है। वह केवल शोषण को स्वीकार नहीं करती। सातवें आठवें दशक की हिन्दी कहानी यह विश्वास दिलाती है कि स्वतन्त्र भारत की नारी इसके ही दर्पण में अपना चेहरा देख - देख कर अपना अभीष्ट पा लेगी।'[३]

साठोत्तरी कहानी की एक अन्य विशेषता सेक्स का खुला चित्रण है। स्वतन्त्रता - चाहे वह नारी के सम्बन्ध में हो या पुरुष के सम्बन्ध में उसने काम - सम्बन्धों को भी असीम स्वतन्त्रता की ओर बहा दिया है। यही कारण है कि साठोत्तरी कहानी में सभी प्रकार के काम सम्बन्धों का बेबाक चित्रण करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। ये काम सम्बन्ध विवाह पूर्व के भी हैं और विवाहोत्तर भी हैं; कौमार्यावस्था के भी हैं और विवाहितावस्था के भी और विधुर या विधवा होने के बाद के भी। इतना ही नहीं वे विषम लैंगिक के साथ - साथ समलैंगिक सम्बन्धों के भी हैं। इस प्रकार के काम सम्बन्धों की बहुलता का इसी से अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि डा० वीरेन्द्र सक्सेना ने तो अपने शोध - कार्य का विषय ही 'काम सम्बन्धों का यथार्थ और समकालीन हिन्दी कहानी' चुना है। डा० राम प्रसाद ने 'साठ के बाद की हिन्दी कहानी : सामाजिक सन्दर्भ (अनुवाक्) को उद्धृत करते हुए लिखा है - 'आज की कहानियों में यौन चित्रण जितना खुलकर हुआ है, उतना पहले नहीं हुआ था। इस नाते अनपेक्षित यथार्थ का चित्रण हुआ है। चौंका देने वाली बातें लेकर, कथाकार पाठकों के सम्मुख आए हैं, विरूपता, विक्षोभ अश्लीलता का प्रश्न उठ सकता है, पर सामाजिक जीवन में दम तोड़ते हुए इन्सान की आत्मा की युग - युग की प्यास भी अभिव्यक्त हो सकी है और ऐसी सशक्त अभिव्यक्ति इस युग के पहले कभी नहीं हुई थी।'[४]

डा० राम प्रसाद के अनुसार - 'आज की हिन्दी कहानी नारी के कन्धों पर टिकी हुई है ऐसा कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। जीवन नारी के बिना चल नहीं सकता, जीवन का अध्ययन नारी के बदलते रूपों का ही अध्ययन है। आज नारी सर्वत्र छायी हुई है राजनीति में, सामाजिक जीवन के हर पहलुओं में, केन्द्रीय एवं राज्य सरकार के प्रायः हर विभाग में कार्यरत नारी को देखा जा सकता है।

साठोत्तरी हिन्दी कहानी में जिस नारी का चित्रण हुआ है उसमें पारस्परिक नारी - सुलभ मृदुता के साथ - साथ

१- साठोत्तरी हिन्दी कहानी में पात्र और चरित्र चित्रण - डा० राम प्रसाद - पृ० - ३३

२- वही - पृ० -३३

३- वही - पृ० -३३ - ३४

४- वही - पृ० -३६

कहीं एक गुमान,एक स्वाभिमान भी है, यह मानना पड़ेगा। वह अपनी भावनात्मक आवश्यकताओं के लिए पुरुष पर आश्रित है, पर उसमें कहीं ऐसा विश्वास - ऐसा बोध भी है कि जितनी पुरुष की आवश्यकता उसे है - उतनी ही पुरुष को उसकी भी। वह व्यर्थ एवं सीमातीत रूप में क्यों दबती चली जाए। वह अर्जनशीला है, अतः उसका विवेक, उसका आत्मगौरव पुरुष से समानता की मांक करता है, प्रेमी रूप में पुरुष वह समानता उसे भरपूर देता है, परन्तु पति की भूमिका में आते ही उसका रूप बदल जाता है और उस नारी को एक पारम्परिक पति का सामना करना होता है। वह आत्म निर्भर है। कई स्थितियों में वह अपने पूरे परिवार की अन्नदाता है, पर उसका परिवार और परिवेश उसके रूप की इस नवीनता को तो स्वीकार करता है, बल्कि उसका स्वागत करता है - पर उसके अपने आचरण में यदि लीक को तोड़ने का अंश भी दिखाई पड़ जाता है तो सम्बन्धी एवं परिवेश के कान खड़े होने लगते हैं।

'साठोत्तरी हिन्दी कहानी नारी का जो स्वरूप प्रक्षेपित कर रही है वह स्वरूप दर्शाता है कि नए भारत की नई नारी अभी स्वयं को समझ रही है, गढ़ रही है। अपनी सम्पूर्ण शारीरिक भावनात्मक दुर्बलताओं की स्वीकृति के अन्दर से ही वह अपने जीवन की सिद्धि चाहती है। इस मार्ग में बाधाएँ ही बाधाएँ है। सहायक बहुत से हैं - परन्तु जो सहायक बन कर आगे बढ़ते हैं वे न मालूम कब पथ के किस मोड़ पर शोषक बन जाते हैं और यह नारी केवल उस शोषण के विरुद्ध ही चीखना चाहती है।'[1]

डा० राम प्रसाद का यह कथन कि 'प्रेमी रूप में पुरुष वह समानता उसे (नारी को) भरपूर देता है', चिन्त्य है। वस्तुतः पुरुष न तो प्रेमी रूप में ही नारी को भरपूर समानता देता है या देना चाहता है और न पति के रूप में ही। प्रेमी के रूप में वह जहां ऐसा करता दिखता भी है वहां वह अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए ही या प्रलोभन के लिए ही करता ज्यादातर मिलता है। नारी भले ही इस छलावा में समानता का भ्रम पालती रहे। इसीलिए तो पति बनते ही वह अपना छद्म रूप उतार फेंकता है। इसीलिए तो पूरे परिवार की अन्नदाता बन जाने पर भी नारी को वह पद एवं प्रतिष्ठा या अधिकार नहीं मिल पाता जो पति को सदा सहज सुलभ रहता है - चाहे वह अर्जन शील भी न हो। इसीलिए तो नारी के सहायक के भी शोषक के रूप में बदलने में दे नही लगती और नारी को चीखने - चिल्लाने के अतिरिक्त कोई अधिकार प्राप्त नहीं रहता।

हिन्दी की आधुनिक कहानियों में नारी की इस विषम स्थिति के विभिन्न रूपों का चित्रण देखने को मिलता है। राजेन्द्र यादव की कहानी 'खेल -खिलौने' की नीलिमा अपनी असाधारण प्रतिभा और कलात्मक अभिरुचियों को भी भार स्वरूप अनुभव करने लगती है। उस कहानी में सुधीन्द्र भाई से पूछा गया यह सवाल जैसे इस पूरे समाज को ही सम्बोधित हो - 'प्रतिभा और सामंजस्य कहां और कैसे हो ? जो गुण किसी भी दूसरे समाज में स्त्री को सहज ही सम्माननीय बना सकते हैं वे ही उसकी सबसे बड़ी त्रासदी का कारण बनते हैं - 'मेरे वायलिन और सितार में मनो धूल भर गई है। महादेवी और मीरा का गीत वहां गाकर सुनाऊं तो सब उल्लुओं की तरह मेरा मुंह देखें। बात - बात में इनकी इज्जत का ध्यान, बात - बात में स्त्री होने की घोषणा - सच भाई साहब आज हृदय में बड़ी प्रचण्ड शक्ति से सब उठ रहा है कि काश मैं एक साधारण लड़की होती - मूर्ख और भेड़, जिसके बचपन की सारी तैयारियां, शिक्षा - दीक्षा केवल विवाह के लिए होती हैं और विवाह होने के वाद जैसे इन सारे झंझटों से छुटकारा मिलता है।'[2]

इसी प्रकार राजी सेठ की कहानी 'मेरे लिए नही' की प्रीति विवाह ही नहीं करना चाहती क्योंकि वह सोचती है कि 'पत्नी, जिसे तुम सब पत्नी कहते हो वह मैं नहीं हो सकती। मेरे अन्दर दूसरों को उस हद तक एडजस्ट करने की शक्ति नही हैं'। यही स्थिति रमेश गुप्त की कहानी ' मिस फिट' की इला की भी । वह भी शादी को बुर्जुआओ के चोंचले मानती है। वह समूची व्यवस्था में बदलाव चाहती है। होल सेल चेंज वैल्यूज में, पालिसी में, एक्शन में। पर यह तो हो नहीं सकता क्योंकि इस मुल्क में सिर्फ शाब्दिक क्रान्ति करने वालों को पूजा जाता है।

१- साठोत्तरी हिन्दी कहानी में पात्र और चरित्र चित्रण - डा० राम प्रसाद - पृ० - ६९ - ७०
२- खेल - खिलौने - राजेन्द्र यादव - पृ० - ३८

डा० राम प्रसाद के अनुसार यशपाल वैद के कहानी संग्रह 'आस बंध गयी' की अधिकांश कहानियां अकेलेपन और घुटन की समस्या का चित्रण करती हैं। इस संग्रह की - 'एक बदतमीज' कहानी की नीता और नीलम दोनों के अकेलेपन की समस्या है और दोनों ही इसका सामना कर रही हैं। ये दोनों ऐसी आधुनिक पढ़ी - लिखी युवतियां है जो अपनी पसन्द तथा तेज तर्रार स्वभाव के कारण किसी भी युवक से सन्तुष्ट नहीं हैं और किसी को भी अपना साथी बनाने को तैयार नहीं हैं। लेकिन पुरुष साथी का अभाव दोनों ही तीव्रता के साथ महसूस करती रहती हैं। आज देश में न जाने कितनी पढ़ी - लिखी, नौकरी करने वाली लड़कियां इसी समस्या के कारण कुंवारी रह जाती हैं और उनके मन की भावनाएं तथा जीवन का उल्लास असमय ही दबकर समाप्त हो जाता है और उनके चेहरे पर एक अजीब - अजीब सी उदासी हमेशा के लिए उतर आती है।'[१]

सोमा बीरा की कहानी 'सैतीसवां चित्र' में दो विरोधी विचार धाराओं का द्वन्द्व उभारा गया है। इस कहानी की नायिका साफ - साफ कहती है - 'यह तुमने कैसे समझ लिया कि हमारा मन तुम्हारी नकल करने को नहीं मचलता। किन्तु हमारे आदर्श तुम्हारे आदर्श से भिन्न हैं। दूसरों की बात तो नहीं जानती, अपनी बात जानती हूँ।'[२] इतना ही नहीं वह आगे कहती है - 'तब मैं मां की एक बात याद करने लगती हूँ। बहुत दिन बीते, एक बार उन्होंने कहा था 'जो अपनी भावनाओं पर काबू न पा सके, वह इन्सान कहलाने योग्य नहीं, क्योंकि आवेश में आकर वह जीवन के आदर्शों और इन्सानियत का गला घोंट देता है।'[३]

वस्तुतः यहां नायिका का यह कहना कि बहुत दिन बीते, एक बार उन्होंने (मां ने) कहा था अस्वाभाविक सा लगता है क्योंकि जो उसकी मां ने कहा वह एक बार - नहीं बार - बार हर मां कहती रहती है और अपनी हर सन्तान को यही शिक्षा देती रहती है क्योंकि यही भारतीय जीवन दर्शन है।

इसके विपरीत इस कहानी की एक अन्य पात्र 'लिण्डा' पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित है या अत्यन्त आधुनिकतावादी विचारधारा से प्रभावित है इसलिए वह कहती हैं - 'मेरे विचार में तो जो अपनी भावनाओं को जबरदस्ती कुचल डालता है, वही इन्सान कहलाने योग्य नहीं है।' जीवन के आनन्द का गला घोटना, इन्सानियत का गला घोटनें के समान है।'[४] यही भारतीय प्राचीन परम्परा और आधुनिक पाश्चात्य परम्परा से प्रभावित जीवन पद्धति का अन्तर है।

शैलेश मटियानी की एक अन्य कहानी 'अतीत' में विधवा विनीता औरत के औरतपन के एहसास को हमारे सामने उजागर करती है। विनीता के जीवन में विवाह पूर्व भी एक पुरुष आया था जिसने उसे उसके औरत होने का एहसास कराया था। उसके बाद विवाह और विधवा होने के बाद भी उसके जीवन में अनेक पुरुष आए। इन सबने उसे अनुभव सम्पन्न औरत बनाया - कम से कम विनीता की यही धारणा है। वह कहती है - 'ये मर्द नाम के जीव - जन्तु सावधानी बरतने के नाम पर और बेवकूफ, कवच ओढ़ने की कोशिशों में और ज्यादा नंगे हो जाते हैं। इन्हें इस बात का होश तो रहता ही नहीं कि औरत सुनने में कम, अनुभव करने में ज्यादा विश्वास करती है।'[५] उसकी धारणा है कि 'जहां पुरुष प्रमाण देना भूल जाता है या देने की जरूरत महसूस नहीं करता, सिर्फ वहीं - जी हां, वहीं औरत उस पर विश्वास कर जाती है।'[६]

१- साठोत्तरी हिन्दी कहानी में पात्र और चरित्र चित्रण - डा० राम प्रसाद - पृ० - ७५
२- 'दो आखो वाले चेहरे' - सोमा वीरा - पृ० - १३
३- वही - पृ० - १४
४- वही - पृ० - १४
५- अतीत तथा अन्य कहानियां - शैलेश मटियानी - पृ० १६
६- वही - पृ० - ३०

विनीता अनुभव हीन और अनुभव - सम्पन्न औरत के बीच अन्तर करती हुई कहती है - 'उसका सारा दारोमदार इस बात पर है कि दोनों के पास औरत या पुरुष होने का ऐसा अनुभव है या नहीं, जो उन्हें आत्म निर्णय में समर्थ बना सके।'[1] साथ ही उसकी यह भी धारणा है कि ' किसी भी पुरुष के पूरे - पूरे व्यक्तित्व को आंक ले जाने की सिर्फ एक ही कसौटी किसी औरत के पास हो सकती है ---------- याकि होनी चाहिए ---------- सिर्फ यह कि वह उसके औरत होने की यथार्थता से टकराता है या उसकी नैतिकता या सामाजिकता वगैरह के बाहरी खोलों से।'[2] वह कहती है - 'मैं यह सोच - सोच कर एक सुख अनुभव करती हूँ कि इन्द्र का आतंक अहिल्या के द्वारा एक लम्बे अरसे तक स्मरण किया जाता रहा होगा, क्योंकि उस तरह के आतंक का भागीदार हो पाना एक बहुत बड़ी चीज है, जो किसी भी वास्तविक औरत को अपनी औरत की यथार्थता और औरत मानी जाने की सामाजिकता, नैतिकता, धार्मिकता या आर्थिकता के बीच फर्क महसूस करने का नजरिया देती है।'[3]

इस प्रकार विनीता अपने अतीत के अनुभवों को अधिक महत्व देती है, यहां तक कि वह अपने पुनर्विवाह के सम्बन्ध में भी समाज द्वारा उपलब्ध करायी जा रही सुविधा को भी पुरुषों का छद्म व्यवहार ही मानती है। वह कहती है -' हुजूर जो मुझे बार - बार यह इत्मीनान दिलाना चाहते रहे हैं कि पुनर्विवाह कर लेना मेरे लिए अनैतिक या असामाजिक नहीं है, इससे सिर्फ इस नतीजे के अलावा और कहां पहुंचा जा सकता है कि करुणामयता आप में जरूर है, मगर नैतिक या अनैतिक , औरत या पुरुष होने के मापदण्ड हुजूर के वो ही के वो ही हैं'।[4]

वस्तुतः विधवा के विषय में पुरुष के पुराने विचार अभी तक बदले नहीं लगते। पहले भी विधवाओं के प्रपीड़क पुरुष ही थे। इस कहावत कि राण्डे तो रण्डाषा पार कर लें, पर रण्डुआ पार कर देने दे तब न ? आज भी वैसी ही स्थिति बनी हुई है।

इसलिए विनीता अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुंचती है - 'प्यारे दोस्त, बहुत कम लोगों को इस बात का एहसास होता है कि एक बिलकुल निजी आन्तरिक अनुभव - सम्पन्नता ही मनुष्य को उसकी पूर्व निश्चित निर्णायकता के सीमित दायरे से कहीं और, अपनी ही अन्दरूनी दुनिया के किसी अनजाने द्वीप तक पहुंचा सकती है।'[5]

स्वतन्त्रता और शिक्षा ने समानता और सामाजिक चेतना की दिशा में पर्याप्त योगदान दिया है। इसी के कारण यह सम्भव हो सका है कि मानव - मानव समान की भावना पनपी है - अमीर गरीब, छोटे - बड़े का वर्ग भेद घटा है। मंजुल भगत की कहानी ' बीबी और बांदी' में दो वर्गो के बीच घटते भेद का चित्रण किया गया है। चम्पा नामक नौकरानी अपनी मालकिन मीनाक्षी को प्रतिदिन अच्छी - अच्छी साड़ी पहनते, मेक - अप करते और स्वच्छन्द रूप से घूमते - फिरते देखती है। वह सोचती है कि क्या वह वैसी ही नहीं बन सकती जैसी मालकिन बनी हुई है। वह मालकिन की श्रृंगार सामग्री का तो घर में अकेले रहने पर उपयोग करती ही है, मालकिन के आधुनिक लज्जा रहित अंग प्रदर्शन को भी बड़ी सूक्ष्मता से अवलोकन करती है और उसकी नकल करने की उसमें तीव्र लालसा जागृत होती जाती है। वह गरीब है इसलिए उतना कीमती सामान खरीद नहीं सकती। बाध्य होकर वह मीनाक्षी का सामान चुराना प्रारम्भ कर देती है। मीनाक्षी इस बात पर उतना ध्यान नहीं देती और सोचती है कि समझदार (और शायद साधन सम्पन्न) होकर वह नौकरानी से क्या ईर्ष्या करे। किन्तु जब उसे अपने पति से यह पता चलता है कि चम्पा एक दिन उसकी अनुपस्थिति में उसके पाति के पास एकान्त में पहुंच गयी थी और उसके पैर दबाने लगी थी और उसे अजीब आंखों से देखते हुए अपने सारे कपड़े उतार फेंके थे और यह देखकर उसके पति जल्दी से घर से बाहर निकल गये थे तब मीनाक्षी स्तब्ध हो जाती है।

१- अतीत तथा अन्य कहानियां - शैलेश मटियानी - पृ० ३४

२- वही - पृ० - ३६

३- वही - पृ० - ३५

४- वही - पृ० - ३६

५- वही - पृ० - ३६

नारी और उसमें भी नौकरानी का यह आधुनिकतम रूप है। वैसे अंग्रेजी साहित्य में इस प्रकार के उच्च वर्ग और निम्नवर्ग के बीच अन्तः क्रिया के अनेक प्रसंग प्रारम्भ से ही मिलते रहे हैं। अंग्रेजी के प्रथम उपन्यास की प्रतिष्ठा प्राप्त 'पामेला आर वर्च्यू रिवार्डेड' की 'पामेला' पहली नौकरानी नायिका है किन्तु वह अपने सतीत्व की रक्षा के प्रति सजग और सचेष्ट होने के कारण उच्च वर्ग के गले का हार बन कर प्रेम जीतती है और मालिक के साथ विवाह बन्धन में बंधती है। यह सन् १७४० की औपन्यासिक कृति है। सन् १७७३ मे आलीवर गोल्ड स्मिथ ने 'शी स्टूप्स टु कांकर' नामक हास्य नाटिका लिखी जिसमें नायक नायिका को भ्रमवश नौकरानी समझ लेता है और नायिका भी नायक का हृदय जीतने के लिए नौकरानी होने का अभिनय करती रहती है और अन्ततः अपने उद्देश्य में सफल होती है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त (१८९८) में जार्ज बर्नाड शा के नाटक 'आर्म्स एण्ड द मैन' में नायिका रैना जिस पात्र को अपना सर्वस्व समर्पण कर विवाह करने के लिए व्यग्र है, वही पात्र उसकी नौकरानी लूका के प्रेमपाश में फंस जाता है और उससे विवाह कर लेता है।

इस प्रकार नौकरानियों का परिवार के सदस्य के रूप में परिवार में रहना और परिवार के सदस्यों के साथ बराबरी का व्यवहार करते हुए उनसे विवाहादि करने का चित्रण आधुनिक युग में प्रचुर मात्रा में हो रहा है। आधुनिक परिवारों में नौकरानी की समस्या एक विकट समस्या बन गयी है क्योंकि आज की शिक्षित महिला रसोई घर के काम तथा चौका - बर्तन करने से बचना चाहती है और अपने समय को अन्य उपयोगी या अनुपयोगी कामों में लगाना चाहती है - चाहे वह क्लब जाना हो, या ताश खेलना या टी० वी० देखना या पत्र - पत्रिकाएं पढ़ना या घूमना - फिरना। वह रसोई घर से कतराती है इसलिए रसोई घर के लिए एक सेविका या रसोई पकाने वाले की आवश्यकता अनुभव करती है। यही बात चौका - बर्तन करने और घर की साफ - सफाई आदि करने या कपड़े आदि धोने के विषय में भी लागू होती है। इस कार्य के लिए पूर्ण कालिक और आवासीय सेविकाएँ भी रखी जाती हैं या अंश कालिक भी। परन्तु दोनों ही स्थिति में सेविकाएं स्वयं पाकशाला में जाना चाहती हैं ताकि वे भी अपने मन की चीजों का परिवार के साथ भोग कर सकें - खा - पी सके। पूर्ण कालिक और अंश कालिक दोनों ही प्रकार की सेविकाएं परिवार में आने वाले मेहमानों, रिश्तेदारों या अभ्यागतों के समक्ष समानता के स्तर की अपेक्षा करती हैं और चाहती हैं कि सेविका होते हुए भी वे परिवार की अभिन्न अंग समझी जायं। जहां यह स्थिति नहीं चल पाती वहां सेविकाएं टिक नहीं पाती और अन्यत्र काम करने के लिए निकल पड़ती हैं क्योंकि बाजार (घरों) में उनकी मांग है और उन्हें हर शर्त पर, हर कीमत पर और हर प्रकार से नियोजित कर लेने का सघन प्रयास चारों ओर परिवारों में चलता मिलता है।

ऐसी स्थिति में उनका परिवार के सदस्यों से इतना घुलना - मिलना हो जाता है कि कितनी ही सेविकाएं स्वेच्छा से या जबरन - बहला - फुसला कर अनैतिक सम्बन्धों में फांस ली जाती हैं। यह स्थिति केवल नारी सेविकाओं के विषय में नहीं पायी जाती। कहीं कहीं तो पुरुष सेवक या रसोइये परिवार की महिलाओं से ही अनैतिक सम्बन्धों में जुड़ जाते हैं। अच्छे, सच्चे एवं ईमानदार सेवक या सेविका दुर्लभ होते जा रहे हैं। इसलिए उनको नयन ज्योति की तरह सम्हाल कर रखने की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। अधिक निकटता एवं साहचर्य के कारण उनसे अनेक प्रकार के सम्बन्ध बनने भी स्वाभाविक हो गए हैं विशेषकर उस स्थिति में जब कि नारी के प्रति आधुनिक युग में दृष्टि ही बिलकुल बदल गई है और इसके कारण आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना पर किस प्रकार का प्रहार हो रहा है इसकी एक झलक महीप सिंह की कहानी 'मैडम' में मिलती है।

'मैडम' कहानी की मैडम का व्यक्तित्व अनेक अन्तर्विरोधों एवं विसंगतियों का शिकार है। लोग उसके विषय में गलत धारणाएं बना लेते हैं जैसा कि प्रायः हर नारी के विषय में होता है। नारी की सभी विसंगतियों के लिये स्वयं नारी को ही दोषी माना जाता है। फिर मैडम के विषय में इस प्रकार की धारणा बनने का तो और भी ठोस आधार है क्योंकि वह एक वेश्या की लड़की है। वह पिता और भाई के प्रेम से वंचित रही है। मां ने उसे बी० ए० तक शिक्षा भी दिलाई है परन्तु पति और भाई का प्रेम नहीं दे सकी। इसलिए मैडम स्वयं इस अभाव को अनुभव करती रहती है। वह कहती है -

'मुझे शुरू से ही पुरुष अच्छे लगते रहे हैं। इसका कारण इसके अतिरिक्त क्या हो सकता है कि जन्म से ही मुझ

पर किसी पुरुष की छाया नहीं पड़ी। न मैंने यह जाना कि पिता का प्यार कैसा होता है ? और न ही यही कि भाइयों का स्नेह कैसा होता है ? जब मैं किसी लड़की को अपने पिता के कन्धे पर चढ़ी हुई देखती थी या अपने पिता से लड़ते - मचलते और फिर हंसते देखती तो मैं दिल मसोस कर रह जाती -------- ऐसे समय में मेरे मन में पिता और भाई का अभाव इतना अखरता कि मेरी इच्छा होती है कि मैं सड़क चलते किसी व्यक्ति को पिताजी कह कर लिपट जाऊ, किसी को भैया कह कर उसका हाथ पकड़कर घसीटती हुई अपने घर ले जाऊँ।'[१]

किन्तु पुरुष वर्ग की परम्परागत भोगवादी दृष्टि उसे अनैतिक कार्य करने के लिऐ प्रेरित करती है, वाध्य करती है। उसकी सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि पुरुष समाज उसे केवल भोग परक दृष्टि से ही देखता है। मैडम को इसका कटु अनुभव होता है और वह उसके इस स्पष्ट कथन से स्पष्ट होता है -

'जब तक किसी लड़की ने किसी पुरुष की पत्नी के गर्भ से जन्म न लिया हो, तब तक शायद वह उसे अपनी वेटी मानने के लिये तैयार ही नहीं होता। जब तक कोई लड़की उसकी माँ के पेट से जन्म लेकर जबरदस्ती ही उसके गले में बहन बन कर बंध न गई हो। वह शायद किसी को बहन रूप में देखना ही नहीं चाहता ------------ मै भाई बनाना चाहती थी, वे पति बनना चाहते थे। ऐसे पति भी नहीं जो विधिवत् विवाह रचा लें।'[२]

स्पष्टतः यह पुरुष की स्वच्छन्द कामाचरण की पराकाष्ठा है जिसका कोई अन्त नहीं। अर्थ और काम परायण आज का युग इस प्रकार की विसंगतियों, विकृतियों से गुजरता ही रहेगा जब तक वह नियन्त्रित काम सम्बन्ध की धारणा को ग्रहण नहीं करेगा। निश्चय ही यह पश्चिमी भोगवादी प्रवृत्ति की पराकाष्ठा है। भारतीय शास्त्रों ने तो यह स्पष्ट उपदेश देना प्रारम्भ किया था कि संसार में जितना धन - धान्य, स्वर्ण, पशु एवं स्त्रियां हैं वे एक ही भोगवादी व्यक्ति के लिए भी पर्याप्त नहीं है। अतः शाम का आचरण करना ही श्रेयस्कर है -

यत् पृथिव्यां ब्रीहि यवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
न दुहयन्ति मनः प्रीतिं पुंसः काम हतस्य ते।।'[३]

अन्ततः मैडम अपने परिवेश से व्यथित एवं दुखित होकर पुरुषों के मकड़ जाल में स्वयं स्वेच्छा से फंसती है। अपने अनैतिक कार्यो के सम्बन्ध में वह कहती है -

'और हार कर मैं इस निर्णय पर पहुंची कि यदि तुम पुरुष किसी स्त्री को प्रेम और स्नेह देने का मूल्य उसके देह समर्पण के रूप में ही लेना चाहते हो तो चलो यह भी ले लो किन्तु अपने प्रेम से वंचित न करो।'[४] परन्तु देह - प्रेम से ग्रस्त व्यक्ति में वास्तविक प्रेम कहां ? यह तो उसकी भ्रान्त धारणा ही है। वह गलत अपेक्षा करती है। वह जानती है कि उसकी आवश्यकता, उसकी पूछ तब तक ही है जब तक कि उसकी अपनी देह उनके काम की है। वह कहती है -

'आज मै होटल के जिस कमरे में जाती हूँ, लोग मुझे बिठाते है, मेरे साथ हंसते और बाते करते हैं क्योंकि इसके बदले में वे मुझसे कुछ अपेक्षा करते हैं। यदि उनकी वे इच्छाएं पूर्ण न हों तो दूसरे दिन से वे मुझसे बात करना नहीं चाहेंगे।'[५]

१- उलफत - महीप सिंह - पृ० - २६
२- वही - पृ० - २६
३- श्री मद्भागवत - ६/२०/१३
४- वही - पृ० - ८०
५- वही - पृ० - ८१

नारी की यह नियति भोगवादी दृष्टि के कारण ही है और यह भोगवादी दृष्टि केवल पुरुष में ही नहीं है, नारी में भी है अन्यथा उसका मजबूरी में पुरुष द्वारा नचाया जाना तो समझ में आता है पर नाचने की तमन्ना या हसरत रखना और उसके लिए सभी उपकरण जुटाना, हाव - भाव दिखाना, देह सौन्दर्य का प्रदर्शन करना आदि उपाय किसलिए ?

आज नारी अंग प्रदर्शन की ओर तेजी से लुढ़क रही है और उसके पक्ष में प्रबल तर्क प्रस्तुत करने में भी शील - संकोच - लज्जा का रंचमात्र भी अनुभव नहीं करती है - यह सब किसलिए ? नारी स्वयं पुरुषों के हाथों की कठपुतली बनना चाहती है और समझती है कि वह अपने इशारे पर पुरुष को नचा रही है। आज नारी और पुरुष दोनों ही दांव - घात लगाये हैं और इस बात से पूरी तरह बेखबर हैं कि इससे वे कहीं के न रहेंगे।

गौरा पन्त शिवानी की कहानी 'गहरी नींद' भी यथार्थ जीवन से ली गई कहानी है - लेखिका ने इस प्रकार की घटना को स्वयं ही घटित होते देखा है जैसा कि लेखिका ने स्वयं स्वीकार किया है -

'गहरी नींद' मैंने गाजीपुर में लिखी थी, जहां मेरे बड़े भाई एस० पी० थे। वहां विस्थापित स्त्रियों के केन्द्र की संचालिका मिस खान मेरी मित्र थीं। उन्होंने मुझे आश्रम की अपराधिनियों से मिलाया था। वहीं मुझे यह नायिका मिली थी। सांवले रंग की वह सलोनी सूरत जहां चेहरे - मोहरे से एकदम भोली लगती थी वहां जीवन कुछ और ही इतिहास बताता था। कहानी एकदम सच्ची नहीं थी। पर रवीन्द्र पण्डित भी एकदम कोरी कल्पना की उपज नहीं था। ------------ ऐसे ही एक सुदर्शन पुलिस अफसर था, जिसकी पत्नी अत्यन्त सुन्दरी थी, मेरी मित्र थी। लगभग इसी प्रकार का दुर्भाग्य (उमा यादव) उसका भी था। जिस नौकरानी को (वह जेल से छूटी थी) उसने सुधारने अपने यहां रखा था वह एक दिन उसकी अनुपस्थिति में उसे ही डस गई। नींद की गोलियां खाकर उसने (स्वामिनी ने) अपना जीवन स्वयं ही नष्ट कर दिया - अन्तर इतना ही था कि वह अभागिनी मरी नहीं, बच गई।'[1]

जीवन की अनुभूत इस यथार्थ घटना को शिवानी ने इस प्रकार कथा सूत्र में पिरोया है -

रवीन्द्र पण्डित नामक डिप्टी पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट को जुर्म से जुड़ी महिलाओं के लिए बने 'होम फार फालेन वीमेन' में जांच आदि के लिए बार - बार जाना पड़ता है। वहां अख्तरी नाम की अपराधिनी महिला भी रखी गयी है। 'होम फार फालेन वीमेन' की अध्यक्षा उमा यादव से रवीन्द्र पण्डित का सम्पर्क हो जाता है और अपनी कामुक प्रवृत्ति के कारण वह उमा यादव के सौन्दर्य से आकर्षित होकर उसके चारों ओर अपनी कूटनीति का जाल बिछा देता है। अन्ततः वह उमा यादव से विवाह कर उसे अपनी तीसरी पत्नी बना लेता है। अख्तरी जिद्द कर उमा यादव के साथ रहने लगती है क्योकि उसके साथ रहकर वह सुरक्षित रूप से अपना अफीम गांजे का अवैध अपराध पूर्ण व्यवसाय कर सकती है। इसके लिए वह रवीन्द्र पण्डित पर भी डोरे डालती है और उसे अपने पक्ष में करने के लिए एक दिन उसे अपने शरीर की रिश्वत भी दे बैठती है ताकि वह अफीम गांजे का अवैध धन्धा कर सके। उमा यादव यह सब देख लेती है। उमा यादव खुद ही नींद की गोलियां खाकर सदा के लिए सो जाती है। कहानी का प्रारम्भ उसकी ले जायी जा रही अर्थी से होता है और कहानी के अन्त में उपसंहार जोड़ा गया है -

'विचित्र शिल्पी विधाता भी कैसी - कैसी अनोखी मूर्तियां गढ़ देता है। एक को नींद के लिए शीशी भर गोलियां खानी पड़ती हैं और दूसरी बिना गोली खाये ही गहरी नींद में डूब जाती है।'[2]

कृष्णा अग्निहोत्री ने अपनी कहानी 'अन्तिम स्त्री' के विषय में स्वयं लिखा है -'नारी कभी एक किसी पुरुष की अदम्य लालसाओं को कहीं बांध नहीं सकी -------- यह एक अनुभव जो बहुत पास से अनुभव हुआ तो पीड़ा हुई, आखिर क्यों?

१- साठोत्तर महिला कहानीकार - डा० मधु सन्धु - पृ० २६ - ३०
२- गहरी नींद - शिवानी

समस्त गुणों वाली नारी से भी पुरुष नहीं बंध पाता -------------- और इसी पीड़ा ने जन्म दिया 'अन्तिम स्त्री' को। 'अन्तिम स्त्री' के पात्र बहुत घनिष्ठ मित्र के आस - पास देखे, नाम मेरे अपने चुनाव हैं।'[1]

इस प्रकार यह कहानी भी लेखिका के व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित है, सुनी - सुनाई या कल्पित कथा पर नहीं।

अमित बनर्जी बेला डीला में ठेकेदारी कर रहा है। उसे अपनी पत्नी बीन (बन्दना) और बच्ची स्मिता की याद आती है। उसने जिस सफेद गुलाबी कालोनी को बनाया है उसके किसी बड़े फंक्सन के लिए मैनेजर का आग्रह है कि वह अपनी पत्नी वन्दना को भी उसमें सम्मिलित होने के लिए बुलाये।

जीप से घर लौटते वह आदिवासी स्त्रियों के गठीले जिस्म को (निगाहों से) तौलते तथा उनकी आंचल के दबाव से उभरती नग्न छातियों को घूरती दृष्टि से छूते चला जा रहा है। उसे वन्दना से किया गया वायदा ध्यान आता है कि पर - औरत और शराब को नहीं छुएगा। पहले वह पुरुषों को नौकरी दिलाने के बहाने उनकी औरतों से अपनी वासना पूर्ति करता था और बड़ी युवा बेटी सुस्मिता की वितृष्णा झेला करता था। दस वर्ष पूर्व अपनी पहली पत्नी की आत्महत्या के दो माह पश्चात् वह जेली और उसकी सहेलियों के साथ रातें काटने लगा था। सुस्मिता ऐसे अवसरों पर भाई - बहनों को लेकर शो देखने चली जाती थी। अमित के इस स्वभाव से बच्चे अस्पृश्य नहीं रहे। बड़ी सयानी लड़की सुस्मिता पड़ोस के नवयुवक से खेल खेलने लगी। अमित उसकी पढ़ाई आदि की चिन्ता भी करता है किन्तु सरकारी अफसरों को अच्छी शराब और लड़की से इन्टरटेन करने वाले कान्ट्रेक्टर भला बचा भी क्या पाते हैं। तभी वन्दना उसके जीवन में आयी। दोनों का विवाह हुआ। वन्दना एक बार बेलाडीला भी आयी जब अमित ने वहां का ठेका लिया। वन्दना ने वहां आकर मजदूरनियों से किए जाने वाले बलात्कार की बात भी सुन ली। वह अमित को वहां के दूषित वातावरण से बाहर निकाल ले जाना चाहती थी क्योंकि सम्भवतः वह अमित की सभी कमजोरियां, विशेषकर नारी विषयक कमजोरियां जान गयी थी। पर चलता कान्ट्रेक्ट छोड़कर अमित वापस नहीं जा सका।

फंक्सन का दिन आ गया। वन्दना नहीं आ पायी। अमित ने खूब शराब पी ली। रास्ते में वह मजदूरिन हिरनी को पाकर उसे वहीं पत्थर पर समेट लेता है। बीन की स्मृति ओझल हो जाती है। अमित महसूसता है कि वह व्यर्थ ही शराब और औरत के लिए परिस्थितियों को कोसता रहा। कोई अन्तिम स्त्री उसे बांध नहीं सकती।

कहानी पर आलोचक की दृष्टि कितनी तीक्ष्ण, कितनी सधी हुई और कितनी सटीक बन पड़ी है इसे उसी के शब्दों में देखें -

'अन्तिम स्त्री' विकास के चरम पर पहुंचे सभ्य मनुष्य के असभ्य आदिम रूप की कहानी है। पुरुष की अदम्य यौन वासना की कहानी है। अमित बनर्जी न पति हो सकता है , न प्रेमी और न पिता। वह मात्र नर है जो यत्र - तत्र मादा से अपनी इस दैहिक मांग की तुष्टि करता - फिरता है। इसी दानवाकार मांग के समक्ष जीवनगत सभी उत्तरदायित्व फीकें पड़ गये हैं। गृहस्थ जीवन की धारा उसे बांध नहीं सकती। विवाह संस्था की नैतिकता उसके लिए अर्थहीन है। पत्नी को नौ बार माँ बनाकर उसने व्यस्त रखना चाहा था और स्वयं खाना बनाने वाली जमीला और उसकी भतीजी शाहिदा के साथ रातें गुजार लेता था। पत्नी द्वारा आत्महत्या करने पर वह प्रसन्न ही हुआ था कि चलो इतने बच्चों की मां से छुटकारा तो मिला। बच्चों के कारण उसने पुनः विवाह नहीं किया - यह तथ्य भी अमित बनर्जी के पिता रूप के वात्सल्य की प्रवंचना को बनाए रखने के लिए है। युवा बेटी के सामने ही उसने जेली और उसकी सहेलियों के साथ रातें व्यतीत करनी प्रारम्भ कीं। बेटी की उम्र की नर्स नाइक से भी सम्बन्ध रखे। किराए की औरतों से देह तुष्टि की। वह व्यक्ति कौन से वात्सल्य का कवच ओढ़ पुनः विवाह न करने की आत्मतुष्टि खोज सकता है। वह जानता है कि जब से नर्स नाइक

१- साठोत्तर महिला कहानीकार - डा० मधु सन्धु - पृ० ७७

का आना जाना बढ़ने लगा है, युवा बेटी सुस्मिता पड़ोस के जवान लड़के के साथ देर तक ताश खेलने लगी है। उसे कोई चिन्ता नहीं उसकी तो पीकर ही कट जायेगी।'[1]

मणिका मोहिनी की कहानी 'जलांध' का उत्तम नाम का नायक अधेड़ आयु का विवाहित पुरुष है। वह कट्टो नाम की अबोध नवयुवती से इसलिए सम्बन्ध में आ जाता है कि वह तेज तर्रार तथा हर नये दृष्टिकोण की प्रशंसा करती थी और कट्टो ने उसे इसलिए पसन्द किया था कि वह महत्वाकांक्षी था, आधुनिकता की बात करता था। उसकी पत्नी में कोई सलीका सुरुचि नहीं थी। इसलिए उत्तम शुरू से ही नारी के पीछे भागता रहा - तमाम का जीवन उसने कलुषित ओर कष्टमय कर दिया। कट्टो से भी वह बीस बरस बड़ा था। वह विवाहित पुरुष था, जिसे शरीर के विषय में सब कुछ मालूम होता है। वह शरीर को महत्व देता है। कट्टो मुग्ध होकर उसकी बात मानती रही। पर कट्टो से उसने यह कभी नहीं कहा कि वह उसे घर और बच्चों का सुख देगा। उत्तम धीरे - धीरे उससे दूर होता जाता है और कट्टो उतना ही उसे पकड़ना चाहती है। उत्तम की महत्वाकांक्षा लड़कियों के शरीर पर आकर समाप्त हो जाती है।

अन्ततः दोनों एक दूसरे से घृणा करते मिलते है ।

कहानीकार ने इस कहानी के विषय में अपनी स्पष्ट धारणा को व्यक्त किया है। इससे उनकी समाज के प्रति पैनी दृष्टि की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता। इससे भारतीय नारी की विशेष कर प्रबुद्ध नारी की सामाजिक चेतना का परिचय मिलता है। वे लिखती हैं -

'एक अधेड़ उम्र के पुरुष और अनव्याहता युवती के परस्पर सम्बन्धों से जो मानसिक ग्रन्थि बन जाती है, मैंने इस कहानी में उसी का वर्णन करने की कोशिश की है। भारतीय समाज में पुरुष आज भी 'डोमिनेन्ट एन्टाइटी' है और उसके परस्त्री से सम्बन्ध को हमारा समाज बहुत हेय दृष्टि से नहीं देखता। यह एक परम्परा से चले आते पुरुष के प्रभुत्व का अवशेष है। अक्सर इस अधेड़ अवस्था तक पहुंचने पर पुरुष में स्त्री के प्रति एक विशेष प्रकार का अतिरिक्त लगाव पैदा हो जाता है और वह इसे अपना अधिकार समझता है। कहानी का नायक इसी अतिरिक्त लगाव का शिकार है। वह अपने परिवार के साथ भी बंधा रहना चाहता है। यह मानसिक द्वन्द्व कहानी का मूल बिन्दु है। -----------

इस प्रकार के रोमांस में प्रायः कुछ वर्षो बाद एक 'सेच्यूरेशन प्वाइण्ट' आ जाता है, जब इस रोमांस की कोई वैधता नहीं रह जाती और मजबूरीवश उसे चलाये जाना नियति बन जाता है। कहानी यथार्थ घटना पर आधारित है, लेकिन लिखते - लिखते बहुत कुछ नया भी जुड़ा और मेरा यह प्रयास (मेरे) उस मित्र की दुरवस्था का चित्रण न रहकर पुरुष की विशिष्ट मनोवृत्ति तथा सम्बन्ध की असामान्यता पर चोट करना बन गया। इसीलिए कहानी जीवन का यथार्थ चित्रण होते हुए भी लेखक की दृष्टि या सामाजिक माहौल पर टिप्पणी करने के एक सशक्त माध्यम में परिणत हो जाती है।

कहानी केवल वक्तव्य नहीं है बल्कि वह वर्तमान स्थिति को बदलने या कम से कम उसकी विसंगतियों पर चोट करने का माध्यम भी है। मैंने अपनी कहानियों में हमेशा इस दूसरे पहलू पर ज्यादा जोर दिया है।'[2]

दहेज प्रथा की पराकाष्ठा या कन्याओं का विवाह न कर पाने की समस्या या अधिक सन्तान और गरीबी के अभिशाप का चित्रण मेहरून्निसा परवेज की कहानी 'पांचवी कब्र' में देखा जा सकता है। मोअज्जन रहमान कब्रिस्तान को ही घर बनाए है और कब्र खोद कर अपनी पत्नी और कई बच्चों की परवरिश करता है। उसकी बड़ी बेटी रजिया अंग्रेजी स्कूल के किसी लड़के से चोरी - छिले आशिकी करती है और उसे गर्भ रह जाता है। परिवार में मनौती सी मनाई जाती है

१- साठोत्तर महिला कहानीकार - डा० मधु सन्धु - पृ० ७७ - ७८

२- वही - पृ० - ८३ - ८४

कि पांच कब्र खोदने का काम मिल जाय तो बेटी की शादी की जा सकती है। पर लोग हैं कि मरना ही नहीं जानते, कोई महामारी भी नहीं फैलती कि लोग जल्दी जल्दी मरें। शायद उन्हीं के नसीब से नगर में हैजा फैल जाता है, चार लाशों के दफन करने का काम रहमान को मिल जाता है। अब पांचवी लाश का इन्तजार है किन्तु पांचवी लाश खुद रहमान की होती है जो स्वयं हैजा का शिकार होकर अचानक चल बसता है।

कहानी लेखिका ने यह कहानी कल्पना के आधार पर नहीं लिखी। उसके घर अक्सर एक गफ्फार नाम का तकियादार आता था जो शहर के मुस्लिम समाज की सूचनाएं रोज देता था। मृत्यु की सूचनाएं भी वह इस तरह देता था कि आश्चर्य होता था कि वह आदमी जिन्दा है या मुर्दा ? ------------------ मृत्यु की सूचना वह इस तरह बांटा करता था जैसे किसी के बच्चे की पैदाइश की खबर दे रहा है। ---------------- एक बार मैं उससे बात कर रही थीं, मरने वाले के बारे में पूछ रही थी, कैसे मर गया ? क्या बीमारी थी ? आदि और वह उतावला हो रहा था जाने को। आखिर उसने कह ही दिया - 'चलूँ मुझे जल्दी जाना है, कब्र खोदने में टाइम लगेगा।'[1]

लेखिका ने इसी आधार पर उपर्युक्त कहानी लिखी और जब वह प्रकाशित हो गयी तो एक दिन वही कब्र खोदने वाला आया और उसने लेखिका से पूछा - ' ------------------- पूरी - पूरी कहानी सच है। मुझ पर क्यों कहानी लिखी ? आप तो कब्रस्तान गई नहीं, फिर मेरे घर का नक्शा आपने कैसे खींच लिया।'[2]

अंग्रेजी के नाटककार शेक्सपियर के दुखान्त नाटक हेमलेट का नायक भी थोड़े में कब्र खोदने वालों (ग्रेव डिगर्स) के भावना हीन व्यवहार पर आश्चर्य व्यक्त करता है - वहां हेमलेट नाटक में वे कब्र खोदने वाले कब्र खोदते - खोदते केवल गाना गाते मिलते हैं। पर यहां इस कहानी में तो कब्र खोदने वाले का पूरा पारिवारिक आर्थिक जीवन ही जीवन्त बना दिया गया है।

डा० मधु सन्धु के अनुसार - ' रहमान की मृत्यु की यह सूचना पाठकीय स्तर पर सहज न होकर एकदम चलती गाड़ी की ब्रेक सी है। रहमान की मृत्यु का दुख उतना नहीं कचोटता, जितना यह अन्त जल्दबाजी में गढ़ा हुआ लगता है।'[3]

किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं, जब शहर में हैजा फैल चुका है, कई लोग मरते जा रहे हैं तो फिर गरीबी में पिसता रहमान हैजे से मरने वालों के लिए कब्र खोदते - खोदते स्वयं भी अचानक मर जाय तो उसमें क्या आश्चर्य - मृत्यु में जल्दबाजी की कैसी बात ? और यदि रहमान की जगह उसकी कुंवारी गर्भवती लड़की ही हैजे से मर जाती तो क्या यह भी जल्द बाजी न थी। पर क्या जिसके हाथ पीले करने के लिए मां - बाप जी जान से जुटे रहते हैं और जीते - जागते ही मर से जाते हैं या वास्तव में मर जातें हैं - यह कटु सत्य नहीं है ?

मंजुल भगत के आखिरी कहानी संग्रह 'बूंद' की समीक्षा करते हुए समीक्षक अतुल सिन्हा ने लिखा है -

'मंजुलभगत की कहानियों पढ़ते हुए कई बार यह एहसास होता है जैसे सब कुछ हमारी - आपकी जिन्दगी के साथ - साथ चल रहा हो सामाजिक सरोकारों को पकड़ने की कोशिश करती हुई मंजुल भगत हमारे आस - पास ही कहीं लगती हैं। उनकी कहानियों में कालेज के दिनों की खुशनुमा यादें भी हैं, महिलाओं की त्रासदी भी हैं और घर - परिवार की जटिलताएं भी। बुढ़ापे का दर्द भी है और मानवीय संवेदनाओं की सहजता से शब्दों में पिरोने की कला भी।'[4]

१- साठोत्तर महिला कहानीकार - डा० मधु सन्धु - पृ० २५

२- वही - पृ० - २५ - २६

३- वही - पृ० - २७

४- दैनिक अमर उजाला - १७ जनवरी , १९९९ का रविवारीय अंक

वे आगे लिखते हैं -

'संग्रह की दसों कहानियों में आज के बिखरते मानव मूल्यों के प्रति गम्भीर चिन्ता नजर आती है और खासकर महिलाओं के जीवन संघर्ष की विद्रूपताएं इनमें हैं और लड़ने की एक असहाय सी कोशिश के साथ नारी - मुक्ति के रास्ते तलाशने की बेचैनी भी है। मंजुल भगत की ये कहानियां आज के सामाजिक ढांचे में औरत की मजबूरियों का एक संजीदा दस्तावेज भी हैं।'[1]

यही कथन एक अन्य महिला कहानीकार सुमति अय्यर के सम्बन्ध में भी लागू होता है जिनकी कुछ वर्ष पूर्व नृशंस हत्या कर दी गयी। वे भी महिलाओं के जीवन संघर्ष का चित्रण करती मिलती हैं और घने कुहासे में उनके लिए एक आशा की किरण खोजती हैं। उनमें नारी के पारिवारिक संघर्षो और अर्थोपार्जन के संघर्षो का स्पष्ट चित्रण मिलता है और मिलता है संवाद हीनता को तोड़ने का प्रयास।

एक अन्य महिला कहानीकार शशि पाठक का नवीनतम कहानी संग्रह 'रिश्तों की सुगन्ध ' (१९९८) में अधिकतर कहानियों की शुरुआत किसी दुर्घटना के हवाले से हुई और उसके कारण उत्पन्न समस्या तथा उसका निर्णय कथा को समापन तक पहुँचाता है। कहना न होगा कि भारतीय परिवार या भारतीय समाज का भी यह एक विशिष्ट लक्षण है कि एक घटना या दुर्घटना सारे पारिवारिक या सामाजिक जीवन में भूचाल उपस्थित कर देती है और उसे चूर - चूर कर देती है। चाहें वह गलत फहमी के कारण पति - पत्नी का सम्बन्ध विच्छेद (सुबह का भूला) हो या बहू का आग में जल जाना (मकड़जाल) या बलात्कार की दुर्घटना (निर्दोष) या मां - बाप को बांट लेने की मानसिकता (समाधान)। परिवार के किसी सदस्य की आकस्मिक मृत्यु एक विचित्र स्थिति पैदा करती है और परिवार का कोई अन्य सदस्य इस शून्यता को भरने के लिए सचेष्ट होता है। निश्चय ही निरीह नारी ही उसमें अग्रणी रहती है क्यों कि वही कोमल भावनाओं को सहेज कर रखती है और सहसा उन्हें झटक कर दूर करने का साहस नहीं करती। इसमें भी यदि पिता या माता या पति की मृत्यु हुई हो तो नारी को ही सारी जिम्मेदारी सम्हालनी पड़ती है। पति की मृत्यु पर तो पत्नी को पूरे परिवार की सम्हालनी ही होती है। कहानीकार ने इन विषम परिस्थितियों में नारी को विजयी बनाया है और इस प्रकार टूटती नारी को सम्बल एवं साहस प्रदान किया है। उनकी कहानियों में पति की मृत्यु के बाद विधवा पत्नी को कष्ट सहकर पूरे परिवार की जिम्मेदारी सलीके से सम्हालते चित्रित किया गया है।

इसी क्रम में पत्र - पत्रिकाओं के नवीनतम अकों में प्रकाशित कुछ आधुनिक कहानियों पर भी दृष्टिपात कर लेने से इस धारणा की पुष्टि होती है कि नारी की सामाजिक चेतना का प्रवाह निर्बाध गति से आगे बढ़ रहा है।

८ अगस्त, १९९९ के दैनिक जागरण के साप्ताहिक परिशिष्ट में प्रकाशित राजकुमार सिंह की 'सौदागर' शीर्षक कहानी में कंचन अपनें कालेज दिनों के साथी विमल के यहाँ अचानक लम्बे समय बाद आ जाती है।इस बीच उसका विवाह हो चुका है किन्तु विमल ने अब तक शादी नहीं की थी। वह विमल से कहती है कि वह नहीं बदली है। पुरुषों में बदलनें की अदा ज्यादा होती है। वह दिल्ली में सर्विस कर रही है और अपनें पति अखिल से डाइवोर्स ले चुकी है। उस अखिल से जिससे उसकी खूब पटती थी और जिसके लिए वह कहती थी 'अखिल के सिवा मैं किसी के बारें में सोच भी नहीं सकती।'

पर जब उसे पता लगता है कि अखिल के उसी की एक सहेली के साथ शारीरिक सम्बन्ध हो गए हैं तो वह उग्र हो उठी। विमल जब यह सुनकर कंचन से कहता है कि उसे अखिल को माफ कर देना चाहिए था तब वह और उग्र हो उठती है - क्या मैं ऐसा कुछ करती तो अखिल माफ कर देता? क्या मुझे माफ कर सकते थे, तुम ?

१- दैनिक अमर उजाला - १७ जनवरी , १९९९ का रविवारीय अंक

पर विमल कंचन के समक्ष स्वीकार करता है - 'तुम्हारा कहना सच है, कंचन। हम पुरुषों में इतनी उदारता,त्याग, सहनशीलता, दया, क्षमा, कहाँ--? यह तो------।'

'हां हां क्यों नहीं। इन सबका ठेका तो स्त्रियों ने ही ले रखा है? सीधे - सीधे क्यों नहीं कहते कि स्त्रियों को मूर्ख बनाने का सदियों से पुरुषों का यह नायाब तरीका रहा है?'

लेकिन कंचन विमल को यह बता कर चौंका देती है कि 'विमल ! तुम्हें विश्वास नहीं होगा कि मैंने अखिल को माफ कर दिया था।' ---- न करती तो क्या करती। मैं अखिल को कितना प्यार करती थी। उसी के कारण मां, बाप, भाई, बहन, नाते रिश्तेंदार सभी से सम्बन्ध तोड़नें पड़े। परन्तु अखिल तो मुझे मूर्ख ही माने हुए था। महीने भर बाद ही उसका एक और घिनौना रूप देखने को मिला--------'अखिल मेरी देह की सीढ़ी लगाकर अफसर की कुर्सी पर बैठना चाहता था।'

'प्रेमी के रूप में पुरुष जितना नेक, ईमानदार, और एक सीमा तक रक्षक हो सकता है, पति के रूप में वही उतना ही क्रूर, दोमुँहा, घिनौना और भक्षक भी हो सकता है।'

विमल यह सुनकर तिलमिला जाता है क्योंकि वह स्वयं कंचन का प्रेमी था और उसी के प्रेम में अब तक उसने विवाह नहीं किया था। पर अपने प्रेम को स्वीकार करके भी वह कंचन के विवाह कर लेने के प्रस्ताव को यह कह कर ठुकरा देता है कि उसनें शादी न करने की क़सम खायी है। पर कंचन कहती है 'विमल तुम फिर झूठ बोल रहे हो। साफ - साफ क्यों नहीं कहते कि तुम्हें मेरी देह से प्यार था। तुम्हें मेरी अनछुई देह चाहिए थी। अखिल से रौंदी, सतायी, दुखी, टूटी, और बिखरी हुई नहीं।'

नारी यदि न्याय मांगने पर तुल जाय तो आज का पुरुष इसी प्रकार हतप्रभ और हारा दिखायी पड़ता है। आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना पुरुष के समक्ष चुनौती है वह विमल की तरह चारों ओर अन्धेरा पाता है और रोशनी का न तो मुँह देखना चाहता है और न रोशनी को मुँह दिखाना चाहता है। आखिर कब तक पुरुष नारी के 'सौदागर' की भूमिका निभाता रहेगा ?

१० जनवरी, १९९९ के 'अमर उजाला' दैनिक में प्रकाशित डा० सुनीता शर्मा की कहानी 'अस्मिता' में मधुरिमा एक कामकाजी महिला है और एक दैनिक अखबार की सम्पादक है। उसका जीवन न केवल व्यस्तता पूर्ण है बल्कि अव्यवस्थित भी है। उसके घर लौटने का कोई निश्चित समय नहीं। घर पर भी कार्यालय के काम का सिलसिला चलता रखना पड़ता है। इस सब में पति और बच्चों की उपेक्षा स्वाभविक है। पति यह सहन नहीं कर पाता और पति पत्नी में बात - बात में विवाद हो जाता है जो पत्नी के लिए असहाय हो जाता है। पति अपनी ही पत्नी की उच्च्य स्थिति या पुरुषों के सम्पर्क में आने से ईर्ष्याग्रस्त है। पत्नी चिढ़करं पति के लिए कहती है ------- या फिर यह चाहता है कि पत्नी जहां रहे, बस मेंरी गुलाम रहे। मेरे लिए रोये, मेंरे लिए हँसे मेंरे लिए बात करे, सिर्फ मुझसे बात करे। ------किसी और से बात करे, तो आपको तकलीफ होने लगती है------ देखिए मिस्टर -------एक बात ध्यान से सुन लीजिए, आप जो सोचते हैं कि आफिस वालों के सामने मुझे जलील करके आप अपनी सुपीरियारिटी शो कर लेंगे, उससे और कुछ हो न हो में सबकी नजरों में जरूर चढ़ जाती हूं कि मियां - बीवी की आपस में बनती नहीं। और आप को एक बात पता है, जिस औरत का एक खसम नहीं होता, सारी दुनिया उसकी खसम बनने को फिरती है। लोग मुझ पर गलत नजर नहीं भी डालते तो भी डालेंगे कि इसका पति तो इसे पूछता नहीं।

मधुरिमा स्वाभिमानी नारी है। वह इस सोच में पड़ जाती है कि पति को छोड़े या नौकरी। नौकरी छोड़ने पर भी पति की प्रताड़ना कहां से कम होगी और कहां तक कम होगी। तो फिर पति से अलग रहना ही ठीक है। वह उसी आधी रात को ही अपने भाई को फोन कर बुलाती है कि वह आकर उसे ले जाये। भाई उसे फोन पर ही याद दिलाता है कि पिता

जी ने उसके विवाह में विदा की डोली उठाते समय कहा था 'तुम्हारी डोली यहां से उठ रही है लेकिन कोई जरूरी नहीं कि तुम्हारी अर्थी वहीं से उठे। शादी करके हम तुम्हें फेंक नहीं रहे। याद रखना तुम्हारे लिए मायके के द्वार हमेशा खुले हैं।

स्वर्गीय पिता के ये वचन निभाने का उत्तरदायित्व भाई वहन करने को तैयार है परन्तु यह शर्त रखता है कि हंसते हंसते हजार बार आओ परन्तु बिगड़ कर आने पर फिर मुड़कर नहीं जाना। मधुरिमा फिर भी पति घर छोड़ने को तैयार है। भाई - बहन की यह टेलीफोन वार्ता मधुरिमा का पति पैरलल लाईन पर सुन लेता है। मधुरिमा अपना सब निजी सामान अलमारी से निकाल कर अटैची में रख लेती है। उसके पति मनुज को लगता है कि चौदह साल के विवाहित जीवन में ऐसी घड़ी कभी नहीं आयी।

पति अपनी पत्नी को संस्कारी हिन्दू पत्नी ही मानता चला आ रहा है और इसी कारण उस पर उचित - अनुचित अत्याचार करता चला आ रहा है पर बर्दाशत की भी हद होती है। मधुरिमा का उग्र रूप देखकर दृढ़ निश्चय देखकर वह काँप गया। फिर उसने पैंतरा बदला - पत्नी को मनानें लगा - मनुहार करने लगा।

पूरी कहानी नारी को पुराने संस्कारों से मुक्त होकर आधुनिक परिवेश में सोचने एवं रहने को प्रेरित करती प्रतीत होती है।

परन्तु यौन सम्बन्धों से सम्बन्धित विषयों का यहीं तक अन्त नहीं है - यौन विकृतियों का भी चित्रण उतना ही अपरिहार्य बनता जा रहा है क्योंकि आद्यौगिक जीवन प्रणाली, विज्ञान के विकास के कारण उत्पन्न जीवन की आपा - धापी, सामाजिक जीवन का विघटन और सामाजिक मूल्यों का ह्रास, जीवन में काम एवं अर्थ की प्रमुखता आदि कारणों से यौन - विकृतियों में निरन्तर वृध्दि होती जा रही है। अनेक कहानियों में इस प्रकार की यौन विकृतियों का चित्रण हुआ है। जगदीश चतुर्वेदी की 'अन्धेरे का आदमी,' गंगा प्रसाद विमल की 'अपना मरना' शशि प्रभा शास्त्री की 'क्रिया - प्रतिक्रिया', दीप्ति खण्डेलवाल की 'विषपायी', मणिका मोहिनी की 'एक मेरा दोस्त' आदि कहानियों में 'सम -लैंगिकता' एवं अन्य यौन विकृतियों का यथार्थ चित्रण हुआ है। शोभना सिद्‌दीकी की 'लव ब लव' कहानी में समलैंगिक सम्बन्ध का खुला वर्णन देखने को मिलता है। 'तुम्हारी छुअन छोटी और हल्की होती है। मेरा जिस्म तुम्हारे स्पर्श को पकड़ने के लिये व्याकुल हो जाता है। मेरे गले से व्याकुल आवाजें फूटने लगती हैं। तुम देर तक इस तरह मुझे चिढ़ाती रहती हो। जब तुम्हारा स्पर्श मैं सह नहीं पाती और चिग्घाड़ने लगती हूँ। तब शेर की तरह तुम मुझ पर झपटती हो - फिर अपने सर्द होंठ वहां रख देती हो। मै प्यार में धंसती जाती हूँ। ऐसा महसूस होता है जैसे खून ऊँचे स्थान से धीर - धीरे गिर रहा है। हल्के - हल्के, मीटे - मीटे चक्कर आने लगते हैं, उस पल मुझे एहसास होता है कि इतनों दिनों से मैं कितनी वंचित थी।'[1]

ऊपर जिन कहानी लेखकों तथा लेखिकाओं का उल्लेख किया गया है उनमें महिला कहानी कारों की संख्या कम नहीं है। ऐसा नहीं है कि इन कहानीकारों ने मन गढ़न्त कहानियां लिखी हों या सुनी - सुनाई कहानी लिखी हों। इन महिला कहानीकारों में से एक शशि प्रभा शास्त्री ने तो 'गहराइयों में गूंजते प्रश्न' शीर्षक कहानी के विषय में यह दावा किया है कि यह कहानी उनमें सामाजिक जीवन में घटित घटना पर आधारित है। इस कहानी में लड़कियों के होस्टल में रहकर शिक्षा ग्रहण करने वाली दो लड़कियों के पारस्परिक शारीरिक सम्बन्धों के स्तर के प्रेम के दुष्परिणाम का चित्रण किया गया है। समाज में इस प्रकार के गर्ल्स होस्टल का अस्तित्व केवल शिक्षा ग्रहण करने वाली महिलाओं तक ही सीमित नहीं है, कामकाजी महिलाओं, नर्सो, एयर होस्टेस आदि के भी होस्टल समाज में प्रचलित हैं और उनमें तरह - तरह के प्रतिबन्ध या पाबन्दियां भी कठोरता से लागू रहती हैं। उनकी व्यथा - कथा का चित्रण कम ही हुआ है पर हुआ तो है और विशेषकर महिला लेखिकाओं द्वारा हुआ है, यह कोई कम महत्वपूर्ण बात नहीं है। शशि प्रभा शास्त्री की कहानी 'गहराइयों में गूंजते प्रश्न' वस्तुतः

१- काम सम्बन्धों का यथार्थ और समकालीन हिन्दी कहानी - डॉ० वीरेन्द्र सक्सेना - पृ० २४५ (शोभना सिद्‌दीक 'लव ब लव' आवेश - १९७२)

गहराइयों में गूंजते प्रश्न हैं जिनका उत्तर पुरुष प्रधान समाज को देना है और आज की सामाजिक चेतना से प्रबुद्ध बनी नारी इस प्रकार के सभी प्रश्नों का उत्तर चाहती है।

शशि प्रभा शास्त्री की कहानी 'गहराइयों में गूंजते प्रश्न' में होस्टल में रहने वाली दो ऐसी लड़कियों का चित्रण है जो परस्पर एक दूसरे को शारीरिक सम्बन्धों के स्तर तक प्रेम करने लगती हैं और अन्ततः वे दोनों एक दिन होस्टल से ही भाग खड़ी होती हैं। गहराइयों में गूंजने वाला प्रश्न है - 'क्यों रूप सौंदर्य विहीन नारी के मन में भी प्यार के सपने करवट लेतें हैं, चाह की शहनाइयां बजती हैं, और क्यों पुरुष युग- युग से मात्र सौन्दर्य का प्यासा बना रहा हैं।'[1] यह घटना केवल उन्हीं नवयुवतियों के साथ ही नहीं घटित हुई। स्वयं प्रिंसिपल कुमारी चक्रवर्ती के साथ भी यही घटित हुआ था। सब कुछ होते हुए भी सौन्दर्य न होने के कारण उन्हें कुमारी रह जाना पड़ा था,उन्हें भी रूप सौन्दर्य की तुला पर तोला गया था और वे उसमें हलकी पायी गयी थीं।

इस कहानी की इससे भी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह महिला कहानी लेखिका की लिखी कहानी है और जो विशुद्ध कल्पना पर आधारित नहीं है बल्कि लेखिका नें अपने सामाजिक जीवन में इस प्रकार की घटना घटित होते देखा है। लेखिका क्या विचार मन्थन करती है यह उसी के शब्दों में देखें - ' मैं सोचती, क्या सचमुच कोई स्त्री एक दूसरी स्त्री के प्रति इतनी आकर्षित हो सकती है ? तब मैंने खुद ही इसे विश्लेषित किया कि समलिंगी आकर्षण के मूल में भी स्त्री प्रायः विपरीत लिंगी व्यक्तियों की ही उपस्थिति पाती है, तभी दोनों एक दूसरें की तरफ खिंचती हैं, नहीं तो समलिंगी व्यक्तियों को एक - दूसरें की ओर खिंचने का मतलब ही कोई नहीं है। और दूसरी बात जो सम्भवतः यौन (लैंगिक) ही होता है - यह तथ्य भी मेरी अन्तश्चेतना में उन्हीं दिनों उजागर हुआ। समलिंगी व्यक्ति भी आपस में जुड़ कर विपरीत लिंगी के साथ मैथुन क्रिया का ही आनन्द पाते हैं। बहुत से निष्कर्षो पर मैं पहुंचती चली जा रही थी। मैंने उस समय किसी मनो विश्लेषक का परामर्श अथवा समर्थन नहीं लिया, लेकिन मैं इतना जानती हूँ कि मेरे निष्कर्ष गलत नहीं हैं।'[2]

समस्या का सामर्न्यीकरण करते हुए कहा गया है कि ' यह समस्या न जया की है, न कुमारी चक्रवर्ती की है, अपितु रूप सौन्दर्य विहीन पुरुष द्वारा परित्यक्त या तिरस्कृत प्रत्येक युवती की है।'[3]

आज के युग में जब सिनेमा और नाटकों में अभिनय करने वाली नायिकाओं को घर में बसाने या उनसे जुड़कर घर बसाने की होड़ सी लग गयी है तब उनसे जरा सी कम सुन्दर नारियों को घर कहां मिले, उनका घर कैसे बसे ? यह प्रत्येक परिवार की विशेषकर वित्त विहीन परिवार की ज्वलन्त समस्या बन गयी है।

यहां यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि महिला कहानीकारों ने तो नारी - नारी के बीच पनप रहे विकृत यौन सम्बन्धों की चर्चा तो की पर पुरुषों ने तो पुरुष - पुरुष के बीच पनपने वाले विकृत यौन सम्बन्धों पर लेखनी भी नहीं चलायी या कम से कम सशक्त रूप से नहीं चलायी। सम्भवतः इसका कारण यह होगा कि पुरुष उसमें अपनी हानि नहीं देखता या देख कर भी अनदेखा करता है। पर नारी ऐसा नहीं कर सकती यद्यपि पुरुष के पुरुष - पुरुष विकृत यौन सम्बन्धों के कारण नारी को ही अधिक अनुताप - परिताप भोगना पड़ता है। निश्चय ही नारी ही भविष्य में पुरुषों के इस अनैतिक आचरण पर आवाज उठायेगी जब नारी की सामाजिक चेतना अपने अत्यन्त उत्कर्ष पर होगी।

१- 'धुली हुई शाम' - डा० शशि प्रभा शास्त्री - पृ० - ८८
२- साठोत्तर महिला कहानीकार - डा० मधु सन्धु - पृ० - २०
३- वही - पृ० - २१

उपसंहार

उपसंहार

आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना और आधुनिक हिन्दी कहानी का विकास साथ - साथ ही हुआ और यह स्वाभाविक भी था। नारी में सामाजिक चेतना उत्पन्न हो और उसका समाज एवं परिवार पर प्रभाव न पड़े यह सम्भव नहीं था। फिर उसका चित्रण न हों यह कैसे सम्भव होता ? नारी की सामाजिक चेतना के बदलते विविध रूपों का चित्रण भी विभिन्न प्रकार से हुआ और इस कारण कहानी को भी परिवेश के अनुरूप परिधान ग्रहण करना पड़ा। इसने कहानियों के विभिन्न आन्दोलनों को जन्म दिया। डा० राम प्रसाद के अनुसार 'आधुनिक साहित्य की विविध विधाओं में पांचवें दशक के बाद सबसे अधिक आन्दोलन कहानी के क्षेत्र में हुए हैं। सन् ५० के बाद हर तीसरे - चौथे वर्ष के कालान्तर में नयी कहानी के नये - नये खेमे नये - नये फतवों के साथ खड़े होते रहे हैं। नयी कहानी के बाद कहानी को कई नामों से अभिहित कर बांटने का प्रयास होता है, यथा - अकहानी, सचेतन कहानी, समान्तर कहानी, समकालीन कहानी, साठोत्तरी कहानी इत्यादि।' (साठोत्तरी हिन्दी कहानी में पात्रऔर चरित्र - चित्रण - डा० राम प्रसाद, पृ० - २६६)।

आधुनिक हिन्दी कहानी संघर्ष की कहानी है। जीवन के हर क्षेत्र में नित्य - प्रति उत्पन्न हो रही नयी - नयी समस्याओं के विकराल रूप का सामना करने के लिए संघर्ष करना और उनका समाधान खोजना युग की आवश्यकता और मांग थी। नारी की सामाजिक चेतना भी संघर्ष का प्रतिफलन है। इसलिए आधुनिक युग में उसकी अभिव्यक्ति गिनी - चुनी कहानियों के स्थान पर अनगिनत कहानियों में हुई। इस संघर्ष में कुछ समस्याओं का समाधान होते मिला तो कुछ नयी समस्याएं समुपस्थित होती रहीं। प्रगतिशील एवं जीवन्त जीवन शैली का यह पुष्ट प्रमाण है। इसलिए आज का मानव, विशेषकर नारी,समस्याओं से घबड़ाती नहीं बल्कि उससे जूझती मिलती है। उसे पता है कि जैसे जैसे वह प्रगति करती जायेगी - प्रतिगामी परिस्थितियां उसके समक्ष नयी - नयी समस्याएं उत्पन्न करती रहेंगी। हर बात के जैसे दो पहलू होते हैं वैसे ही अच्छाई के साथ बुराई आना या समाधानों के साथ - साथ नयी समस्याओं का जन्म लेना स्वाभाविक है। नयी कहानी का इतिहास नारी की सामाजिक चेतना के विकास के साथ उत्पन्न इन नयी समस्याओं से जूझने और उनका समाधान खोजने का इतिहास है। इसलिए स्वभावतः नयी कहानी सामान्य जन - आम आदमी के लेकर चली है - उच्च वर्ग को नहीं, यथार्थ को लेकर चली है, कल्पना को नहीं, स्वानुभव को लेकर चली है, सुनी - सुनाई को नहीं। इसलिए वह आवृत से अधिक अनावृत हो गयी है। इसलिए उसमें आध्यात्मिकता से अधिक भौतिकता है, वायवीय वातावरण से अधिक स्थूलता है। उसमें प्राचीन मूल्यों का महत्व घट गया है और नयी नैतिकता उभर रही है। काम सम्वन्धों की गोपनीयता भंग हो गयी है और उसके प्रति दुराव - छिपाव का भाव समाप्त हो गया है - उसे सहज, स्वाभाविक और सुन्दर माना जाने लगा है।

साठोत्तरी हिन्दी कहानी में नारी की सामाजिक चेतना का चतुर्दिक विकास चित्रित मिलता है। साठोत्तर काल में न केवल कहानियों की बहुत रचना हुई है बल्कि बहुत से साहित्यकार कहानी लेखन में प्रवृत्त हुए हैं। अंगुलियों में गिने जाने वाले कहानीकारों के स्थान पर सैकड़ों कहानीकार इस युग में सामने आए हैं और वे सशक्त कहानीकार भी सिद्ध हुए हैं। इनमें महिला कहानीकारों की संख्या भी कम नहीं है और महिला कहानीकार भी बहुत सशक्त लेखन कर सकी हैं। बल्कि मेरी तो यह दृढ़ मान्यता है नारी की सामाजिक चेतना का,उनके अन्तर्मन का, उनकी कामनाओं, इच्छाओं का जैसा सजीव एवं सटीक चित्रण महिला कहानीकारों ने किया है, पुरुष कहानीकार उसमें उनसे बहुत पीछे रह गए हैं।

आज कहानी साहित्य की सर्वोत्तम एवं सशक्त विधा बन गयी है और उस पर नारी कहानीकारों का वर्चस्व है, यह अत्यन्त आशाप्रद स्थिति है।

इस दृष्टि से अनेकानेक पुरुष - महिला कहानीकारों का प्रतिनिधित्व परक चयन करके उनकी शताधिक कहानियों में नारी की सामाजिक चेतना के विविध पक्षों की ओर इंगित करने का प्रयास किया गया है जिससे कि नारी की सामाजिक चेतना के समग्र एवं सुव्यवस्थित इतिहास की दिशा में प्रयास किया जा सकता है।

ग्रन्थ सूची

ग्रन्थसूची

संस्कृत ग्रन्थ

१- ऋग्वेद
२- कृष्ण यजुर्वेद
३- अथर्ववेद
४- शतपथ ब्राहमण
५- छान्दोग्य उपनिषद
६- मनु समृति
७- गौतम स्मृति
८- श्रीमद भागवत पुराण
६- विष्णु पुराण
१०- हरिवंश पुराण
११- स्कन्द पुराण
१२- दुर्गा सप्तशती
१३- आपस्तम्भ धर्मसूत्र
१४- पारस्कर गृह्यसूत्र
१५- महाभारत
१६- गीता
१७- धर्म सिन्धु - तृतीय परिच्छेद
१८- बृहत्संहिता
१६- कथा सरित्सागर
२०- मृच्छ कटिकम्
२१- कुमार सम्भव
२२- विक्रमोर्वशीयम्
२३- अर्थशास्त्र

अंग्रेजी - ग्रन्थ

१- दि फिलासफी आव् रिलीजन - जार्ज गैलोवे
२- माडर्न इण्डिया एण्ड द वेस्ट - ओ० मेले
३- दि इमरजेन्स आव् द इण्डियन नेशनल कांग्रेस - एस० आर० मेहरोत्रा
४- दि वण्डर दैट वाज इण्डिया - ए० एल० बाशम
५- हिस्ट्री आव् द ब्रहम समाज - एस० एन० शास्त्री
६- आर्केलाजिकल सर्वे आव् इण्डिया - वार्षिक रिपोर्ट १६३४
७- क्रिमिनोलॉजी - टैफ्ट डी० आर०
८- हिस्ट्री आव् प्रोस्टीट्यूशन - जी० आर० स्काट

९- न्यू होरिजन्स इन क्रिमिनोलॉजी - बर्न्स एण्ड टीटर्स
१०- 100 ग्रेट नेम्स फ्राम इण्डियाज पास्ट - वी० वी० रमन
११- माडर्न रिलीजस मूवमेण्ट्स इन इण्डिया - फरकुहर
१२- ग्रोदरेज - ए हण्ड्रेड इयर्स - वी० के० करंजिया
१३- रिनेसां इण्डिया - जकारिया
१४- दि कम्प्लीट वर्क्स आव् सिस्टर निवेदिता - सं० - पी० आत्मपूर्ण
१५- एमीनेण्ट मिशनरी वीमेन - मिसेज जे० टी० ग्रेसी
१६- गोखले - ए पालीटिकल बायोग्राफी- डी० बी० माथुर
१७- गोपाल कृष्ण गोखले - ए हिस्टारिकल बायोग्राफी - प्रो० टी० के० सहानी
१८- गोखले माई मास्टर - श्री निवास शास्त्री
१९- लाइफ आव् गोखले - श्रीनिवास शास्त्री
२०- हिन्दुज्म थ्रू एजेज - डी० एस० शर्मा
२१- दि सोशल रिनेसां इन इण्डिया - डा० के० सी० व्यास
२२- हिस्ट्री आव् कांग्रेस - डा० पट्टाभि सीता रामैय्या
२३- सेक्सुअल विहेवियर इन ह्यूमन फीमेल - अल्फ्रेड किन्से
२४- इण्डियन सोशल स्ट्रक्चर - एम० एन० श्रीनिवास
२५- माडर्नाइजेशन एण्ड स्ट्रक्चर आव सोसायटीज - मैरियन जे० लेवी
२६- ए स्टडी आन द रामायणाज - अमल सरकार
२७- इन्क्वारी कन्सर्निंग पालिटिकल जस्टिस- विलियम गाडविन
२८- विन्डिकेशन आव् द राइट्स आव् वूमेन - मेरी कुलस्टोन क्राफ्ट
२९- प्रमीथियस - अन् बाउण्ड - पी० वी० शेली
३०- दादा भाई नौरोजी : दि ग्राण्ड ओल्ड मैन आव् इण्डिया - रुस्तम मसानी

आलोचना ग्रन्थ

१- बीसवीं शदी की हिन्दी कहानी का समग्र मनोवैज्ञानिक अध्ययन - डा० महेश चन्द्र 'दिवाकर'
२- नयी कहानी : कथ्य और शिल्प - डा० सन्त बख्श सिंह
३- स्वातन्त्रयोत्तर कहानी में नारी के विविध रूप - डा० गणेश दास
४- हिन्दी कहानी : बदलते प्रतिमान - डा० रघुवर दयाल वार्ष्णेय
५- आज की कहानी - विजय मोहन सिंह
६- आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में प्रगति चेतना - डा० लक्ष्मण दत्त गौतम
७- आधुनिक हिन्दी कहानी : समाज शास्त्रीय दृष्टि - डा० रघुवीर सिन्हा
८- आधुनिक कथा साहित्य और मनोविज्ञान - डा० देवराज उपाध्याय
९- साठोत्तरी हिन्दी कहानी में पात्र और चरित्र - चित्रण - डा० राम प्रसाद
१०- हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - डा० रमेश चन्द्र लवानिया
११- हिन्दी कहानी : अपनी जबानी - डा० इन्द्रनाथ मदान
१२- कहानी : नयी कहानी - डा० नामवर सिंह
१३- हिन्दी कहानी : दो दशक - डा० सुरेश धींगड़ा
१४- नयी कहानी : नये प्रश्न - डा० सन्त बख्श सिंह

१५- कहानी की संवेदनशीलता - सिद्धान्त और प्रयोग - डा० भगवान दास वर्मा
१६- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन - डा० भैरू लाल गर्ग
१७- हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा - सं० राम दरश मिश्र
१८- साठोत्तर महिला कहानीकार - डा० मधु सन्धु
१६- सातवें दशक की हिन्दी कहानी में मानवीय सम्बन्ध - डा० चन्द्र कान्ता बंसल
२०- महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सन्दर्भ - डा० शील प्रभा वर्मा
२१- साठोत्तरी हिन्दी कहानी और महिला लेखिकाएं - डा० विजया वारद (रागा)
२२- हिन्दी उपन्यास : समाज शास्त्रीय विवेचन - डा० चण्डी प्रसाद जोशी
२३- हिन्दी कहानी - सामाजिक सन्दर्भ - डा० अश्वघोष
२४- राजेन्द्र अवस्थी का कथा - संसार - डा० सविता सौरभ
२५- कहानी : स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्र यादव
२६- द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
२७- समकालीन साहित्य : आलोचना की चुनौती - डा० बच्चन सिंह
२८- हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियां - डा० शिव कुमार शर्मा
२६- हिन्दी कहानी : उद्‌भव और विकास - डा० सुरेश सिन्हा
३०- कथाकार रांगेय राघव - डा० कमलाकर गंगावने
३१- अनुवाक - डा० वचनदेव कुमार

कथा ग्रन्थ

१- परीक्षा गुरू - श्रीनिवास दास
२- तरुण तपस्विनी या कुटीर वासिनी - किशोरी लाल गोस्वामी
३- राजकुमारी
४- सुशीला विधवा
५- आदर्श हिन्दू - लज्जाराम मेहता
६- मुर्दो का टीला - रांगेय राघव
७- पथ का पाप - रांगेय राघव
८- कब तक पुकारूं - रांगेय राघव
६- चित्रलेखा - भगवती चरण वर्मा
१०- वरुणा के बेटे - नागार्जुन

कथा संग्रह

१- 'पेपर वेट' - गिरिराज किशोर
२- काला रजिस्टर - रवीन्द्र कालिया
३- टुच्चा - निरूपमा सेवती
४- तीन निगाहों की एक तस्वीर - मन्नू भण्डारी
५- गुल मोहर के गुच्छे - मंजुल भगत

६- शेष सम्वाद - सुमति अय्यर
७- रास्ता इधर से है - रघुवीर सहाय
८- सीढ़ियों पर धूप में - रघुवीर सहाय
६- खेल- खिलौने- राजेन्द्र यादव
१०- जहां लक्ष्मी कैद है- राजेन्द्र यादव
११- कलम लिए हुए हाथ - बलराम
१२- क्रौंच वध तथा अन्य कहानियां - ऋता शुक्ला
१३- एक प्लेट सैलाब - मन्नू भण्डारी
१४- कब तक पुकारूं - रांगेय राघव
१५- पहला कदम - दूधनाथ सिंह
१६- दूसरे किनारे से - कृष्ण बलदेव वैद
१७- मन्नू भण्डारी : श्रेष्ठ कहानियां सं० राजेन्द्र यादव
१८- पटरियां - भीष्म साहनी
१६- मेरी प्रिय कहानियां - महीप सिंह
२०- तीसरा सुख - शैलेश मटियानी
२१- मेरी प्रिय कहानियां (त्रिकोण) कृष्ण बलदेव वैद
२२- अतीत तथा अन्य कहानियां - शैलेश मटियानी
२३- उलफत - महीप सिंह
२४- १६८० की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ - डा० महीप सिंह
२५- धुली हुई शाम - डा० शशि प्रभा शास्त्री
२६- गहरी नींद - शिवानी
२७- १६८१ की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियां - सं० डा० महीप सिंह

विवेचित कहानियां

१- किशोरी लाल गोस्वामी	-	इन्दुमती
२- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	-	ग्यारह वर्ष का समय
३- श्रीमती राजेन्द्र बाला घोष	-	दुलाई वाली
४- चन्द्र धर शर्मा गुलेरी	-	सुखमय जीवन
	-	बुद्धू का कांटा
	-	उसने कहा था
५- शिव प्रसाद सिंह - सिप्रे	-	एक टोकरी भर मिट्टी
६- प्रेमचन्द	-	सौत
	-	दो कब्रें
	-	मर्यादा की बेदी
	-	प्रेम का उदय
७- जय शंकर प्रसाद	-	आकाश दीप
	-	पुरस्कार
	-	गुण्डा

८- आचार्य चतुर सेन शास्त्री	-	दुखवा मैं कासो कहौ मोरी सजनी
६- यशपाल	-	आबरू
१०- अज्ञेय	-	रोज
	-	गेंग्रीन
१२- अमरकान्त	-	असमर्थ हिलता हाथ
	-	निर्वासित
१३- रांगेय राघव	-	गदल
१४- मुक्तिबोध	-	मैत्री की मांग
१५- रघुवीर सहाय	-	सेव
	-	मेरे और नंगी औरत के बीच
१६- राजेन्द्र अवस्थी	-	सौदा
१७- नरेन्द्र कोहली	-	हिन्दुस्तानी
१८- हिमांशु जोशी	-	समुद्र और सूर्य के बीच एक समुद्र भी
१६- राजकमल चौधरी	-	मरी हुई मछली
२०- राजेन्द्र यादव	-	खेल खिलौने
	-	जहां लक्ष्मी कैद है
	-	प्रतीक्षा
	-	एक कमजोर लड़की की कहानी
	-	पुराने नाले पर नया फ्लैट
२१- मंजुल भगत	-	खोज
	-	बीबी और बांदी
	-	नालायक बहू
	-	नाग पाश
	-	विधवा का श्रृंगार
२२- कमलेश्वर	-	एक थी विमला
	-	जो लिखा नहीं जाता
	-	मेरी प्रेमिका
	-	तलाश
२३- ज्ञान रंजन	-	हास्य रस
२४- रवीन्द्र कालिया	-	चाल
	-	एक डरी हुई औरत
	-	नौ साल छोटी पत्नी
२५- महीप सिंह	-	मैडम
	-	ब्लाटिंग पेपर
	-	काला बाप : गोरा बाप
	-	सीधी रेखाओं का वृत्त
२६- निर्मल वर्मा	-	अमालिया
	-	अंधेरे में
	-	परिन्दे
	-	अन्तर

२७- शैलेश मटियानी - अतीत
- निर्णय
- सीखचों पर अटका अतीत
- तीसरा सुख
२८- गिरिराज किशोर - फ्राक वाला घोड़ा : निकर वाला साईं
२९- विजय चौहान - एक सर्द खामोशी
३०- मोहन राकेश - सुहागिनें
- वासना की छाया में
- एक और जिन्दगी
- काला रोजगार
- सीमाएं
३१- मन्नू भण्डारी - क्षय
- यही सच है
- नशा
- गुलकी बन्नो
- बाहों का घेरा
- तीसरा आदमी
- बन्द दराजों का साथ
- ऊँचाइयाँ
- सजा
- ईसा के घर इन्सान
३२- उषा प्रियवंदा - मोह बंध
- जालें
- दो अन्धेरे
- मछलियां
- वापसी
- सुरंग
- नींद
- पूर्ति
- जिन्दगी और गुलाब के फूल
- कितना बड़ा झूठ
३३- शशि प्रभा शास्त्री - गहराईयों में गूंजते प्रश्न
- ग्रोथ
- रंजना
३४- अचला शर्मा - मुझे खोल दो
- बर्दाश्त बाहर
३५- मेहरून्निसा परवेज - पांचवी कब्र
- शनाख्त
३६- निरूपमा सेवती - मां यह नौकरी छोड़ दो
- टुच्चा

	-	खामोशी
	-	ठहरी हुई सोच
३७- ममता कालिया	-	एक जीनियस की प्रेम कथा
३८- मणिका मोहिनी	-	जलांध
३६- कृष्णा अग्निहोत्री	-	अन्तिम स्त्री
४०- शिवानी	-	गहरी नींद
४१- राजी सेठ	-	मेरे लिए नहीं
४२- कृष्णा सोबती	-	बादलों के घेरे में
	-	यारो के यार
	-	मित्रो मरजानी
४३- मृदुला गर्ग	-	एक और विवाह
	-	अलग - अलग कमरे
	-	अवकाश
४४- डा० सुनीता शर्मा	-	अस्मिता
४५- सिम्मी हर्षिता	-	उसका मन
४६- सुमति अय्यर	-	घटना चक्र
	-	स्पर्श
	-	वजूद
४७- ऋृता शुक्ला	-	कदली के फूल
४८- सूर्य बाला	-	रेस
	-	रक्षा कवच
४६- कृष्णा बाजपेयी	-	एक कमजोर लड़की पागल सी
५०- कृष्ण बलदेव वैद	-	त्रिकोण
	-	दूसरे का बिस्तर
५१- भीष्म साहनी	-	डोरे
	-	चीफ की दावत
५२- दिनेश पालीवाल	-	अपने - अपने जंगल
५३- रमेश गुप्त	-	मिसफिट
५४- राज कुमार सिंह	-	सौदागर
५५- दूधनाथ सिंह	-	शिनाख्त
	-	रीछ
	-	रक्तपात
५६- हरि प्रकाश	-	वापसी
५७- सुरेश सेठी	-	कैंसर
५८- राजेन्द्र कौर	-	लुंज
५६- बलराम	-	अनचाहे सफर
६०- यशपाल वैद	-	एक बदतमीज
६१- राम कुमार भ्रमर	-	लौ पर रखी हथेली

विविध ग्रन्थ

१- राम चरित मानस
२- संस्कृति - मानव कर्तव्य की व्याख्या - यशदेव शल्य
३- पतन की परिभाषा - परिपूर्णानन्द वर्मा
४- अपराध शास्त्र - डा० ओम प्रकाश वर्मा
५- आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन - डा० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
६- विवेचना - इलाचन्द जोशी
७- सामाजिक विघटन - सत्येन्द्र त्रिपाठी
८- आवारा मसीहा - विष्णु प्रभाकर
६- गोखले मेरे राजनीतिक गुरू - एम० के० गान्धी
१०- जी० के० गोखले के व्याख्यान एवं लेखन - जे० एस० हायलैण्ड
११- गोपाल कृष्ण गोखले - टी० आर० देवगिरिकर
१२- उदारवाद और गोपाल कृष्ण गोखले - सतीश कुमार
१३- महिलाओं से - महात्मा गान्धी
१४- मेरी कहानी - जवाहर लाल नेहरू
१५- भारतीय समाज अनुसन्धान परिषद - भारत में महिलाओं में स्थिति सम्बन्धी राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट ।